सेकसरिया अध्ययनमाला—७

कनउजी-लोकगीत

लेखक

सन्तराम 'अनिल'

प्रकाशक

लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रकाशक

लखनऊ विश्वविद्यालय

मूल्य—चार रुपये

मुद्रक

रामचरनलाल श्रीवास्तव,
पवन प्रिंटिंग प्रेस,
नज़ीराबाद, लखनऊ।

परम्परा और प्रभाव के रूप में
लोक गीतों के संस्कार डालने वाले
देवतुल्य दिवंगत माता-पिता को
सादर और सप्रेम

वक्तव्य

हिन्दी-विभाग-द्वारा किये गए साहित्यिक और सांस्कृतिक खोज-सम्बन्धी कार्य को हम 'लखनऊ-विश्वविद्यालय-प्रकाशन' के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में 'सेठ भोलाराम सेकसरिया ग्रंथमाला' के कई पुष्पों से विद्वान् पहले से ही परिचित है। इसके अन्तर्गत उच्च-कोटि के गवेषणात्मक ग्रंथों का प्रकाशन किया जा रहा है। ये ग्रंथ प्राय: हिन्दी विभाग के अध्यापकों अथवा विद्यार्थियों के द्वारा 'पी-एच० डी०' डिग्री के लिए प्रस्तुत किए गए प्रबन्ध हैं। हमारे यहाँ एम० ए० की परीक्षा के अन्तर्गत लिखे गए छोटे प्रबन्ध भी एक बड़ी संख्या में है और प्रकाशन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन छोटे प्रबन्धों को भी प्रकाशित कराने के लिए विश्वविद्यालय में एक 'सेकसरिया अध्ययनमाला' का सूत्रपात किया गया है। हम श्री शुभकरण जी सेकसरिया के परम आभारी हैं, जिन्होंने अपने स्वर्गीय पिता श्री भोलाराम सेकसरिया के नाम पर इन दोनों ग्रंथमालाओं के लिए निधि प्रदान की है और उसी के बल पर ही हम इन ग्रंथमालाओं का सूत्र-संचालन कर रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'कनउजी-लोकगीत' 'सेकसरिया अध्ययनमाला' का सातवाँ पुष्प है। इसके लेखक श्री सन्तराम 'अनिल' हैं। इसे इन्होंने एम० ए० परीक्षा के लिए थीसिस के रूप में प्रस्तुत किया था और इस पर इन्हें विश्वविद्यालय द्वारा सर्वश्रेष्ठ प्रबन्ध का स्वर्णपदक प्रदान किया गया। ये मेरे प्रिय शिष्य हैं और प्रतिभावान् तथा अध्ययनशील लेखक हैं।

खड़ीबोली, ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि बोलियों और इनके लोकसाहित्य पर पर्याप्त कार्य हो चुका है, पर 'कनउजी' इस

दृष्टि से अब तक उपेक्षित ही रही है । इस पुस्तक के प्रणयन-द्वारा कनउजी भाषा और उसके लोकसाहित्य के अध्ययन का श्रीगणेश सुचारु रूप में हुआ है और मुझे आशा है कि अब यह कार्य आगे बढ़ेगा । लेखक ने विद्वानों-द्वारा किए गए लोकगीतों के वर्गीकरण का परीक्षण करके कनउजी-लोकगीतों का एक नवीन रूप में वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। पुस्तक में कनउजी-लोकगीतों के प्रकार,उनके वर्ण्यविषय, सांस्कृतिक चित्रण तथा साहित्यिक मूल्यांकन आदि विषयों का प्रतिपादन मौलिक एवं विवेचनापूर्ण है । अन्त में लेखक ने कुछ चुने हुए गीत भी दे दिए हैं, इससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है । श्री 'अनिल' मेरी बधाई के पात्र है । मुझे आशा है कि हिन्दी-संसार इस कृति को सहृदयता-पूर्वक अपनाकर लेखक को प्रोत्साहित करेगा । पुस्तक को लखनऊ विश्व-विद्यालय से प्रकाशित कराकर पाठकों के सामने रखते हुए मुझे बड़ा हर्ष है । श्री 'अनिल' की सबल लेखनी से अन्य महत्त्वपूर्ण तथा गवेषणात्मक ग्रंथों का सृजन हो, यह मेरी मगल कामना है ।

डॉ० दीनदयालु गुप्त
एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्०
प्रोफ़ेसर तथा अध्यक्ष,
हिन्दी तथा भारतीय भाषा-विभाग,
लखनऊ-विश्वविद्यालय

दीनदयालु गुप्त
२१-१०-१६५७

प्राक्कथन

हिन्दी की कई बोलियों के लोकसाहित्य का संग्रह तथा वैज्ञानिक अध्ययन किया जा चुका है, पर कनउजी की ओर किसी भी विद्वान् का ध्यान नहीं गया है। साहित्य के इसी अभाव की पूर्ति के लिये गुरुवर डा० भगीरथ मिश्र से प्रेरित होकर लेखक ने कनउजी-लोकसाहित्य और भाषा के कार्य का श्रीगणेश किया है।

अध्ययन के लिए सबसे पहली आवश्यकता थी सामग्री के संग्रह की। अतः उसे ही पहले समाप्त किया गया। गीत, कहानियाँ, पहेलियाँ और मुहावरों को एकत्र करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ग्रामीण लोग लोकसाहित्य-संग्रह के महत्त्व को नहीं समझते। अतः आग्रह करने पर उत्तर देते हैं कि "हमारे गीत और कहानियाँ तो 'गमारू' है। आप इनको सुनकर क्या करेंगे"? वस्तुतः ग्रामीण लोगों को इसका महत्त्व समझाना दुष्कर कार्य है। संग्रह-कार्य में दूसरी कठिनाई पर्दा-प्रथा के कारण उपस्थित होती है क्योंकि स्त्रियाँ किसी अपरिचित व्यक्ति के सामने गीत गाने में लज्जा का अनुभव करती है। यदि पुरुषों और स्त्रियों का सहयोग मिल भी गया तो एक अड़चन यह पड़ती है कि ग्रामीण लोग गीत बोलकर लिखवा नहीं सकते। उन्हें तो गीत तभी याद आते है जब वे भावमग्न होकर गाते हैं। अतएव लेखक को संग्रह के लिए गीतगान की सामूहिक आयोजनाओं की व्यवस्था करनी पड़ी है। ५-६ मास के प्रयत्न के पश्चात् पर्याप्त सामग्री एकत्र हुई। सामग्री के अधिक हो जाने के कारण प्रस्तुत प्रबन्ध को सीमित करना पड़ा और 'कनउजी-लोकसाहित्य' के स्थान पर 'कनउजी-लोकगीत' विषय रखा गया।

इन गीतों का संग्रह विशेष रूप से कन्नौज, छिबरामऊ, फरुखाबाद

(सदर), शाहजहाँपुर (सदर), बिधूना, डेरापुर तथा बिल्हौर तहसीलों से किया गया है। इसमें अनेक ऐसे भी गीत हैं जो भाषा और विषय दोनों के थोड़े ही हेर-फेर के साथ 'अवधी' और 'ब्रज' में भी मिलते हैं। यह पता लगाना कठिन है कि इन गीतों की मूल बोली कौन सी है। कुछ ऐसे भी गीत हैं जो कनउजी-क्षेत्र में गाये तो जाते हैं, पर उनकी भाषा विशुद्ध 'अवधी' या 'ब्रज' है। इसका कारण यह है कि कन्याएँ विवाह के उपरान्त अपनी ससुराल में नैहर के गीत ले जाती हैं। नैहर की भाषा से मोह के कारण वे इन गीतों की भाषा में सहसा परिवर्तन नहीं करती। इसके अतिरिक्त जिला कानपुर और इटावा के गीतों पर अवधी और ब्रज का स्पष्ट प्रभाव है। जिन गीतों का इस प्रबन्ध में उपयोग किया गया है उसके लिए लेखक यह तो दावा नहीं कर सकता कि वे सभी विशुद्ध कनउजी के ही गीत हैं, पर वह यह अवश्य कह सकता है कि ये गीत कन्नौज-क्षेत्र में गाए जाते है।

प्रस्तुत प्रबन्ध पाँच अध्यायों में बाँटा गया है। प्रथम अध्याय में गीतों की पृष्ठभूमि स्पष्ट करने के लिए कन्नौज के संक्षिप्त इतिहास तथा भौगोलिक दशा पर विचार किया गया है। कनउजी गीतों को समझने के लिए इसी अध्याय में भाषा का परिचय तथा स्थूल व्याकरण दे दिया गया है। कनउजी की स्वतंत्र सत्ता में विद्वानों को सन्देह है। अतः लेखक ने इस सन्देह को दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है। इसके बाद लोकगीत की परिभाषा देकर उनके महत्त्व पर विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय में विद्वानों द्वारा किए गये लोकगीतों के वर्गीकरण का परीक्षण करके कनउजी-लोकगीतों का एक नवीन वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय में कनउजी-लोकगीतों के प्रकारों और वर्ण्य-विषय का विस्तृत विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में लोकगीतों मे सांस्कृतिक चित्रण का विवेचन किया गया है। 'संस्कृति'में धर्म,अर्थ, काम और मोक्ष—वर्ग चतुष्टय का समावेश हो जाता है। अत: इस अध्याय में इसी व्यापक अर्थ को दृष्टि में रखा गया है। संस्कृति के आदर्श और यथार्थ दो रूप होते हैं। अत: लोकगीतों में दोनों का दिग्दर्शन कराया गया है। इस प्रकार इस अध्याय में संस्कार, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन—सभी का वर्णन किया गया है।

पंचम अध्याय में लोकगीतों का साहित्यिक मूल्यांकन किया गया है। लोकगीतों में रस परिपाक, भाव-सौन्दर्य, अलंकार-विधान, छन्द, लय, तुक आदि विषयों का इसमे विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के अन्त मे अनेक भाषाओं के लोकगीतों के भाव-साम्य का दिग्दर्शन कराने के पश्चात् प्रबन्ध का विवेचन समाप्त कर दिया गया है।

परिशिष्ट मे चुने हुए प्रतिनिधि लोकगीतों का संग्रह दे दिया गया है जिससे कि कनउजी पर काम करनेवाले इस संग्रह से लाभ उठा सकें।

कनउजी पर अब तक खोज-सम्बन्धी कोई भी कार्य नहीं हुआ है। अतएव प्रस्तुत प्रबन्ध में अध्ययन की रूपरेखा और विवेचन में निजी दृष्टिकोण का प्राधान्य है। पं० रामनरेश त्रिपाठी, देवेन्द्र सत्यार्थी डा० सत्येन्द्र और डा० कृष्णदेव उपाध्याय के ग्रन्थों तथा बंगला, गुजराती और अंग्रेजी के लोकसाहित्य के अनेक ग्रन्थों से लेखक ने लाभ उठाया है।

इस प्रबन्ध के पूरे होने में अनेक ग्रामीण नर-नारियों, लेखकों और विद्वानों से सहायता प्राप्त हुई है, लेखक उन सबके प्रति हृदय से कृतज्ञ है। विशेष रूप से वह लखनऊ-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग

के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष डा० दीनदयालु गुप्तजी का आभारी है जिनके प्रोत्साहन और औदार्य से यह प्रबन्ध प्रकाशित हो सका है। डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल के निर्देशन में यह ग्रंथ लिखा गया अत: लेखक उनका हृदय से आभार मानता है। डा० भगीरथ मिश्र ने प्रबन्ध को आद्योपान्त पढ़कर अनेक बहुमूल्य सुझाव दिए हैं। लेखक उनका कृतज्ञ है। कनउजी भाषा और उसके साहित्य के सम्बन्ध में यदि साहित्य-प्रेमियों के हृदय में कुछ भी अभिरुचि जाग्रत हो सकी तो लेखक अपना प्रयास सफल समझेगा।

हिन्दी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय
दीपावलि, २०१४ वि०

सन्तराम 'अनिल'

विषयानुक्रम

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश (१-५२)

द्वितीय अध्याय

कनउजी-लोकगीतों का वर्गीकरण (५५-६६)

तृतीय अध्याय

कनउजी-लोकगीतों के प्रकार और उनके वर्ण्य-विषय

(६९-१२९)

चतुर्थ अध्याय

कनउजी लोकगीतों में सांस्कृतिक चित्रण (१३१-१९४)

पंचम अध्याय

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

विषय-प्रवेश

किसी प्रदेश के साहित्य के अध्ययन के पूर्व यह आवश्यक होता है कि वहाँ के इतिहास, भौगोलिक परिस्थितियों और भाषा पर विचार किया जावे। वस्तुतः यह उपकरण साहित्य की पृष्ठ-भूमि का काम करते हैं। ऐतिहासिक परिस्थितियों का जाति के चिन्तन और भाव-धारा पर प्रभाव पड़ता है। यही बात भौगोलिक परिस्थितियों की भी है। जलवायु का प्रभाव मनुष्य के रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान आदि पर पड़ता है। भाषा तो साहित्य की अभिव्यक्ति का एक अनिवार्य उपकरण होती ही है। इसी कारण मुख्य विषय "कनउजी लोक-गीत" के विवेचन के पहले कन्नौज के इतिहास, भौगोलिक-स्थिति और कनउजी-भाषा पर भी इस अध्याय में विचार करना आवश्यक समझा गया है।

कन्नौज का संक्षिप्त इतिहास

कन्नौज और उसके विविध नाम :—

प्राचीन भारतीय-साहित्य में इस नगर का प्रचुर उल्लेख होने के कारण अनुमान किया जा सकता है कि कन्नौज की प्रसिद्धि प्रागैतिहासिक काल में ही हो गई थी। वाल्मीकि-रामायण में इसका सबसे प्राचीन नाम 'महोदय' मिलता है, जिसकी स्थापना धर्मात्मा कुश ने की थी। यह

'महोदय'[1] और 'कन्नौज' एक ही है, इसकी विविध प्रमाणों[2] से पुष्टि होती है। कुश द्वारा स्थापित इस कुशस्थल[3] का कान्यकुब्ज नाम किस प्रकार पड़ा, इसका भी एक मनोरंजक इतिहास है[4]। कुश नाम के चन्द्र-वंशी राजा की घृताची अप्सरा से उत्पन्न सौ पुत्रियाँ थीं। एक बार वायु-देवता इन कुमारियों को उद्यान में विहार करते हुए देखकर उन पर मोहित हो गए और उन्होंने विवाह के लिए प्रस्ताव किया। राजा ने प्रत्येक कुमारी को प्रस्ताव के विषय में बतलाया, परन्तु सबसे छोटी के अतिरिक्त सभी ने विवाह के लिए इनकार कर दिया। देवता को इस बात पर क्रोध आया और उसने शाप दिया कि उस कन्या के अतिरिक्त सभी कुब्जा हो जावें। अतः इन्हीं ९९ कुब्जा (कुबड़ी) कन्याओं के कारण इस नगर का नाम 'कन्या-कुब्ज' या 'कान्य-कुब्ज'[5] प्रसिद्ध हो गया।

जैन-ग्रंथ 'वृहत्कथा' के अनुसार इन्द्रपुर (इस नगर का प्राचीन नाम) के राजा के द्वारा यमदग्नि की भेंट की हुई कन्या उनके जटा-जूट-

---

१. (अ) कुशनाम तु धर्मात्मा पुरंचक्रे महोदयम् — वा० रा० ३६, ६, बाल कांड। (ब) पद्म् पुराण ३-५, १६३ (स) बाल रामायण ३०६ (द) काव्यमीमांसा ८ पृष्ठ।

२ 'कान्यकुब्ज महोदयम्' अभिधान चिन्तामणि-हेमचन्द्र 'कान्यकुब्ज' महोदयम् — अभिधान रत्नमाला हलायुध कृत, शब्दार्थ रत्न समन्वय, वैजयन्ती आदि।

३, 'कुशस्थलम् कान्यकुब्जम्'-अभिधान-संग्रह २ '१६१। शब्दकल्पद्रुम हर्ष-चरित, पृष्ठ ६०३, महाभारत— उद्योग पर्व।

४. कुशनामस्तु राजर्षिः कन्या कन्याशत। जनयामास धर्मात्मा घृताच्याम् रघुनन्दनः॥ वा० रा० ३२-६।

५. ददृवाथुना च ता कन्या तम् कुब्जी कृतापरा।
कान्यकुब्जमिति ख्यातम् ततः प्रभृति तत् पुरम्।

युक्त शरीर को देखकर भयभीत हुई और भाग गई और फलतः ऋषि ने शाप दिया कि इस नगर की सारी कन्याएं कुब्जा हो जावें। इसी कारण 'इन्द्रपुर' 'कान्यकुब्ज' नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'कन्नोज' और 'कनउज' इसी कान्यकुब्ज[1] के विकसित रूप है।

विश्वामित्र के पिता गाधि के राजा होने के कारण इस नगर को गाधि-पुरी[2] या गाधि-नगर भी कहा गया है। ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा-पुस्तक में इसका नाम 'कुसुमपुर' भी लिखा है[3]।

कन्नौज-नगर और साम्राज्य

अब तो 'कन्नौज' केवल नगर मात्र रह गया है, परन्तु प्राचीन काल में 'कान्यकुब्ज' नगर तथा प्रदेश दोनों के लिये अभिहित किया गया है। पौराणिक वर्णनों के अनुसार कान्यब्कुज एक जनपद था जिसके प्रथम शासक अमावसु (इला के पुत्र) के वंशज थे। पद्मपुराण के उल्लेख से भी प्रतीत होता है कि 'कान्य-कुब्ज' एक प्रदेश था[४]। महाभारत के समय 'कान्य-कुब्ज' दक्षिण पंचाल के अन्तर्गत था जिसकी राजधानी कांपिल्य थी। हर्ष के समय में भी यह नगर तथा साम्राज्य दोनों रूप में था। यजुर्वेद, ब्राह्मण-ग्रंथों, आरण्यकों तथा उपनिषदों में देश तथा निवास करनेवाले लोगों के लिये पंचाल तथा पांचाल नाम पाया जाता है। परवर्ती संस्कृत-साहित्य तथा 'अंगुत्तर-निकाय' में १६ जनपदों में से पंचाल भी एक है।

---

१ 'कान्यकुब्ज, ''कण्णउज्ज,' 'कन्नउज्ज', कनउज, 'कनौज,' 'कन्नौज'।

२. महोदयं गाधि पुरम्— शब्द कल्पद्रुम, राजतरंगिणी।

३. यात्रा-वर्णन— ह्वेनसांग

४. देवा नागा मनुष्याश्च क्षेत्रेऽस्मिन्सन्ति नारद।
सार्द्धत्रिकोटितीर्थानि कन्याकुब्ज चतुर्युगे। पद्मपुराण (कन्या कुब्ज माहात्म्य पंचम अध्याय)

वैदिक-काल—

वैदिक-काल में कन्नौज 'पंचाल जनपद' के नाम से प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि भरतवंशी भ्रम्यश्व के पाँच पुत्रों के नाम पर इसका नाम पंचाल पड़ा। पाँच नदियों[1] से सिंचित होने के कारण भी इसका नाम पंचाल कहा जाता है। यहाँ की तत्कालीन राजधानी कांपिल्य थी। इसकी सम्पन्नता का उल्लेख यजुर्वेद में हुआ है[2]। सुदास[3] के समय पंचाल की चरम उन्नति हुई। पंचाल के प्रवहण जैबालि प्रसिद्ध दार्शनिक हुए हैं। बृहदारण्यक-उपनिषद्[4] में श्वेतकेतु का इनके पास आने का उल्लेख मिलता है। पंचाल के विद्वानों और तत्त्व-ज्ञानियों ने संहिता और ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना में पूर्ण योग दिया है[5]।

महाभारत-काल—

महाभारत-काल में पंचाल की प्रसिद्धि बढ़ी। पृषत् की मृत्यु के पश्चात् पंचाल के राजा द्रुपद हुए। उन्होंने धीरे-धीरे सारे पंचाल पर अधिकार कर लिया। महाभारत से ज्ञात होता है कि एक घटना ऐसी घटी जिससे उत्तर-पंचाल और दक्षिण-पंचाल अलग-अलग हो गए। भारद्वाज आश्रम में द्रोण और द्रुपद सहपाठी और एक दूसरे के परम मित्र थे। शिक्षा-दीक्षा पाने के पश्चात् द्रुपद द्रुपद-पुर (कांपिल्य) के राजा हो गए। द्रोण धनुर्वेद की शिक्षा परशुराम के पास लेने चले गये। वहाँ से लौट-

---

१. गंगा, रामगंगा, बूढ़ी गंगा, यमुना तथा काली नदी।

२. अम्बेऽम्बिकेऽम्बालिके न मानयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां कम्पिल-वासिनीम्। यजु० २८-१८

३. अग्नि-पुराण २७७–२० गरुड़-पुराण१–१४०–६।

४. श्वेतकेतुर्हवा आरुणेयः पांचालानां परिषदमाजगाम। स आजगाम जैबालिं प्रवहणं परिचयमाणम्। बृहदारण्यक १।२

५. वाजसनेयी-संहिता ११–३–२–७

कर द्रोण एक बार द्रुपद के यहाँ पहुचे और कहा, "राजन्, मैं आपका प्रिय सखा द्रोण हूं, आपने मुझे पहॅचान तो लिया ? द्रुपद क्रोध मे आकर बोले "ब्राह्मण, तुम्हारी बुद्धि अभी परिपक्व नही हुई, भला अपना मित्र बतलाते समय तुम्हें कुछ भी हिचकिचाहट न मालूम हुई। राजाओं की निर्धनों से क्या मित्रता ? यदि कभी हो भी जावे तो समय बीतने पर मिट भी जाती है।" द्रुपद की यह गर्वोक्ति सुनकर द्रोण को अतीव क्रोध आया और वे वहाँ से चल दिए।

एक दिन हस्तिनापुर में अर्जुन आदि राजकुमारों की गेंद एक कुए में गिर गई। सब राजकुमार विवश होकर ताक रहे थे। द्रोण पहुंचे और बोले-- "धिक्कार है तुम्हारे क्षत्रिय-बल और शस्त्र-कौशल को, कुएं से गेंद नहीं निकाल सकते", 'देखो", द्रोण ने गेंद को तीर से बेध लिया और एक तीर के ऊपर दूसरा, तीसरा और चौथा बेधते गये। पश्चात् गेंद डोरी की तरह खिचकर ऊपर आ गई। राजकुमारों को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। द्रोण को बाबा भीष्म के पास ले गए और गुरु बना लिया। सभी राजकुमारों ने गुरु से धनुर्वेद की पूरी शिक्षा ली। शिक्षा समाप्त होने पर गुरु-दक्षिणा का प्रश्न उपस्थित हुआ। द्रोण ने कहा, "द्रुपद को बन्दी बनाकर मेरे सम्मुख उपस्थित करो, मैं द्रुपद को उसी उत्तर का पाठ पढ़ाना चाहता हूं। "बस कौरव राजकुमार द्रुपद को बंदी बनाने के लिये चल दिये, किन्तु असफल रहे। फिर पांडव गये और द्रुपद को बन्दी बना लाये। द्रुपद द्रोण के सम्मुख आकर अत्यन्त लज्जित हुए। मित्रता के योग्य होने के लिये द्रोण ने आधा राज्य दक्षिण-पचाल द्रुपद को दे दिया। दूसरी घटना पांचाली (द्रोपदी) के स्वयंवर की है। महाभारत-युद्ध के समय पंचाल ने पांडवों का पक्ष लिया था। द्रुपद, धृष्टद्युम्न तथा शिखंडी विशिष्ट योद्धा थे। युद्ध के पश्चात् भीम ने अपनी विजय-यात्रा पंचाल प्रदेश से ही प्रारम्भ की थी।

महाभारत का परवर्ती-काल—

महाभारत-युद्ध के पश्चात् दर्शन का जोर बढ़ा। भारत के सर्व-

प्रथम दर्शनशास्त्र के प्रणेता कपिल हुए जिन्होंने सांख्य का प्रतिपादन किया। यह मुनि जनश्रुतियों के अनुसार काम्पिल्य के उपवनों के बीच किसी आश्रम में निवास करते थे। युद्ध के पश्चात् एक शासक हरिषेण का वर्णन आता है। ब्रह्मदत्त नामक एक दूसरे सार्वभौम राजा का वर्णन है। ऐसा ही महाउम्मग जातक[1] में एक उल्लेख मिलता है।

जैन-ग्रंथों के अनुसार महावीर स्वामी ने जनता को उपदेश देना यहीं से आरम्भ किया था। जैनियों के १३ वें तीर्थकर विमलनाथ का जन्म यहीं हुआ[2] था और वे सदा यहीं रहे। स्वयं ऋषभ-देव ने भी अपना उपदेश काम्पिल्य नगरी में ही दिया था[3]। बौद्ध और जैन-साहित्य में पंचाल सम्बन्धी अनेक विवरण मिलते हैं। प्रसिद्ध बौद्ध-ग्रंथ 'अंगत्तर-निकाय' में वर्णित १६ महाजनपदों में पंचाल का प्रमुख स्थान है। बौद्ध-काल में संकिसा एक बड़ा तीर्थ स्थान बन गया। यहाँ की प्रसिद्ध बौद्ध-भिक्षुणी उत्पला का नाम बौद्ध-साहित्य में चिरस्मरणीय रहेगा। ऐतरेय-ब्राह्मण की रचना भी पंचाल में ही हुई। प्रायः सभी इतिहासकारों का मत है कि सूत्र-ग्रंथों [श्रौत्र, धर्म, गुह्य) की रचना पंचाल एवं कान्य-कुब्ज प्रदेश में ही हुई। महात्मा बुद्ध के पश्चात् लगभग एक शताब्दी तक पंचाल स्वतंत्र राज्य के रूप में रहा। चौथी शती में महापद्मनन्द ने उसे अपने अधीन कर लिया। नन्दों के बाद क्रमशः मौर्यों और शुंग वंशों के अधीन यह प्रान्त हो गया। कुषाण और गुप्त राजाओं के पश्चात् मौखरी, गुर्जर, प्रतीहार तथा गहरवाल वशी शासकों के अधिकार में पंचाल रहा।

यद्यपि कन्नौज का नाम पंचाल के प्राचीन विवरणों में निरन्तर आता रहा है और बौद्धकाल में गंगा द्वारा होने वाले व्यापार का केन्द्र

---

१. काम्पिल्य पुर—तीर्थकल्प—(सं० २१)

२. (तिलोय परिणत्ति, अ० २)

३. महापुराण (१६८, ६८१)

रहा है, किन्तु ईसा की छठी शताब्दी में तो इस नगर की समृद्धि इतनी बढ़ी कि न केवल पंचाल का ही यह गौरव था, बरन् सारे उत्तरी भारत की राजधानी बन गया।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी से कन्नौज के सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट बातें मालूम होने लगती है। बौद्ध-ग्रंथों तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग के वर्णनों से पता चलता है कि भगवान् बुद्ध कान्यकुब्ज में पधारे थे। विहार के अन्दर बुद्ध का दाँत भी रखा हुआ था जिसके दर्शन के लिए दर्शकों की भीड़ लगी रहती थी। यह भी कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध स्वर्ग से स्वयमेव कान्यकुब्ज में ही अवतीर्ण हुए और यहीं के प्रसिद्ध स्तूप[1] में ६ मास ठहरकर उन्होंने अनेक व्याख्यान दिये।[2]

पतंजलि ने अहिच्छत्री और कान्यकुब्जी-महिलाओं के नाम लिए हैं। मौर्य-सम्राट् अशोक के बाद उसके पुत्र जलौक ने कान्यकुब्ज-प्रदेश में चारों वर्णों को ले जाकर उन्हें कश्मीर में बसाया। मौर्यों के बाद क्रमशः कन्नौज पर शुंग, मित्र तथा कुषाण-वंशी शासकों का आधिपत्य रहा। मौर्य-काल के पश्चात् ५ वीं शताब्दी तक कन्नौज का कोई प्रमुख रूप से विवरण नहीं मिलता है।

मौखरी-वंश का शासन

ईशा की छठी शताब्दी के मध्य में उत्तरी भारत में मौखरी-वंश का प्रादुर्भाव हुआ जिसने कन्नौज को अपना केन्द्र बनाया। इस शाखा के पहले तीन शासक हरिवर्मा, आदित्यवर्मा और ईशानवर्मा गुप्त सम्राटों के सामन्त थे। ईशानवर्मा गुप्त-साम्राज्य के पतन हो जाने पर स्वतंत्र हो गए और उन्होंने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। इसने हूण-आक्रमण का मूलोच्छेद कर दिया और एक सुदृढ़ तथा

१—कीलहार्न—महाभाष्य पृ० ३३।

२—बील कृत--फाहियान की यात्रा।

सुव्यस्थित राज्य की स्थापना की। ईशान्वर्मा के प्रपौत्र ग्रहवर्मा तथा थानेश्वर के शासक प्रभाकरवर्धन की पुत्री राज्यश्री के वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा भारत के दो प्रसिद्ध राज-वंश, मौखरी और वर्धन एक सूत्र में बँध गए। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के पश्चात् देवगुप्तगौड़ और शशांक ने कन्नौज पर आक्रमण किया और ग्रहवर्मा युद्ध में मारे गए और राज्यश्री को कारागार में डाल दिया गया। यह समाचार पाकर राज्यवर्धन ने मालवराज को पराजित करके शशांक को घेरा। शशांक ने धोखे से उसे मार डाला। ज्योंही यह समाचार कन्नौज पहुँचा, त्योंही राज्यश्री निराश होकर आत्मघात करने के लिए विंध्याचल के जंगलों की ओर भागी। हर्ष ने जब यह समाचार पाया तो उनके क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने शशांक को पराजित किया और राज्यश्री को आत्मघात से रोककर उसके शासन को प्रतिनिधि के रूप में चलाया। राज्यश्री के कोई सन्तान न थी, अतएव कुछ समय पश्चात् कान्यकुब्ज के सिंहासन से मौखरी राजाओं का शासन समाप्त हुआ और पुश्यभूति-वंश के शासक हर्ष की राजधानी कन्नौज बनी।

हर्ष—

राज्यवर्धन् के बाद उनके छोटे भाई हर्ष राज्य के अधिकारी हुए। हर्षचरित में इस राजा के प्रारम्भिक काल का विस्तृत वर्णन मिलता है इसके अतिरिक्त' मंजुश्री, ' शल्यकल्प, आदि ग्रंथों से तथा हर्ष के समय के प्राप्त कई अभिलेखों से तत्कलीन इतिहास का पता चलता है। राज्यारोहण के साथ ही हर्ष ने एक विशाल सेना तैयार की और उसकी सहायता से उत्तर और पूर्व के अनेक राज्यों को जीता। राज्यश्री तथा मंत्रियों के आग्रह से हर्ष को कन्नौज का भी शासन ग्रहण करना पड़ा। हर्ष ने कुछ वर्षों में ही अपनी विशाल सेना की सहायता से एक बड़े साम्राज्य का निर्माण कर लिया। वर्तमान उत्तर-प्रदेश, विहार, बंगाल,

उड़ीसा के प्रायः सभी राज्य हर्ष के साम्राज्य के अन्तगत ही हो गए। इसके पश्चात् उसने दक्षिण की ओर अभियान किया परन्तु तत्कालीन चालुक्य सम्राट् पुलकेशिन् द्वितीय से उसे पराजित होना पड़ा।

हर्षवर्धन ने विशाल एवं दृढ़ साम्राज्य की स्थापना तो की ही, उसके समय में साहित्य, कला और धर्म की भी उन्नति हुई। वाण तथा मयूर जैसे रत्न उसकी सभा में विद्यमान थे। वाण का विद्वान् पुत्र भूषणभट्ट, आचार्य दंडी, मातंग दिवाकर तथा मुनि तुंगाचार्य भी हर्ष की सभा के रत्न माने जाते थे। हर्ष स्वयं एक अच्छा लेखक था। नालंदा के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय को भी हर्ष ने सहायता प्रदान की। इसके समय कन्नौज आए हुए चीनी यात्री ह्वेनसांग ने कन्नौज के विषय में लिखा है कि भारत भर में दूसरा कोई भी नगर इतना समुन्नत उसे देखने को न मिला।

हर्ष बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का भी आदर करता था। उसकी दानशीलता बहुत प्रसिद्ध है। प्रयाग में गंगा यमुना के संगम पर प्रति पांचवें वर्ष वह दान करता था। ह्वेनसंग को हर्ष ने बहुत अधिक सम्मानित किया था।

यशोवर्मा—

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् यशोवर्मा नामक शासक का पता चलता है। इसके आश्रित कवि वाक्पति के 'गौड़वहो' काव्य में यशोवर्मा की अनेक विजय-यात्राओं का उल्लेख मिलता है। यह बड़ा विद्या-प्रेमी था इसकी सभा में भवभूति जैसे नाटककार सुशोभित होते थे। यह चन्द्रवंशी राजा था। कुछ लोग इसे मौखरी-वंश का भी बतलाते हैं। कश्मीर के तत्कालीन शासक ललितादित्य ने यशोवर्मा को पराजित कर कन्नौज पर अपना आधिपत्य स्थापित किया।

कन्नौज के प्रतिहार शासक—

मगध के प्रतापी राजा धर्मपाल का सामन्त कन्नौज का शासन कर

रहा था। मालवराजा वत्सराज के पुत्र नागभट्ट ने ८१० ई० के लगभग कन्नौज को जीता। राष्ट्रकूट राजा नागभट्ट के पश्चात् मिहिर भोज, महेन्द्रपाल, महीपाल आदि कई शासकों ने कन्नौज पर शासन किया[१]।

विदेशी आक्रमण

९७५ ई० में सुबुक्तगीन ने कन्नौज पर आक्रमण किया और राज्यपाल ने खर्रम की घाटी में संग्राम किया, परन्तु पराजित हुआ। तत्पश्चात् १०१८ में महमूद गजनवी २० दिसम्बर को कन्नौज आ धमका[२]। यहाँ का शासक राज्यपाल डर कर भाग गया। गजनवी ने आकर कन्नौज को लूटा और ध्वस्त किया। राज्यपाल ने अधीनता स्वीकार कर ली। भारतीय राजे यह सहन न कर सके और उन्होंने राज्यपाल को मारकर त्रिलोचनपति को गद्दी पर बैठाया। पुनः गजनवी ने आक्रमण किया और त्रिलोचनपति भी भाग गया। इस वंश का अन्तिम राजा महीपाल १०३६ ई० तक रहा। महमूद गजनवी ने कन्नौज की भूरि-भूरि प्रशंसा की है[3]।

---

1. Munshi -- Glory that was Gujara Desh Page 151.
2. R. S. Tripathi -- History of Kanauj, Page 285.
3. Mahmood saw the city which raised its head to the skies which in strength and sculpture might justly have no equal "Mahmood's letter to the Governor of Gazani. Again," There are innumberable temples. No other city can be constructed like this even in two centuries after millions and millions of Denar's. But our army destroyed the whole city in a short period '.

R. S. Tripathi—History of Kanauj
Page 337.

गाहड़वाल-वंश—

१०३१ ई० से १०७२ ई० तक कर्णदेव ने शासन किया। इसे कीर्तिवर्मा चन्देल और सोमेश्वर चालुक्य ने पराजित किया। तत्पश्चात् १०८० ई० गाहड़वाल वंश में रामचन्द्रदेव का प्रादुर्भाव हुआ जिसने कन्नौज को पुनः बसाया तथा शासनसूत्र सँभाला। ११०० ई० से चंद्रदेव की मृत्यु के पश्चात् १११४ ई० तक अयोग्य तथा निर्बल शासक महीपाल ने राज्य किया। उसके जीवन-काल में ही उसका पुत्र गोविन्दचन्द्र इस वंश का सबसे योग्य और प्रतापी शासक हुआ। वह विद्या-प्रेमी भी था। उसने अन्य राज्यों से भी सम्बन्ध स्थापित किया। इसका पुत्र विजयचन्द्र ११५०-७० ई० तक शासन करता रहा। विजयचन्द्र ने अपनी जीवितावस्था में ही राज्य-भार अपने पुत्र जयचन्द्र को सौंप दिया। इसका राज्यारोहण २१ जून, रविवार ११७० ई० (आषाढ़ शुक्ल ६,१२२६ वि०) को हुआ। इसके नामकरण के बारे में कहा जाता है कि 'इनके पितामह गोविन्दचन्द्र ने इसके जन्म के दिन दशार्ण देश पर विजय प्राप्त की थी इसीलिये इसका नाम जयचन्द्र रखा गया[1]। सूर्य प्रकाश ग्रंथ के अनुसार इसके पास ३० हजार घोड़े, ३ लाख पैदल, २ लाख धनुर्धर और कितने ही हाथियों के दल थे। विद्यापति कृत 'पुरुष-परीक्षा' और रंभामंजरी से ज्ञात होता है कि शहाबुद्दीन गोरी जयचन्द्र से कई बार हारकर भाग गया था और इसीलिये उसे 'निखिल यवन-क्षय-करः' कहा गया है। पृथ्वीराज रासो में भी उसकी विशाल सेना के कारण उसे 'पहुपंग'[2] कहा गया है।

जयचन्द्र के दरबार में नैषधकार श्रीहर्ष रहते थे। उन्होंने कान्यकुब्ज सम्राट् के द्वारा अपने सम्मान का उल्लेख महाकाव्य के अन्त में

---

१. R. S. Tripathi–History of Kanauj, Page 321.

२. चन्द्रबरदाई–पृथ्वीराज रासो (रेवातट समय)

किया है[१]। जयचन्द्र द्वारा राजसूय-यज्ञ और संयोगिता-स्वयम्वर की बात टाड के अतिरिक्त कोई भी प्रसिद्ध इतिहासकार नहीं मानता। इसका कारण इतिहासकार यह बतलाते हैं कि उस समय न तो स्वयम्वर की ही प्रथा थी और न जयचन्द्र का इतना बड़ा राज्य ही जो वह राजसूय-यज्ञ करता। 'रंभा-मंजरी' की रचना जयचन्द्र को नायक मान कर की गई, परन्तु इसमें इसका कुछ भी उल्लेख नही है। कोई भी इतिहासकार इसे नहीं मानता कि जयचन्द्र ने शहाबुद्दीन गोरी को पृथ्वीराज के विरोध में आक्रमण करने का निमंत्रण दिया। इस प्रकार बिना किसी सशक्त प्रमाण के जयचन्द्र पर देशद्रोही का अभियोग लगाना सर्वथा अन्यायपूर्ण है। ११९४ ई० में गोरी ने ५० हजार सैनिकों को लेकर कन्नौज पर चढ़ाई की। चंदावर (जि० इटावा) के युद्ध में जयचन्द्र ने बहादुरी से सामना किया। और अपनी सेना का संचालन स्वयं किया। मुसलमान लेखकों के विवरणों से पता चलता है कि चंदावर का युद्ध बड़ा ही भयानक हुआ। जयचन्द्र पराजित हुआ और मारा गया। गोरी कुतुबुद्दीन को भारत का शासक बनाकर लौट गया। इस प्रकार कन्नौज मुसलमानों के अधिकार में चला गया। जयचन्द्र कन्नौज का अन्तिम प्रतापी शासक था।

यवन-काल

११९४ ई० के पश्चात् भारत की राजधानी दिल्ली हुई और शासन-प्रबन्ध गुलाम बादशाहों के हाथ में चला गया[२]। कन्नौज और उसके आसपास के प्रदेश भी गुलामों के अधिकार में आ गये। परन्तु फिर भी इस समय के राजपूत अपनी स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न करते रहे। १३वीं शताब्दी के मध्य की स्थिति लगभग अराजकता की थी। सारे राज्य में लुटेरों का बोल-बाला था। कम्पिल और भोजपुर इन

---

१. 'ताम्बूलद्वयमासनञ्च लभते यो कान्यकुब्जेश्वरात्'—'नैषध'

२. R. S. Tripathi-History of Kanauj, Page 322.

लुटेरों के मुख्य गढ़ थे । इनका आतंक यहाँ तक बढ़ा कि स्वयं बलबन को यहाँ आना पड़ा । उक्त दोनों स्थानों पर किले वनवाकर उसने इन स्थानों को लुटेरों से मुक्त किया । बलबन ने इतना अच्छा प्रबन्ध कर दिया कि साठ वष बाद का वर्णन करता हुआ जियाउद्दीन बर्नी लिखता है कि सड़कें चोरों और लुटेरों से खाली थी ।

मुहम्मद तुग़लक के शासन-काल मे एक बार फिर इस प्रदेश पर सकट आया । १३४० ई० में विद्रोहियों को दबाने के लिए उसने कन्नौज से लेकर डलमऊ तक का सारा प्रदेश उजाड़ डाला । जब इब्राहीम लोदी को हराकर बाबर दिल्ली का बादशाह हुआ तो उसने अवध और कन्नौज इन दोनों प्रदेशों को अपने एक मित्र और सम्बन्धी मुहम्मद सुलतान मिर्जा को दे दिया । जब हुमायूँ बादशाह हुआ तो कन्नौज के शासक मुहम्मद सुलतान मिर्जा ने, जो अवध का भी शासक था, अवध में विद्रोह कर दिया । इस विद्रोह को दबाने के लिए हुमायूँ ने भोजपुर में डेरा डाला और विद्रोहियों को पकड़ लिया । जब १५३७ ई० हुमायूँ बंगाल में दूर तक बढ़ गया था उसी समय कन्नौज शेरखाँ (शेरशाह) के हाथों आ गया । चौसा-युद्ध में हारने के बाद हुमायूँ शेरखाँ से विलग्राम, (कन्नौज के पास) जिला हरदोई में फिर हारा । हुमायूँ की हार का परिणाम यह हुआ कि शेरशाह का अधिकार दिल्ली पर हो गया । इधर कन्नौज पर इसका प्रभाव यह पड़ा कि यहाँ पर फर्मूली अफगानों का प्रभाव बढ़ गया ।

अकबर के शासन-काल में इस प्रदेश में अलीकुली खाँ और बहादुर खां ने १५६५ ई० और १५६७ ई० में विद्रोह किए । १५६७ ई० में अकबर भोजपुर तक ही आ पाया था कि विद्रोही शेरगढ़ के किले के घेरे को छोड़ कर भाग गए । अलीकुलीखां इलाहाबाद में लड़ता हुआ मारा गया और उधर बहादुर खां पकड़ कर शाही-आज्ञा से मार दिया गया । अकबर ने साम्राज्य के प्रबन्ध की ओर ध्यान दिया और सारे साम्राज्य

को प्रान्तों में बाँटा और इन प्रान्तो को भी छोटे विभागों में। आगरा प्रान्त का एक विभाग कन्नौज भी था जिसमें अस्सी परगने या मुहाल सम्मिलित थे।[१]

जहाँगीर ने १६१० ई० में कन्नौज का शासन मिर्जा अब्दुर्रहीम के हाथों में दिया। उस समय इस प्रदेश में अशान्ति फैली थी। लुटेरों को कठोरता से दबा देने का आदेश रहीम को दिया गया, परन्तु उन्हें यह काम पूरा किये बिना ही दक्षिण जाना पड़ा। रहीम के बाद इसका शासन पिहानी के मीरन को दिया गया जिसकी मृत्यु १६२० ई० में हो गई। १६२० ई० से १७०७ ई० तक इस प्रदेश में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटित हुई।

बंगश-वंश

मऊ रशीदाबाद के पठान सरदार मुहम्मद खाँ बंगश ने फरुखसियर की कृपा प्राप्त करके अपने को शक्तिशाली शासक बनाया। फर्रुखसियर ने इसे नवाब की पदवी दी। मुहम्मद खाँ ही ने फर्रुखसियर के नाम पर फर्रुखाबाद नगर को बसाया। १७४३ ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र कायमखाँ गद्दी पर बैठा। १७५० ई० में राजा नवलराय ने कन्नौज और फर्रुखाबाद पर अधिकार कर लिया। परन्तु कायमखाँ के पुत्र अहमदखाँ ने उसे पराजित किया। नवाबी की यह परम्परा १८५७ ई० की क्रान्ति तक चलती रही।

फर्रुखाबाद में अंग्रेज

नवाब आसफुद्दौला की अंग्रेजों के साथ १७७५ ई० की संधि के अनुसार कम्पनी की सेना का अवध में रहना निश्चित हुआ था। १७७७ ई० में नवाब ने ६ बटालियन सैनिक, तोपखाना तथा घुड़-सवारों की माँग की। अतः यह सेना कम्पनी की सेना के साथ फतेहगढ़

१. संतोषकुमार त्रिपाठी 'बचनेश अभिनन्दनग्रन्थ' में 'दिल्ली में यवन-शासन का प्रारम्भिक काल' पृष्ठ ७४।

में रखी गई। ४ लाख व्यय का रुपया न आने पर वारेन हेस्टिंग्ज ने यहाँ पर रेजीडेंट रख दिया था जो कार्नवालिस के समय वापिस बुला लिया गया। १७७६ ई० में मुजफ्फरजंग की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार का प्रश्न आया। समझौते द्वारा नासिरजंग को ५० हजार रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया गया, परन्तु अन्य सब बातों में अमीनुद्दौला (संरक्षक) के पास अप्रतिहत अधिकार थे। ४ जून, १८०२ में हेनरी वेलेजली तथा नासिरजंग में संधि हुई जिसके अनुसार नवाब ने अपने अधिकृत सम्पूर्ण-प्रदेश के बदले में एक लाख आठ हजार रुपये वार्षिक-पेंशन लेना स्वीकार कर लिया तथा सारी जागीरों की भूमि, जो मुजफ्फरजंग की मृत्यु के पूर्व से चली आती थी, दे दी।

सन् १८५७ की क्रान्ति

१८५७ ई० की स्वाधीनता की प्रथम भारतीय क्रान्ति में फरुखाबाद ने भी भाग लिया और अंग्रेजों के हाथ से लगभग ७ मास तक स्वाधीन रहा। क्रान्ति के कारण वही थे जो सब जगह चल रहे थे। मेरठ के विद्रोह का समाचार लगभग चार दिन बाद फतेहगढ़ पहुचा और वहाँ के अँग्रेज अधिकारियों ने १० मई को मीटिंग बुलाकर निश्चित किया कि खजाना इत्यादि प्रमुख स्थानों पर सैनिक बढ़ा दिए जावें। १० नं० की नेटिव-इन्फेण्ट्री ने कर्नल ए० स्मिथ की स्वामिभक्ति की शपथ ली थी। फिर भी गुप्तरूप से पता चला कि सैनिक केवल अवसर की बाट जोह रहे हैं। दि० २७ को प्रोविन को यह सूचना मिली कि अवध के इर्रेगुलर पैदल और घुड़सवार सैनिक जो कानपुर में थे, यहाँ भेजे जा सकते है। प्रोविन ने यह उत्तर दिया कि दसवीं रेजीमेंट पर तभी तक विश्वास किया जा सकता है जब तक कि बाहर के सैनिकों से उनका सम्पर्क न हो। शाहजहांपुर में विद्रोह सुनकर घटिया घाट की नावों का पुल तुड़वा दिया गया पर २ जून को तीन विद्रोही-रेजीमेंटों ने गंगा पार कर ली। इस समाचार के फैलते ही

कि मुरसहायगंज वाली सेना के आते ही दसवी रेजीमेंट विद्रोह कर देगी. ३ जून की रात्रि को ११५ अंग्रेजपुरुष-स्त्री और बच्चों ने १२ नावों पर सवार होकर गंगा के मार्ग से भाग कर हरदेवबक्स के धर्मपुर के किले में शरण ली। १७ जून को एक छोड़कर पुलिस के सारे सिपाही गंगा पार विद्रोहियों से जा मिले। इसी रात्रि में भारतीय अफसरों के कहने पर कर्नल स्मिथ अंग्रेजों के साथ किले में चला गया। रेजीमेंट के लोगों ने तफज्जल हुसेन को अपना नवाब घोषित करके उसको तोपों से सलामी दी। विद्रोहियों ने २५ जून को किले पर आक्रमण किया। ३ जुलाई को जब सिपाहियों ने प्राचीर के नीचे सुरंग लगानी शुरू की तो ४ जुलाई की रात्रि को ३ बजे तीन नावों पर सवार होकर सारे १२० अंग्रेज लोग भागे। कुछ लोग मार डाले गए और कुछ को कैद किया गया। जिनको नवाब की अनिच्छा होते हुए भी विद्रोही पुलिस के दारोगा गुलामअली ने मार डाला। नवाब होने की घोषणा के बाद शासन को सँभाला गया। वंगश-परिवार के अशरत खाँ ने वास्तविक राज्य अपने हाथ में ले लिया और न्याय की व्यवस्था के लिए एक न्यायालय खोला गया जिसका सभापति अशरतखाँ स्वयं था। एक अच्छी सेना का भी संगठन किया गया जिसका सेनापति आगा-हुसेन था। दिल्ली से एक फरमान आया जिसमें तफज्जल हुसेन को फर्रुखाबाद का शासक मान लिया गया और मुक्त कराने वाली इकतालीसवीं इंफेण्ट्री की बड़ी प्रशंसा की गई। ४१वीं इंफेण्ट्री के अधिकारियों ने पहला काम यह किया कि सम्पूर्ण प्रदेश में गोहत्या बन्द करवा दी और कूड़ा ढोने के लिए बैल के स्थान पर गधे काम में लाये जाने लगे।

कानपुर, दिल्ली और लखनऊ पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। अवध और रुहेलखण्ड अब भी विद्रोही थे परन्तु उनके और फरुखाबाद के विद्रोहियों के बीच गंगा लहरें ले रही थी। ग्राण्ड-ट्रंक-रोड

मे होकर एक अंग्रेजी सेना बढ़ रही थी। नवाब ने एक अन्तिम प्रयत्न किया और जितनी शक्ति एकत्र कर पाया उससे काली नदी पर इस सेना का सामना किया। इस उद्योग में वह सफल न हो सका और २ जनवरी सन् १८५८ को कैम्पवेल ने उसे हरा दिया। ३ जनवरी को इस मेना ने फतेहगढ़ में पदार्पण किया। नवाब तफज्जल हुसेन ने यह सोचकर कि अब सब समाप्त हो गया, अपने को अंग्रेजों की दया पर छोड़ दिया। उसे राजद्रोह और योरोपियनों की हत्या के अपराध में प्राण-दंड दिया गया। परन्तु अपील पर उसे केवल देश-निकाला दिया गया और वह मक्का चला गया। वह दुर्ग जिसमें नवाब रहा करता था भूमिसात् कर दिया गया। उसी स्थान पर आज फरुखाबाद तहसील और टाउन-हाल बना हुआ है इसके अतिरिक्त नवाब गजनफरखां और नवाब इकबालखां को १८६२ में पीपल के पेड़ पर तथा १८६३ ई० में नवाब सखावतहुसेनखां को इमली के पेड़ पर विद्रोही होने के अभियोग में फांसी दी गई।

ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी की सत्ता समाप्त होने के पश्चात् फतेहगढ़ में अंग्रेजों की एक छावनी स्थापित की गई और यह नगर भारत का एक मुख्य सैनिक केन्द्र बना। सन् १९१९ से लेकर १९४७ तक स्वतंत्रता के लिए चलने वाले संग्राम में इस प्रदेश ने अपनी स्वतंत्रता का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कन्नौज का इतिहास अनेकानेक विपमताओं का इतिहास है। यहां अनेकों राजाओं ने शासन किया है। इस राजनीतिक-हलचल से यहां की संस्कृति पर भी प्रभाव पड़ा है। यहां के कुछ लोक-गीतों में इस राजनीतिक-हलचल, अत्याचार और अशान्ति का आभास हमें देखने को मिल सकता है।

कन्नौज प्रदेश का भौगोलिक परिचय

स्थिति

भौगोलिक दृष्टि मे कन्नौज प्रदेश २६° और २७° उत्तरीअक्षांश तथा ७९° और ८०° पूर्वी-देशान्तर के मध्य में स्थित है।

नदियाँ

यह प्रदेश गंगा और यमुना के दोआब के अंतर्गत आता है। भूमि समतल तथा चौरस है। कोई छोटा मोटा भी पहाड़ नहीं है। गंगा, यमुना, राम-गंगा, बूढ़ीगंगा, काली नदी, ईसन तथा अरिन्द नदियों ने यहाँ की भूमि को उपजाऊ तथा हरा भरा बनाया है। गंगा और यमुना ने न केवल इस भूमि को पवित्र ही किया है, वरन् रत्न-प्रसू भी बना दिया है।

भूमि

इस प्रदेश में दुमट, मटियार तथा भुरभुरी तीनों प्रकार की मिट्टी मिलती है और इसी कारण यहाँ सब प्रकार के अन्नों की बहुतायत मे उपज होती है। कंकड़ीली-पथरीली और ऊसर-जमीन का नितान्त अभाव है।

सिंचाई

भूमि की सिंचाई के लिये यहाँ की नदियाँ बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं। नदियों के किनारे की भूमि की सिंचाई नदियों के पानी से की जाती है। इसके अतिरिक्त नदियों से नहरें निकाली गई हैं जिनसे किनारे से दूर की भूमि को भी सरलता से सींचा जा सकता है। जहाँ नहरें नही हैं वहाँ कुएँ से सिंचाई की जाती है। जहाँ भुरभुरी मिट्टी होती है वहाँ की खेती को सींचना ही नहीं पड़ता और बिना सिंचाई के ही पर्याप्त मात्रा में उपज होती है।

पैदावार

यहाँ की मुख्य पैदावार गेहूं, जौ और चना है। जहाँ मटियार-भूमि है वहाँ धान भी पैदा होता है। भुरभुरी-भूमि वाले स्थानों में मूंगफली भी पैदा होती है। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश में ज्वार, बाजरा, मक्का, मूंग, उड़द, अरहर, मटर, लाही, सरसों, तिल, अंडी, अलसी आदि भी पैदा होती है। गन्ना, तम्बाकू, आलू, तरबूज खरबूजा, शकरकन्द, गोभी आदि की पैदावार यहाँ के लोगों को समृद्ध बनाये हुये है। यहाँ खरीफ, रबी तथा जायद तीन फसलें होती है।

आमों के बाग भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है। आमों को बाहर भी भेजा जाता है। कन्नौज नगर के आस-पास फूलों की पर्याप्त मात्रा में खेती होती है, क्योंकि कन्नौज में बनने वाले इत्र के लिए इन फूलों की बहुत खपत होती है।

व्यापार

कन्नौज के इत्र का व्यापार न केवल भारत में ही होता है, वरन् वह विदेशों में भी भेजा जाता है। इसी प्रकार फरुखाबाद में फर्दों की छपाई बहुत अच्छी होती है। इन फर्दों को कई देशों में भेजा जाता है और इस प्रकार फर्दों के व्यापार से फरुखाबाद को लगभग २० लाख प्रति वर्ष का लाभ होता है[1]। यहाँ की तम्बाकू का व्यापार भी सारे देश से होता है। कायमगंज भारत के तम्बाकू के व्यापार के प्रमुख केन्द्रों में से एक है। पीतल के बरतनों के बनाने का फरुखाबाद एक अच्छा केन्द्र है। शकर का अच्छा व्यापार इस प्रदेश में होता है। शाहजहाँपुर में शकर के कई मिल हैं जिनकी बनी हुई शकर प्रान्त के अनेक स्थानों को जाती है। इटावा का घी बड़ा ही प्रसिद्ध है और यह प्रान्त के

---

१. कमलेशमिश्र—'वचनेश अभिनन्दन ग्रन्थ' में 'फ़रुखाबाद जनपद, एक सामान्य पर्यालोचन' लेख, पृष्ठ १९६।

प्रमुख नगरों में व्यापार के लिये भेजा जाता है। इन व्यापारों के अतिरिक्त अन्य अनेकों और भी छोटे-मोटे व्यापार यहाँ होते हैं।

जलवायु

यहां पर गर्मी जाड़ा और बरसात तीन मौसम होते हैं। गर्मी में अधिक से अधिक ११२° फारेनहाइट तापमान होता है और जाड़ों में कम से कम ४०° फारेनहाइट। इस प्रकार न तो यहां भयंकर गर्मी ही पड़ती है न जाड़ा ही। प्रायः आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद तथा क्वाँर में काफी वर्षा होती है जाड़ों मे एक दो बार से अधिक वर्षा नहीं होती। पश्चिमी तथा पूर्वी दोनों मानसून यहां पर पानी बरसाते हैं।

जनता

यहां की जनसंख्या लगभग ४४ लाख है[1] और यहाँ सभी वर्णों के लोग पाये जाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अहीर, कायस्थ, लोधी, कहार, नाई, कुम्हार, चमार, धोबी, धानुक, काछी, कुर्मी, गड़रिया, बारी, लुहार, सुनार, बढ़ई, कोरी, जाचक आदि अनेक जातियों के लोग निवास करते हैं। मुसलमान, सिख, ईसाई भी रहते हैं। परन्तु उनकी संख्या अत्यल्प है। समाज में ब्राह्मणों का स्थान बहुत ऊँचा है। अन्य वर्गों के लोग इन्हें 'पंडित जी' या 'महराज' कहकर पुकारते हैं तथा श्रद्धा से उनका चरण-स्पर्श करते हैं। सभी वर्णों के लोग प्रायः खेती ही करते हैं क्यों कि यहां यही मुख्य पेशा है।

९९ प्रतिशत जनता ग्रामों में रहती है। ग्राम भी बहुत छोटे-छोटे होते हैं। खेती करके जीविका-निर्वाह करने के कारण इनका रहन-सहन बहुत ही सादा है।

---

१. सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार।

'कनउजी-भाषा'

वैज्ञानिक अध्ययन के लिए विश्व की भाषाओं को कई परिवारों में विभाजित किया गया है। इस विभाजन के अनुसार हिन्दी भारतीय आर्य-परिवार की एक प्रमुख भाषा है। भाषा-शास्त्र की दृष्टि में मध्य-देश की मुख्य बोलियों के समुदाय को ही हिन्दी नाम दिया गया है।[1] हिन्दी को भी 'पश्चिमी हिन्दी उपभाषा' और 'पूर्वी हिन्दी उपभाषा'—दो भागों में बाँटा गया है। इस 'पश्चिमी हिन्दी उपभाषा' वर्ग के अन्तर्गत 'खड़ीबोली,' 'बाँगरू,' 'ब्रज,' 'कनउजी' और 'बुन्देली' पाँच उपरूप हैं।[2]

ऐतिहासिक दृष्टि से 'कनउजी' का विकास वैदिक संस्कृत > पाँचाली पालि > पाँचाली प्राकृत > अपभ्रंश से हुआ है।

'कनउजी' का नामकरण—

'कनउजी' भाषा का नामकरण आधुनिक फर्रुखाबाद जिले में स्थित कन्नौज नगर के नाम पर हुआ है। प्राचीन भूगोल के अनुसार कन्नौज न केवल नगर का ही नाम था, वरन् जो क्षेत्र इसके अधीन थे, उन्हें भी कन्नौज कहा जाता था[3]। इस प्रकार राजधानी और राज्य दोनों एक ही नाम के थे। आज जो 'कनउजी' या 'कन्नौजी' शब्द का प्रयोग होता है, उसका आशय है—प्राचीन कन्नौज-साम्राज्य में बोली जानेवाली भाषा। कन्नौज संज्ञा में हिन्दी—'इ' प्रत्यय लगाकर 'कन्नौजी' शब्द बनाया गया है।

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा० हिन्दी भाषा और लिपि, पृष्ठ ४७

२. डा० ग्रियर्सन: लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया भाग ६, खण्ड १, पृष्ठ १

३. वही, पृष्ठ ३८२

इस भाषा के 'कन्नौजी'[१] 'कन्नौजी'[२] और 'कनोजिया'[३]—तीन नामों का उल्लेख मिलता है। 'कन्नौज' को यहाँ की भाषा बोलनेवाले लोग 'कनउज' कहते हैं। अतः इस भाषा को 'कनउजी' कहना ही समुचित है। पर, साहित्यिक खड़ी बोली मे इस नगर के नाम का उच्चारण 'कन्नौज' है। अतः इस दृष्टि से इसे 'कन्नौजी' भी कहा जा सकता है।

'कनउजी' का क्षेत्र-विस्तार—

'कनउजी' का क्षेत्र 'ब्रज-भाषा' और 'अवधी' के बीच का पड़ता है। यह भाषा उत्तर में 'कुमायूनी', पूर्व में 'अवधी', दक्षिण में 'बुन्देली' और पश्चिम मे 'ब्रज' से घिरी हुई है।

अपने विशुद्धरूप में 'कनउजी' फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, इटावा[४] जिलों में तथा पश्चिमी कानपुर और हरदोई के कुछ भागों में बोली जाती है। कानपुर जिले के पूर्वी भाग में 'अवधी' और दक्षिणी भाग में 'बुदेली' का प्रभाव है। हरदोई जिले की संडीला तहसील के लिए कहना कठिन है कि वहाँ की भाषा 'कनउजी' है अथवा 'अवधी।' यहाँ की भाषा को वास्तव में 'मिश्रित भाषा' कहना चाहिए'[५]। जिला पीलीभीत की भाषा के रूपों में 'ब्रज-भाषा' का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है[६]। मोटे रूप से कहा जा सकता है कि 'कनउजी' के क्षेत्र के अन्तर्गत

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा, ग्रामीण हिन्दी, पृष्ठ १२

२. डा० ग्रियर्सन, लिंग्विस्टिक सर्वे आफ् इण्डिया भाग ६, खण्ड १ पृष्ठ १

३. फर्रुखाबाद डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पृष्ठ १२१ (१६११ संख्या)

४. डा० ग्रियर्सन: लिंग्विस्टिक सर्वे आफ् इण्डिया, भाग ६, खण्ड १ पृष्ठ १

५. वही, पृष्ठ ३६५

६. वही, पृष्ठ ४००

फरुखाबाद, शाहजहाँपुर, हरदोई, कानपुर, इटावा और पीलीभीत—छः जिले आते हैं[1]।

जनसंख्या तथा क्षेत्र-फल—

सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार 'कनउजी' बोलनेवालों की संख्या लगभग ४४ लाख है और यहाँ का क्षेत्रफल कुल मिलाकर ७,७६१ वर्गमील है। जिलावार जनसंख्या तथा क्षेत्रफल निम्न प्रकार से है।

जिला	जनसंख्या	क्षेत्रफल (वर्ग-मील)
फरुखाबाद	१०,९२,६४१	१,६६०
इटावा	९,७०,६९५	१,६८८
शाहजहाँपुर	१०,०४,३७८	१,७६०
पीलीभीत	५,०४,४२८	१,३४३
तहसील—		
अकबरपुर (कानपुर)	१,८२,८९७	३६८
डेरापुर (कानपुर)	३,०४,४८०	४०३
शाहाबाद (हरदोई)	३,१४,८५५	५३९
	४३,७८,३७४	७,७६१

'कनउजी' की विशेषताएँ—

१. 'ब्रज', 'कनउजी' और 'अवधी' में मुख्य भेद यह है कि साहित्यिक 'खड़ीबोली' के संज्ञा, विशेषण तथा क्रियाओं के 'आकारान्त' रूप इन तीन भाषाओं मे क्रमशः 'औकारान्त', 'ओकारान्त'[2] तथा 'अकारान्त' या 'आकारान्त' हो जाते हैं। 'खड़ीबोली' के 'घूरा', 'बड़ो' और 'गया' 'ब्रज' में 'घूरौ', 'बड़ौ' और 'गयौ'; 'कनउजी' में 'घूरो',

१. ग्रियर्सन: लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया भाग ९ खण्ड १ पृष्ठ ८२—८३

२. वही, पृष्ठ ८-८३

'बड़ो' और 'गओ' तथा 'अवधी' में 'घूर', 'बड़का' और 'गा' हो जाते हैं। अन्य उदाहरणों को लेकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिन शब्दों के खड़ी बोली में 'आकारान्त' रूप हैं वे 'कनउजी' में 'ओकारान्त' हो जाते हैं। इस नियम के कुछ ही अपवाद हैं।

२. क्रिया के भविष्य - निश्चयार्थ के रूपों के लिए 'खड़ीबोली' में—'ग' प्रत्यय लगाकर रूप-रचना होती है, पर 'कनउजी' में इस काल के लिए— 'ग' प्रत्यय का प्रयोग किसी भी क्षेत्र में नहीं मिलता[1] वरन् इसके लिए—'ह' प्रत्यय प्रयुक्त होता है। 'ब्रज' के रूप चलुगों के लिए 'कनउजी' में 'चलिहौं' पाया जाता है।

३. लड़िका शब्द के—'आ' का एक वचन विकृत-रूप-ए कनउजी में नहीं मिलता[2]। 'लड़के ने दूध पी लिया' के स्थान पर 'लड़िका ने दूध पी लओ' होगा। इस वाक्य में 'लड़िका' शब्द ज्यों का त्यों बना रहा।

४. मध्य-'ह' का लोप हो जाता है[3]। यह प्रवृत्ति फरुखाबाद के दक्षिणी-भाग तथा इटावा में पाई जाती है। 'ब्रज' का रूप 'जाहिं' और 'लेहु' 'कनउजी' में क्रमशः 'जाय' और 'लेउ' होते हैं।

५. 'त्' अन्त्य भूतकालिक कृदन्तों के बाद 'खड़ीबोली' के 'था' के 'कनउजी' में थो या 'तो' रूप हो जाते हैं। पर 'थो' या 'तो' का प्रयोग विकल्प से ही होता है, क्योंकि जात् हतो, कहत् हतो—ऐसे रूप भी 'कनउजी' में मिलते हैं।

६. संकेत वाचक सर्वनाम 'यह' 'वह' के 'ई', ऊ एवं 'जौ', 'बौ' रूप मिलते हैं।

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा: ब्रजभाषा, पृष्ठ ६७

२. डा० ग्रियर्सन: लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया भाग ६, खण्ड १, पृष्ठ ८३

३. वही, पृष्ठ ८३

७. व्यञ्जनान्त संज्ञाओं में कहीं कही 'उ' जुड़ जाता है। यह प्रवृत्ति 'ब्रज' में भी है, पर 'कनउजी' में यह अधिक मात्रा में पाई जाती है[1]।

८. व्यञ्जनान्त संज्ञाओं तथा क्रिया के बाद हरदोई और शाहजहाँपुर में—'इ' जुड़ जाती है[2]। जैसे दाल > दारि, कहत < कहति, जान हैं < जाति हंइं।

९. 'कनउजी' में 'लड़का चला गया' के लिए 'लड़िका ने चलो गओ' प्रयोग मिलता है[3]। इस प्रकार का प्रयोग आदश हिन्दी के नियमों के विरुद्ध है और इसे डा० धीरेन्द्र वर्मा ने 'कनउजी' की व्यक्तिगत विशेषता मानी है[4]।

'कनउजी' और 'ब्रजभाषा'

डा० ग्रियर्सन ने 'कनउजी' की स्वतंत्र-सत्ता को अस्वीकार करते हुए कहा है कि 'कनउजी' वास्तव में 'ब्रजभाषा' का ही एक रूप है और इसको पृथक् स्थान सर्वसाधारण में पाई जानेवाली भावना के कारण दिया गया है[5]। इसी को आधार मानकर डा० धीरेन्द्र वर्मा ने भी 'कनउजी' को स्वतंत्र बोली न मानकर[6] उसे 'ब्रज-भाषा' का ही एक उपरूप बतलाया है। 'कनउजी' के ब्रजभाषा के उपरूप होने के सम्बन्ध में उन्होंने निम्न कारण दिये हैं[7] :—

---

१. डा० ग्रियर्सन: लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया। भाग ६, खंड १, पृष्ठ ८४

२. वही, पृष्ठ ८३

३. वही, पृष्ठ ८३

४. डा० धीरेन्द्र वर्मा: ब्रजभाषा, पृष्ठ ३४

५. डा० ग्रियर्सन: लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग ६ खंड १ पृष्ठ १

६. डा० धीरेन्द्र वर्मा: ब्रजभाषा पृष्ठ ३४

७. वही, पृष्ठ ३४

१. 'कनउजी' की ओकारान्त' सम्बन्धी विशेषता के लिए उन्होंने कहा है कि 'ओकारान्त' शब्द ग्रियर्सन के अनुसार 'ब्रज' के पूर्वी-क्षेत्रों में भी मिलते हैं। इस तर्क के उत्तर में कहा जा सकता है कि 'ब्रज' में तो 'ओकारान्त रूप' केवल पूर्वी-भाग में 'कनउजी' के सीमान्त जिलों में पाए जाते हैं। अतः इन रूपों पर 'कनउजी' का प्रभाव हो सकता है। दूसरी ओर 'कनउजी' में 'ओकारान्त' की प्रवृत्ति सर्वत्र पाई जाती है। अतः यह 'कनउजी' की ही विशेषता है।

२. 'गओ', 'लओ', 'दओ' और सहायक-क्रिया के भूतकाल के रूप 'हतो' 'ब्रज' मे भी मिलते हैं[1]। इसका भी उत्तर यह है कि यह रूप 'ब्रज' में सर्वत्र न मिलकर केवल सीमान्त-जिलों में उपलब्ध होते हैं। अतः ये प्रयोग भी 'कनउजी' से लिए हुए हो सकते हैं। 'जौ' और 'बौ' के लिए भी यही कहा जा सकता है।

३. 'ह' के लोप को उन्होंने केवल 'कनउजी' की ही विशेषता नहीं मानी है। ठीक है, पर इस दृष्टि से 'कनउजी' 'ब्रज' से प्रभावित तो नहीं कही जा सकती।

४. व्यञ्जनान्त शब्दों मे 'इ', 'उ' जुड़ जाने को उन्होंने 'अवधी' का प्रभाव माना है, हो सकता है कि यह 'अवधी' का ही प्रभाव हो। पर इसका आशय यह तो नहीं हो सकता कि 'कनउजी' 'ब्रज' का उपरूप है।

यह बात अवश्य ही मानी जा सकती है कि 'कनउजी' और 'ब्रज' सगी बहनें हैं।

प्राचीन काल से ही 'कान्य-कुब्ज' की भाषा ने आसपास के प्रदेशों पर प्रभाव डाला है। प्राकृत और अपभ्रंश-काल में ब्रज तथा बुन्देलखण्ड कन्नौज-साम्राज्य के अन्तर्गत थे। अतः इन प्रदेशों की भाषाओं पर कन्नौज की प्राकृत और अपभ्रंश ने पर्याप्त प्रभाव डाला। पर कन्नौज के साम्राज्य के नष्ट हो जाने तथा 'ब्रज' के कृष्ण-भक्ति-आन्दोलन के

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रज-भाषा, पृष्ठ ३३

कारण 'ब्रज' ने 'बुन्देली' और 'कनउजी' पर आधिपत्य जमा लिया। 'ब्रज-भाषा' से अधिक प्रभावित होते हुए भी 'कनउजी' की स्वतंत्र-सत्ता तो है ही। पर 'ब्रज', 'कनउजी' और 'बुन्देली' में इतना अधिक साम्य है कि तीनों को अलग-अलग भाषा न कहकर एक भाषा के तीन रूप कहना अधिक समीचीन है।

उपभाषाएँ

(१) इटावा की 'कनउजी'—

इटावा के दक्षिणी-भाग में चम्बल और यमुना का दोआब है। इस भूभाग में 'बुन्देली' की उपबोली 'भदौरी' बोली जाती है। जिले के शेष सभी भागों की भाषा 'कनउजी' है। इटावा के उत्तर पश्चिम में जिला मैनपुरी है, जिसकी भाषा 'ब्रज' है। उत्तर में फर्रुखाबाद है और पूर्व में कानपुर। इन दोनों जिलों में 'कनउजी' बोली जाती है। इन जिलों से घिरे होने के कारण इटावा की 'कनउजी' पर 'ब्रज' और 'भदौरी' का प्रभाव स्वाभाविक ही है। पर समग्र-रूप से देखने पर कहा जा सकता कि वहाँ की भाषा पर्याप्त मात्रा में विशुद्ध 'कनउजी है[१]।

यहाँ की 'कनउजी' 'ब्रज' और 'भदौरी' दोनों से प्रभावित है। जिस भू-भाग की भाषा अपेक्षाकृत 'ब्रज' से अधिक प्रभावित है उस भाषा को 'पचरुआ' कहते हैं[२]। जहाँ अपेक्षाकृत 'भदौरी' का अधिक प्रभाव है, वहाँ की भाषा का कोई अलग से नाम नही है[३]। सीमा की दृष्टि से उसे इटावा के दक्षिणी-पश्चिमी भाग की 'कनउजी' कहना उपयुक्त होगा।

---

१. डा० ग्रियर्सन: लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग ६, खंड १, पृष्ठ ३६०

२. वही, पृष्ठ ३६०

३. वही, पृष्ठ ३६०

(क) 'पचरुआ'—

सेंगर नदी द्वारा इटावा लगभग दो बराबर भागों में विभाजित हो गया है। यह नदी उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर यमुना के समानान्तर बहती है। यदि चम्बल और यमुना के दोआब को छोड दिया जावे, तो सेंगर और यमुना के बीच के भाग के दक्षिणी-पश्चिमी और यमुना के पार का भाग, उत्तरी-पूर्वी—दो भाग हो जाते हैं। इस उत्तरी-पूर्वी भाग का स्थानीय नाम 'पचार' है तथा स्थानीय अधिकारी यहाँ की भाषा को 'पचरुआ' कहते हैं। 'पचरुआ' पर दक्षिणी-पश्चिमी भाग की भाषा की अपेक्षा 'ब्रज' का प्रभाव अधिक है और 'भदौरी' का कम[1]।

'पचरुआ' की कुछ स्थानीय विशेषताएँ ये हैं :—

१. कुछ ऐसे शब्द जो आदर्श 'कनउजी' में निरनुनासिक है, यहाँ सानुनासिक हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—'कें', 'कों', 'सें', 'तें', 'बाँय'।

२. व्यंजनों का समीकरण हो जाता है—'परदेश', 'पद्‌देस[2],

३. वहाँ के लिए इस स्थान की भाषा में 'जुआं', शब्द पाया जाता है।

४. 'ई', 'इउ' तथा 'ऊ' के लिए यहाँ 'ज़' तथा 'बू' पाया जाता है। 'ज़' और 'बू' के विकारी रूप 'जा' और 'वा' हैं।

५. कर्त्ताकारक का चिह्न 'ने' 'भदौरी' से प्रभावित है[3]।

६. पूर्वकालिक क्रिया 'कें' 'भदौरी' से प्रभावित है[4]।

(ख) दक्षिणी-पश्चिमी इटावा की 'कनउजी'—

'पचरुआ' और दक्षिणी-पश्चिमी भाग की बोली में अन्तर केवल

---

१. डा० ग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया भाग ६, खंड १, पृष्ठ ३६०

२. वही, पृष्ठ ३६०

३. वही, पृष्ठ ३६०

४. वही, पृष्ठ ३६०

इतना ही है कि 'बुन्देली' की उपभाषा 'भदौरी' का इस पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव है[1] ।

अन्य पुरुष (सर्वनाम) के विकारी रूप 'बा' का प्रयोग यहाँ होता है, 'वा' का नहीं । फलतः कर्त्ताकारक के रूप 'वह' के साथ-साथ 'बा' का भी प्रयोग होता है । भूतकाल की अकर्मक क्रिया के लिये भी कर्त्ताकारक की विभक्ति, 'ने' का प्रयोग यहाँ होता है । जैसे—'अच्छे लड़िका ने चलो' । वस्तुतः संस्कृत के मुहावरा 'तेन चलितम्' का ही यह रूप है[2]

(२) शाहजहाँपुर की 'कनउजी'—

हरदोई और खेरी जिले के पश्चिम मे जिला शाहजहाँपुर स्थित है । यहाँ का भाषा आदर्श 'कनउजी' से बहुत ही अधिक साम्य रखती है और वस्तुतः इसकी बहुत ही कम स्थानीय विशेषताएँ हैं[3] :—

१. आदर्श 'कनउजी' में कर्म तथा सम्प्रदान-कारक का चिह्न 'को' है, पर यहाँ की 'कनउजी' में 'का' है । उदाहरण—'हमका दइदेउ' ।

२. आदर्श 'कनउजी' में अधिकरणकारक का चिह्न 'में' है, पर इसका चिह्न 'मां' और 'महियाँ' है ।

३. 'उइ' के स्थान पर ,आहि'[4] का प्रयोग खेरी की 'अवधी' के प्रभाव के कारण हो सकता है ।

४. भूतकाल की अकर्मक-क्रिया का प्रयोग भी आदर्श 'कनउजी' से नितान्त भिन्न है—'लरिका ने चलो' ।

(३) पीलीभीत की 'कनउजी'—

शाहजहाँपुर के उत्तर में जिला पीलीभीत है । पास ही में 'ब्रज-

---

१. ग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग ६, खंड १, पृष्ठ ३६२

२. वही, पृष्ठ ३६२

३ वही, पृष्ठ ३६८

४. वही, पृष्ठ ३६८

भाषा' बोले जानेवाले जिला बरेली के कारण यहाँ की 'कनउजी' 'ब्रज' से प्रभावित हैं। यहाँ की भाषा मुख्य-रूप से 'कनउजी' है, पर कहीं-कहीं विकल्प से 'ब्रज' के रूप भी इसमें मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ 'कनउजी' 'थो' का प्रयोग बड़ा ही व्यापक है, पर कहीं-कहीं 'ब्रज' का रूप 'हो' भी देखने को मिलता है। इसी प्रकार के अपवादों को छोड़कर यहाँ की बोली ठीक वही है, जो शाहजहाँपुर की [1]।

(४) सीमान्ती 'कनउजी'—

(क) हरदोई की 'कनउजी'—

जिला हरदोई गंगा के बाँये किनारे शाहजहाँपुर के पूर्व में स्थित है। अवध का केवल यही एक ऐसा पश्चिमी जिला है, जिसकी भाषा 'अवधी' न होकर 'कनउजी' है[2]। यद्यपि स्थानीय अधिकारी यहाँ की भाषा को तीन-चार प्रकार की बतलाते हैं, पर यह अन्तर 'अवधी' के मिश्रण के आधार पर ही है[3]। इस जिले के पूर्व में उन्नाव तथा लखनऊ और उत्तर में खेरी है, जिन सबकी भाषा 'अवधी' है और इसीलिये यह स्वाभाविक है कि स्थानीय 'कनउजी' में मिश्रण हो जावे। यह मिश्रण बहुत थोड़ा है। हाँ, संडीला तहसील में बहुत अधिक है।

यहाँ की 'कनउजी' की स्थानीय विशेषताएँ ये हैं :—

१. 'अकारान्त' पुल्लिग शब्दों के 'अकारान्त' कर देने की इसमें प्रधान-प्रवृत्ति है। उदाहरणार्थ—'भग्तु', 'खेतु', 'एकु' और 'हमु'।

२. व्यंजनान्त-शब्दों का 'इकारान्त' रूप में प्रयोग की भी यहाँ बलवती प्रवृत्ति है। यह बात अवश्य है कि यह यहाँ की मुख्य विशेषता

---

१. डा० ग्रियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया भाग ६, खण्ड १, पृष्ठ ३९८

२. वही, पृष्ठ ३९५

३. वही, पृष्ठ ३९२

है, पर शाहजहाँपुर, पीलीभीत, कानपुर सभी स्थानों में यह किसी न किसी रूप में अवश्य पाई जाती है ।

३. 'उसे' के स्थान पर 'तेहि' तथा अधिकरण कारक 'परदेमैं' ऐसे प्रयोग हैं जिन पर 'अवधी' का प्रभाव है ।

४. 'अवधी' के प्रभाव के कारण 'लगो' का 'लागो' तथा 'मैं' का 'मां' रूप यहाँ मिलता है ।

(ख) पूर्वी हरदोई (संडीला) की भाषा—

तहसील संडीला तीन ओर से उन्नाव, लखनऊ तथा सीतापुर जिलों से घिरी है, जिनकी भाषा 'अवधी' है । इसी कारण 'अवधी' ने यहाँ की भाषा को बहुत अधिक प्रभावित किया है और इस प्रकार 'अवधी' का मिश्रण यहाँ सर्वाधिक है । पर यहाँ की भाषा पर कुछ प्रभाव 'कनउजी' ने भी अवश्य डाला है[1] ।

'आकारान्त' पुल्लिग के संज्ञा, विशेषण तथा कृदन्तों का 'आकारान्त' रूप ही बना रहता है, आदर्श 'कनउजी' की भाँति 'ओकारान्त' नहीं होता । 'हतो' कनउजी-रूप है पर 'अवधी' के प्रभाव के कारण यहाँ हता' हो जाता है ।

यहाँ की भाषा के कुछ रूप इस प्रकार हैं :—

आदर्श 'कनउजी'	संडीला की भाषा
'गओ'	'गा', 'गवा'
'दओ'	'दीन्ह'
'कहन लगो'	'कहैं लाग'[2]

(ग) कानपुर की 'कनउजी'—

इटावा, फर्रुखाबाद, उन्नाव, फतेहपुर, हमीरपुर और जालौन जिलों

---

1. डा० ग्रियर्सन: लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग ६, खंड १, पृष्ठ ४११

2. वही, पृष्ठ ४११

मे कानपुर घिरा हुआ है। इस प्रकार 'कनउजी', 'अवधी' और 'बुन्देली' तीन भाषाओं से घिरी होने के कारण यहाँ की स्थानीय-भाषा मिश्रित है, पर वह 'कनउजी' से अधिक प्रभावित है[१]। यमुना के किनारे की 'कनउजी' पर 'अवधी का अधिक प्रभाव है और इसे 'तिरहारी[२]' नाम दिया गया है। 'तिरहारी' का वर्णन आगे किया जावेगा।

यहां की भाषा की ध्वनि-सम्बन्धी विशेषताएँ :—

१. 'ए' विकल्प मे 'या' हो जाता है 'एक' या 'याकु' का या 'क्यार'।

२. 'ऐ' विकल्प से 'य' हो जाता है—'जेहि' या 'ज्यहि'

३. 'ओ विकल्प से 'वा' हो जाता है—'तोर' या 'त्वार' 'मोर' या 'म्वार' 'थोर' या 'थ्वार'।

४. 'ओ' विकल्प से 'व' हो जाता है—'ओहि' या 'वहि', 'तोहि' या 'त्वहि', 'मोहि' या 'म्वहि'।

व्याकरण-सम्बन्धी विशेषताएँ:—

१. कर्म-कारक के चिह्न 'कइहाँ' या 'का' 'अवधी' से प्रभावित हैं।

२. सम्बन्ध-कारक के चिह्न 'क', 'केर' या 'क्यार' भी 'अवधी' से ही प्रभावित है।

३. सहायक-क्रिया 'हैं' का यहाँ 'अहिन'[3] रूप मिलता है, जिस पर भी 'अवधी' का स्पष्ट प्रभाव है। 'गओ' का 'गा' रूप भी प्रचलित है।

---

३. डा० ग्रियर्सन: लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग ६ खंड १ पृष्ठ ४०१

१. वही, पृष्ठ, ४०१

२. वही, पृष्ठ ४०२

४. भविष्यत्-काल में 'कनउजी' में 'ह' प्रत्यय लगता है, पर यहाँ अवधी' का 'ब' प्रत्यय प्रयुक्त होता है—मरिहै > मरिबे ।

५. 'कनउजी' 'जइबे कौ' का यहाँ 'जायँ का' रूप मिलता है ।

घ) कानपुर की 'तिरहारी'—

कानपुर जिले में यमुना के किनारे की बोली का स्थानीय नाम तरहारी' है । हमीरपुर और जालौन में यमुना के किनारे की बोली 'बुन्देली' शब्द अवश्य मिलते हैं, पर उसका आधार 'अवधी' है। कान-र की 'तिरहारी' में यद्यपि अवधी-रूप पर्याप्त मात्रा में है, पर उसका ाधार 'कनउजी' ही है । इसी कारण हमीरपुर और जालौन की ारहारी' को 'अवधी' के अन्तर्गत तथा कानपुर की 'तिरहारी' 'कनउजी' के अन्तर्गत विवेचन किया जाता है[1] ।

कानपुर की 'तिरहारी' हमीरपुर के सामने यमुना के किनारे बोली जाती । अतः उसमें 'अवधी' के साथ ही 'बुन्देली' के शब्द भी आ गये हैं । मिश्रण यांत्रिक सा है[2] । यदि एक वाक्य में 'लड़िका' 'कनउजी' तो दूसरे में 'लरिका' 'अवधी' ।

'मैं' के स्थान पर 'माँ'; महूँ, 'गओ' के स्थान पर 'गा', 'भओ' स्थान पर 'भा' 'भवा' आदि अवधी-रूप प्रचुर मात्रा में मिलते हैं ।

'दीन्होस', 'लीन्होस', 'डारोस', 'पठौस' आदि रूप 'बुन्देली' हैं[3] ।

'उसे' = 'ओहका', 'मुझे' = 'मोहका', 'तुझे' = 'तोहका' आदि रूप मिलते हैं ।

डा० ग्रियर्सन: लिंग्विस्टिकसर्वे आफ् इंडिया भाग ६, खण्ड १ पृष्ठ ४०१
वही, पृष्ठ ४०६
वही, पृष्ठ ४०६

'कनउजी का स्थूल व्याकरण'

संज्ञा की रूपरचना—'कनउजी' में संज्ञा के मुख्यतः दो ही रूप होते हैं—मूल तथा विकारी। कुछ संज्ञाओं में मूल-रूप के एक वचन के रूप से बहुवचन का रूप भिन्न होता है, पर ऐसी संज्ञाएँ बहुत कम ही है।

संज्ञा के विविध रूपः—

	पुल्लिग		स्त्रीलिंग	
	ह्रस्वान्त	दीर्घान्त	ह्रस्वान्त	दीर्घान्त
एक वचन				
कर्त्ता	घर, घरु	जनो	बात	घोड़ी
विकारी	घर, घरु	जनो	बात	घोड़ी
बहु वचन				
कर्त्ता	घर, घरु	जने	बातै	घोड़ी
विकारी	घरन, घरनु घरनि	जनेन	बातन	घोड़िन

मूलरूप एकवचन—हिन्दी अकारान्त-संज्ञा 'कनउजी' में मूल रूप एक वचन में 'ओकारान्त' हो जाते हैं और इसमें 'ब्रज' की 'औकारान्त' संज्ञाओं का नितान्त अभाव है।

मूलरूप बहुवचनः—'ओकारान्त' संज्ञाओं के बहुवचन रूप में 'ओ' के स्थान पर 'ए' हो जाता है[1] : जनो > जने, काँटो > काँटे। पर व्यंजनान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अन्त में एँ जोड़ा जाता है—ईट > ईटैं[2]।

विकारी-रूप एक बचनः—'ओकारान्त' संज्ञाओं में 'ओ' के स्थान पर 'ए' हो जाता है, जैसा कि मूल रूप बहुवचन में होता है—घूरो > घूरे। उदाहरण—'कूरा घूरे मैं डारि आवौ'।

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रज-भाषा, पृष्ठ ५८
२. वही, पृष्ठ ५८

विकारी रूप बहुबचन—व्यंजनान्त संज्ञाओं में 'अन्' जोड़कर विकृत रूप बहुबचन बनता है[1]। दाम् > दामन्, बात > बातन्, खेत् > खेतन्।

लिंग—'कनउजी' में संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण के स्त्रीलिंग तथा पुल्लिग दो ही रूप होते हैं। छोटे-छोटे जानवर और पतिंगों के सम्बन्ध में लिंग के किसी निश्चित सिद्धान्त पर आधारित रूप नहीं होते[2]। 'जुगनू' 'झिंगुरी' स्त्रीलिंग हैं जबकि 'सारस' और 'बगुला' पुल्लिग।

प्राणियों की द्योतक संज्ञाओं के सहगामी स्त्रीलिंगरूप बनाने के लिए व्यंजनान्त संज्ञाओं में 'इन्' प्रत्यय लगाया जाता है—जाट् > जाटिन। 'अकारान्त' संज्ञाओं में 'अ' के स्थान पर 'ई', 'ईकारान्त' संज्ञाओं मे 'ई' के स्थान पर 'इन्' जोड़कर पुल्लिग से स्त्रीलिंग रूप बनाए जाते हैं—लड़िका > लड़िकी, धोबी > धोबिन।

बचन—आदर्श-हिन्दी की तरह 'कनउजी' में भी दो ही वचन होते हैं—एक वचन और बहुवचन। एक वचन से बहुवचन बनाने की प्रक्रिया का उल्लेख संज्ञा के मूल और विकारी-रूपों के विवेचन के प्रसंग में किया जा चुका है। 'कनउजी' में आदरार्थ विशेषण और क्रिया के बहु-बचन के रूप एक बचन की संज्ञा के साथ भी प्रयोग में लाये जाते हैं। 'कनउजी' में बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें सर्वनाम के बहु-वचन के रूपों का प्रयोग सर्वथा एक वचन के लिए भी होता है। एक वचन के रूपों का प्रयोग तो अब बच्चों अथवा समाज के निम्न-स्तर के लोगों के लिए ही रह गया है।

सर्वनाम—

सर्वनाम की रूपरेखा निम्न प्रकार है:—

पुरुष वाचक सर्वनाम

एक वचन	उत्तम पुरुष	मध्यम पुरुष	अन्य पुरुष
कर्त्ता	'मैं'	'तू,' 'तूँ', 'तैं', 'तुइ'	'वहु', 'वुहि', 'उहि' 'बौ' 'वउ', 'उओ', 'ऊ'

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा पृष्ठ ४८   2. वही, पृष्ठ ४५

विकारी	'मो'[१]	'तो'[२]	'उहि', 'वहि', 'वा', 'बा'
कर्म, सम्प्रदान	'मोहि'	'तोहि', तोय'[३]	'उसै'
सम्बन्ध	मेरो, मोरी,	तेरो, तेरी,	....
	'मेरी', 'मोरी'	तोरो, तोरी	....

हुवचन

कर्त्ता	'हमु', 'हम'	'तुम' 'तुम्ह'[४]	'बे', 'बै' "बे" 'वे'
विकारी	'हमु', 'हम'	'तुम'	'उन'
कर्म, सम्प्रदान	'हमैं'	'तुम्हैं', 'तुमैं'', 'तुमहिं' ।	'उन्हैं' 'उनै'
सम्बन्ध	'हमारे', 'हमारी'	'तुमारे', 'तुम्हारी'	......
	'हमारे', 'हमरे',	'तुम्हारे', 'तुमारो'	......
	'हमरी', 'हमरे'	'तुमारी',	......

निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम—'कनउजी' में ये रूप निम्न प्रकार से पाये जाते हैं:—

कर्त्ता, एक वचन—'यहु', 'यिहु', 'इहु', 'जउ', 'जहु', 'जू'[५] 'इआ,[६] इओ' ।

विकारी रूप—'जा', 'या', 'ई', 'एहि', 'जाहि', 'ज्याहि' ।

कर्म, संप्रदान—'इसै', 'जाय' ।

कर्त्ता, बहुवचन—'जै', 'जइ' ।

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रज-भाषा पृष्ठ ५५
२. वही, पृष्ठ ६७
३. वही, पृष्ठ ६७
४. वही, पृष्ठ ६७
५. इटावा में मिलता है ।
६. डा० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रज-भाषा पृष्ठ ४७२

विकारी-रूप—'इन'

कर्म, सम्प्रदान—'इन्हैं', 'इनै', 'याहि', 'जाहि'।

सम्बन्ध-वाचक-सर्वनाम:—

कर्त्ता कारक, एक वचन—'जो', 'जौन', 'जौनु', 'जउन', 'जउनु'।

विकारी-रूप—'जेहि', 'जा'।

कर्म, सम्प्रदान—'जिसै'।

कर्त्ता, बहुवचन—'जो', 'जौन', 'जौनु', 'जउन', 'जउनु'।

विकारी-रूप—'जिन'।

कर्म, सम्प्रदान—'जिन्हैं', 'जिनै', 'जिनइं', 'जिनहिं'।

प्रश्न-वाचक-सर्वनाम—'कौन'

कर्त्ता, एक वचन—'कौन', 'कौनु', 'कउन', 'कउनु', 'को'।

विकारी-रूप—'केहि', 'का'।

कर्म, सम्प्रदान—'किसै'।

कर्त्ता, बहुवचन—'को', 'कौन', 'कौनु', 'कउन', 'कउनु'।

विकारी-रूप—'किन'।

कर्म, सम्प्रदान—'किन्है', किनै।

अनिश्चय-वाचक सर्वनाम—

कर्त्ता एक वचन—'कोई', 'कोउ', 'कौनौ', कउनौ'।

विकारी-रूप—'कौनौं', 'कउनौ', 'किसऊ।

विकारी-रूप' बहुवचन—'किनऊँ।

पर-सर्ग:—

कर्त्ता—'नें', 'नै'।

कर्म, सम्प्रदान—'कौ', 'का', 'काँ', 'कं',[1] 'कउ',[2] 'कइहां'[3]।

---

१. पूर्वी इटावा में।

२. शाहजहाँपुर में।

३. कानपुर में।

अधिकरण—'मैं', 'पै', 'मां',[१] 'महं', 'महिआँ',[२] 'मइहाँ'।

करण तथा अपादान—'से', 'सें', 'ते', 'तें', 'सन',[३]।

सम्बन्ध—'को', 'की', 'के'।

केवल भूतकाल में सकर्मक धातु के कर्त्ता के पश्चात् ही 'मै' पर सर्ग आता है। 'कनउजी' में 'कौ' रूप साधारणत: प्रयोग में आता है, पर शाहजहाँपुर में यही 'कौ' 'कउ' का रूप धारण कर लेता है। हरदोई तथा कानपुर जिलों में अवधी-रूप 'का' भी मिलता है और कानपुर तथा शाहजहाँपुर में इसके लिए कही-कहीं 'कइहाँ' या 'कहिआँ' रूप भी मिल जाते हैं। शाहजहाँपुर, हरदोई और कानपुर में अधिकरण के लिए साधारणत: 'मां' प्रचलित है पर कही कहीं 'महिआं' या मइहां भी प्रयुक्त होते हैं। कभी कभी आवश्यकतावश 'मैंको' 'पैसें', 'मैंते' आदि संयुक्त-परसर्गों का प्रयोग भी पाया जाता है[४]।

क्रिया

क्रिया की काल-रचना में दो प्रकार के रूप पाये जाते हैं। पहला प्रकार तो वह है जिसमें पुरुष का अर्थ क्रिया के रूप में सन्निहित रहता है और दूसरा प्रकार वह जिसमें पुरुष का भाव क्रिया के रूप में नहीं सन्निहित रहता, अर्थात् कृदन्ती काल[५]। यह प्रवृत्ति न केवल 'कनउजी' की ही है वरन् सभी आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं की है।

'ब्रज' के समान 'कनउजी' में भी मूलकाल तीन हैं—१. वर्तमान-निश्चयार्थ। २. भविष्य-निश्चयार्थ। ३. आज्ञार्थ। कालरचना में कृदन्ती रूपों का भी योग रहता है और ये दो प्रकार के हैं:—१. वर्तमान-

---

१. शाहजहाँपुर, हरदोई और कानपुर में।

२. 'महिआँ' या 'मइहाँ' का प्रयोग कानपुर में कहीं कहीं होता है।

३. यह प्रयोग केवल कानपुर और हरदोई में होता है।

४. डा० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रज-भाषा पृष्ठ ८७।

५. वही, पृष्ठ ६४।

कालिक कृदन्त २. भूतकालिक कृदन्त। ये कृदन्तीरूप विशेषण की भाँति भी प्रयुक्त होते हैं। इनके अतिरिक्त क्रियार्थक-संज्ञा और पूर्वकालिक-कृदन्त के पृथक्-पृथक् रूप होते हैं[1]।

वर्तमान निश्चयार्थ के रूप—'चलनो'

	एक वचन	वहु वचन
उत्तम पुरुष	चलउँ	चलैं
मध्यम पुरुष	चलै	चलौ
अन्य पुरुष	चलै	चलैं

भविष्य-निश्चयार्थ—इस काल में 'ब्रज' तथा 'खड़ीबोली' के रूपों में 'ग' प्रत्यय लगाकर तथा अवधी में 'व' प्रत्यय के योग से रूप रचना होती है। 'कनउजी' में इन प्रत्ययों का योग न होकर 'ह' प्रत्यय लगाया जाता है। 'ग' प्रत्यय के रूपों में लिंग-भेद से अन्तर पड़ता है पर 'ह' प्रत्यय के रूपों में नहीं। भविष्य-निश्चयार्थ के रूप इस प्रकार हैं[2]—

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम पुरुष	'चलिहौं'	'चलिहैं'
मध्यम पुरुष	'चलिहै'	'चलिहौ'
अन्य पुरुष	'चलिहै'	'चलिहैं'

आज्ञार्थ—इस काल में मध्यम पुरुष एकवचन के रूप धातुओं के समान ही चलते हैं तथा बहुवचन में 'ओ', प्रत्यय लगता है[3]।

	एक वचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	'चलु', 'चल'	'चलौ'
अन्य पुरुष	'चलै'	'चलैं'

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजभाषा पृष्ठ ६४।
२. वही, पृष्ठ ६४।
३. डा० धीरेन्द्र वर्मा: ब्रजभाषा पृष्ठ ६८

क्रिया 'होनो'[1] के रूप—

वर्तमान-निश्चयार्थ——	एक वचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	'हौं'	'हैं'
मध्यम पुरुष	'है'	'हौ'
अन्य पुरुष	'है'	'हैं'
भविष्य-निश्चयार्थ—		
उत्तम पुरुष——	'हुइहौं'	'हुइहैं'
मध्यम पुरुष——	'हुइहै'	'हुइहौ'
अन्य पुरुष——	'हुइहै'	'हुइहैं'
आज्ञार्थ——		
मध्यम-पुरुष	'हो'	'होउ'

कृदन्ती काल—'कनउजी' में क्रिया की रूप रचना में कृदन्तों का अत्यधिक महत्त्व है। यहाँ कुछ कृदन्ती-रूप प्रस्तुत किए जाते हैं:—

	एक वचन	बहुवचन
भूत-संभावनाथ	'होतो'	'होते'
भूतकालिक-कृदन्त	'हतो'	हते' (सभी पुरुषों में पुल्लिग रूप)
	'हती'	'हतीं' (सभी पुरुषों में स्त्री लिंग रूप)

अधिकतर कानपुर तथा कहीं-कहीं शाहजहाँपुर तथा हरदोई में भूतकालिक कृदन्त के निम्नलिखित रूप भी मिलते हैं[2]—

स्त्री लिंग तथा पुल्लिग दोनों में

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	'रहौं'	'रहइं'

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजभाषा, पृष्ठ १०७

२. वही, पृष्ठ १०६

मध्यम-पुरुष	'रहइ'	'रहउ'
अन्य-पुरुष	'रहइ'	'रहइं'

निम्नलिखित रूपों का प्रयोग भूतनिश्चयार्थ के अर्थ में होता है—

	एक वचन	बहुवचन
पुल्लिग	'भओ'	'भए'
स्त्री लिंग	'भई'	'भई'

पूर्वकालिक-कृदन्त—'कनउजी', में व्यंजनान्त धातुओं मे—'इ' प्रत्यय तथा 'आकारान्त' एवं 'ओकारान्त' धातुओं में--'य' जोड़कर पूर्वकालिक-कृदन्त बनते हैं। जैसे--'चलि,' तथा 'खाय'। हरदोई तथा कानपुर में पूर्वकालिक 'कर' का 'कै' रूप उपलब्ध होता है।

लोक-गीत

'लोक-गीत' पर विचार करने के पूर्व यहाँ पर 'लोक-वार्ता' का रूप स्पष्ट कर देना आवश्यक है। लोक-गीत 'लोक-वार्ता' का ही एक अंग है। अतः लोक-गीत के समझने के लिए इसका स्पष्टीकरण पृष्ठभूमि का काम करेगा। 'लोक-वार्ता' शब्द विशद अर्थ रखता है। इसको अँग्रेजी में 'फोक-लोर' कहते हैं। 'फोक-लोर' के लिए 'लोक-वार्ता' शब्द का भी प्रयोग किया गया है[1]। अँग्रेजी परम्परा में 'लोक-वार्ता' तथा सामाजिक नृविज्ञान के क्षेत्र के बीच कोई स्पष्ट सीमा-रेखा नहीं खीची जाती है। 'लोक-वार्ता' के क्षेत्र को संकुचित अर्थ में सभ्य समाजों में मिलनेवाले पिछड़े तत्त्वों तक ही सीमित रखा गया है। यह एक जातिबोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है, जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत-समुदायों में अवशिष्ट-विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ,

१. कृष्णानन्द गुप्त लोक वार्ता पत्र का निवेदन

गीत तथा कहावतें आती हैं[१]। लोक-गीत अँग्रेजी शब्द 'फोक-सांग' का हिन्दी रूपान्तर है। अतः लोक-वार्ता के अन्तर्गत आने के कारण आदि-मनुष्य अथवा अर्द्ध-सभ्य-मनुष्य के हृदय से निःसृत स्वाभाविक भावों की अभिव्यक्ति को 'लोक-गीत' कहा जा सकता है। शिक्षित तथा सभ्य मनुष्य की संगीतमयी तथा कलापूर्ण अभिव्यक्ति को कविता कहा जाता है, 'लोक-गीत' नहीं। शिक्षा और सभ्यता की लोक-गीत से स्वाभाविक शत्रुता है और इस लोक-वाणी में मस्तिष्क नहीं वरन् हृदय है।

लोक-गीत अशिक्षित ग्रामीण जनता के भावुक तथा संवेदनशील हृदय के वे स्वाभाविक उद्गार है जो संगीत की बलवती धारा के रूप में प्रवाहित हो उठते हैं। संगीत इनमें प्राण-प्रतिष्ठा करता है। इसी से कहा जाता है कि हृदय के उद्रेक से युक्त कला पूर्ण-संगीत ही लोक-गीत है।

'लोक-गीत' में छन्द का आग्रह नहीं होता और छन्द के स्थान पर लय ही उसमें माधुर्य और रमणीयता की सृष्टि करती है। अतः संगीत लोक गीतों की अपरिहार्य आवश्यकता है। इन लोक-गीतों को पढ़ने मे वह आनन्द नहीं आता जो सुनने में। जब हम खेतों में काम करती हुई किसी ग्राम-बाला या चक्की पीसती हुई किसी युवती के कोमल एवं मधुरकण्ठ से निःसृत संगीतमय भावों को सुनते हैं तो क्षण भर के लिए हमारा हृदय भी साधारणीकरण की अवस्था में उसी के साथ झूमने लगता है और हमें ब्रह्मानन्द सहोदर की प्राप्ति होती है। लोक-गीत कण्ठ से गाने के लिए और हृदय से आनन्द लेने के लिए है। आकाश में भरा हुआ शब्द जब गीत के रूप में प्रकट होता है तब मानव के चिरजीवी भाव साकार हो उठते हैं[२]। काव्य को रसात्मक-वाक्य

---

१. Encyclopaedia Britainca Vol. IX Page. 446.

२. धीरे बहो गंगा, आमुख-अग्रवाल। (पृष्ठ ६ देवेन्द्र सत्यार्थी)

कहने में विभिन्न विद्वान् एक मत नहीं हैं, पर लोक-गीतों की रसात्मकता पर सभी विद्वानों की स्वीकृति है। लोकगीतों में रस के आधिक्य के कारण यही कहना पड़ता है कि ये मानों रस के कभी न छीजनेवाले सोते है। इनकी एक-एक पंक्ति में, एक-एक शब्द में, रस व्यंजित होता है।

लोकगीतों में जन-जीवन के हर्ष और विषाद, आशा और निराशा सुख और दुःख की अभिव्यक्ति होती है। इनमें कल्पना भी अपना काम करती है, रस-वृत्ति और भावना भी और नृत्य की हिलोर भी, पर ये सब खाद हैं। लोक गीत हृदय के खेत से उगते है। सुख के गीत उमंग के जोर से जन्म लेते हैं और दुःख के गीत तो खौलते हुए लहू से पनपते है और आँसुओं के साथी बनते हैं[1]।

लोकगीतों की कई विशेषताएँ हैं। सबसे बड़ी विशेषता है इसकी स्वाभाविकता में सुसंस्कृत शृंगार के स्थान पर जंगल का-सा प्राकृतिक-सौन्दय का होना। इनका प्रकृति से सीधा सम्बन्ध है। ये गीत प्रकृति के उद्गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छन्द नहीं, केवल लय है; लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है। प्रकृति जब तरंग में आती है, तब वह गान करती है। उसके गीतों में हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है, जैसे प्रेम में आकर्षण, श्रद्धा में विश्वास, और करुणा मे कोमलता। प्रकृति के गान में मनुष्य-समाज इस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है जैसे कविता में कवि, क्षमा में मनोबल और तपस्या में त्याग। प्रकृति संगीतमय है। ग्रह-गण एक नियति कक्ष में फिरकर उसी संगीत का कोई स्वर सिद्ध कर रहे हैं। झरनों का अविराम-नाद, पत्तों की मर्मर-ध्वनि, चंचल-जल का कल-कल, मेघ का गर्जन, पानी का छमाछम बरसना, आंधी का हाहाकार, कलियों का चटकना, विक्षुब्ध-समुद्र का

---

१. सत्यार्थी: धरती गाती है—पृष्ठ १०७।

महारव, मनुष्य की भिन्न-भिन्न भाषाएँ और विचित्र उच्चारण, खग, पशु, कीट, पतंग आदि की बोलियाँ, यह सब उसी संगीत के मन्द्र और तार, स्वर और लय हैं। वज्रपात काम है और नदियों का प्रवाह मूर्छना। लोकगीत प्रकृति के उसी महासंगीत के अंश हैं[१]।

'लोकगीतों' की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। पण्डितों की बँधी प्रणाली पर चलनेवाली काव्यधारा के साथ-साथ सामान्य अपढ़ जनता के बीच एक स्वच्छ और प्राकृतिक भाव-धारा भी गीतों के रूप में चलती रहती है[२]। लोकगीत जीवन्त-काव्य है। यह कभी मिटता नहीं, पर जैसे-जैसे सामान्य जनभाषा में परिवर्तन होता जाता है वैसे-वैसे ही इन गीतों की भाषा भी बदलती जाती है, पर भाव वही बने रहते हैं। इसीसे कहा जा सकता है कि वस्तुतः लोकगीत न तो पुराना ही होता है और न नया ही। यह उस जंगली पेड़ के समान है जिसकी जड़ें भूत की गहराई में हैं और जो नित्य नवीन शाखाओं, पत्तियों और फलों को उत्पन्न करता है[३]। काल का प्रभाव इन पर पड़ता अवश्य है, परन्तु इससे बाह्य रूप में ही परिवर्तन होता है। भाषा का आवरण धीरे-धीरे बदल जाता है, पर भीतरी प्राण-तत्त्व में कोई अन्तर नहीं होता[४]।

लोक-गीतों का महत्त्व

लोकगीत साहित्य की अमूल्य एवं अनुपम निधि हैं। इनमें हमारे समाज की एक-एक रेखा, सामयिक-बोध की एक-एक अवस्था, सामूहिक विजय-पराजय, प्रकृति की गतिविधि, वृक्ष, पशु-पक्षी और मानव के

---

१. रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी-ग्रामगीत पृष्ठ ६३

२. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ७२४-२५

३. Encyclopaedia Britanica Vol. IX Page 448 (Ed. XIV.)

४. सूर्यकरण पारीक : राजस्थानी-लोकगीत, पृष्ठ २।

पारस्परिक सम्बन्ध, बलि, पूजा, टोने-टुटके, आशा-निराशा, मनन और चिन्तन सबका बड़ा ही मनोहारी वर्णन मिलता है। अत: इन लोकगीतों का बहुत अधिक महत्त्व है और वह इस प्रकार है :—

१—साहित्यिक	२—ऐतिहासिक
३—सांस्कृतिक	४—धार्मिक तथा पौराणिक
५—नैतिक	६—भौगोलिक
७—आर्थिक	८—भाषा तथा भाषा-विज्ञान-संबंधी

१—साहित्यिक-महत्त्व—

यद्यपि लोकगीत सबल-भावों के सहज-उद्रेक होते हैं और उनमें गुण, दोष, अलंकार और छन्द के नियमों का पालन नहीं किया जाता तो भी वे साहित्य की कोटि में आते ही हैं। इनके सृजन में शास्त्रीयता पर बल नहीं दिया जाता तथापि इनमें कहीं-कहीं कला, रस-परिपाक और अलंकार के अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं। अत: साहित्यिक दृष्टि से भी इनका कम महत्त्व नहीं है। लोकगीत के साहित्यिक स्वरूप का वर्णन करते समय इस विषय पर विशद विवेचन किया जावेगा।

२. ऐतिहासिक-महत्त्व—

लोक-गीतों में इतिहास की प्रचुर-सामग्री भरी पड़ी है, जिसके सम्यक् अध्ययन से हमारे इतिहास की नई-नई खोजें हो सकती हैं। इन गीतों में स्थानीय इतिहास का पुट बड़ा गहरा होता है और जिसके उद्घाटन से हमारे विलुप्त अथवा विस्मृत इतिहास पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। 'आल्हा-गीतों' में ऐतिहासिक सामग्री मिलती है और गोपीचन्द-भर्थरी' आदि गीतों के लिये भी यही बात है। इसके अतिरिक्त कथाओं को लेकर अनेक गीत हैं, जिनमें इतिहास पर धुंधला प्रकाश पड़ता है।

३. सांस्कृतिक-महत्त्व—

लोक-गीतों मैं सामाजिक अवस्था का वर्णन पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होता है। समाज के अध्ययन की बहुमूल्य सामग्री इन गीतों में उपलब्ध है। इतिहास के बड़े-बड़े ग्रंथों में राजनीतिक युद्धों और सन्धियों का वर्णन भले ही मिल जावे परन्तु किसी जाति की संस्कृति जानने के लिये उस जाति के लोकगीतों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। भारतीय लोक-जीवन का सफल चित्रण यहाँ के लोकगीतों के बिना अध्ययन के नहीं हो सकता[१]। इन लोकगीतों में मनुष्य के रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान, रीति-रिवाज आदि का सच्चा चित्र मिलता है। इनका महत्त्व इसीलिए नहीं कि इनके संगीत और वर्ण्य-विषय मे जनता का वास्तविक जीवन प्रतिबिम्बित होता है, प्रत्युत इनमें नृ-विज्ञान के अध्ययन की प्रामाणिक एवं ठोस सामग्री भी उपलब्ध होती है। मध्य-प्रदेश की 'करमा' जाति के एक गीत में उल्लेख है कि यदि तुम मेरे जीवन की सच्ची कहानी जानना चाहते हो तो मेरे गीतों को सुनो[२]। लोकगीतों में जन्मभूमि की गौरवशाली और यशस्वी आत्मा की पुकार निहित है। इनमें विशाल-संस्कृति का उज्ज्वल इतिहास अभिव्यक्त हुआ है। लोक-गीतों में विभिन्न संस्कारों का भी उल्लेख होता है। कनउजी लोक-गीतों में 'सांस्कृतिक-चित्रण', अध्याय में इस पर विस्तारपूर्वक विचार किया जायगा।

---

१ — No picture of India can convey more forcibly and clearly to our minds the manners and habits and psychological depth of her inner life than insight into these songs; Devendra Satyarthi—'The Nest of singing words' Modern. Review Sep. 1934.

२. वेरियर इलविन 'फोक सांग्स आफ मैकलहिल्स'—इन्ट्रोडक्शन पृष्ठ १६।

४ धार्मिक तथा पौराणिक महत्त्व—

प्रत्येक जाति में उसके धर्म और नियम-पालन के लिए एक विधान होता है। उसी के अनुसार वह जाति आचरण करती है। परन्तु लोक-जीवन में लोकगीतों की इतनी महत्ता है कि किसी भी जाति के ये गीत विधान से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं[1]। इनमें व्रत, देवीदेवता पूजा आदि का उल्लेख होता है। इनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य आदि देवताओं को लोग किस प्रकार पूजते हैं और साथ ही साथ इस बात की भी हमें सूचना मिलती है कि रहन-सहन और खान-पान ने भी धर्म का स्थान ले लिया है।

धार्मिक-जीवन के साथ पुराण-शास्त्र (माइथालाजी) के वर्णन की भी इन गीतों में कमी नहीं होती। कुछ गीतों में शिवजी के दूसरे विवाह और तुलसी के पार्वती की सपत्नी होने का उल्लेख मिलता है। हिन्दू-पुराण-शास्त्र के लिए ये दोनो नई कल्पनाएँ हैं। सीता के सास-ननद द्वारा पीटे जाने, वन्ध्या होने के कारण निकाले जाने, राम के हल जोतने और सीता के फटे कपड़े पहनने का उल्लेख भी लोकगीतों में हुआ है। अतः लोक-कवि की यह कल्पनाएं भी मौलिक है।

५ नैतिक महत्त्व—

लोकगीतों में लोकोत्तर तथा दिव्य नैतिक-अवस्था का वर्णन मिलता है। सतीत्व का इनमें बड़ा ही सुन्दर आदर्श उपस्थित किया गया है। स्त्रियों की 'किरिया' द्वारा परीक्षा और उसमें सती सिद्ध होना तो अनेक गीतों का प्रतिपाद्य-विषय है। स्त्री का पति, ससुर, ननद तथा जिठानी से क्या व्यवहार होना चाहिए, इसका अनेक गीतों में उल्लेख हुआ है। स्त्री को यदि असह्य प्रसव-पीड़ा होती है तो उसका कारण, पूज्य जनों का अनादर करना और यदि सुन्दर पुत्र को

---

१. फ्लेचर, १७०६ ई० में दिया गया एक भाषण।

वह जन्म देती है तो पूज्य लोगों के साथ सद्व्यवहार करना, बतलाया जाता है।

६ भौगोलिक-महत्त्व—

भौगोलिक स्थिति का चित्रण भी हमें लोकगीतों में उपलब्ध होता है। इनमे व्यापार के लिए 'परदेश' जाने और वहाँ से बारह वर्ष में आने का उल्लेख मिलता है। गीतों में बनारस की साड़ी, महोबा का पान, दिल्ली के वैद्य का स्थान-स्थान पर उल्लेख आता है। यह वास्तव मे आर्थिक-भूगोल है। भिन्न-भिन्न स्थानों का वर्णन किसी न किसी प्रसंग में किया जाता है और आल्ह-खण्ड में कन्नौज, महोबा, दिल्ली, बिठूर, नरवरगढ़ आदि नगरों तथा वेतवा, गंगा आदि नदियों के नाम आते हैं। 'सोहर' तथा विवाहगीतों में मथुरा, अयोध्या, जनकपुर आदि नगरों के नाम का आना साधारण ही है।

७. आर्थिक-महत्त्व—

गीतों में खाने के लिए बर्तन, पीने के लिए लोटा, केश-सज्जा के लिए कंघी—सभी वस्तुएँ सोने की ही होती हैं। दूध से स्नान करने का उल्लेख तो साधारण सी बात है। ज्योनारों में विभिन्न पक्वान्नों का वर्णन होता है, परन्तु दूसरी ओर कुछ गीतों में स्त्री को साधारण भोजन भी प्राप्त नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि तत्कालीन समाज की आर्थिक-दशा उन्नत थी और लोग धनधान्य से पूर्ण एवं सुखी थे। परन्तु कहीं-कहीं रोटियों के भी लाले थे, यह भी कहा जा सकता है।

८. भाषा तथा भाषाविज्ञान सम्बन्धी महत्त्व—

भाषा की दृष्टि से जब हम लोक-गीतों का अध्ययन करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि ये अमूल्य निधियों से भरे पड़े हैं। इनकी भाषा जीवन्त होती है। यदि इनके कुछ मुहाविरे और उपादेय शब्द शिष्ट-भाषा में गृहीत हो जावें तो उसमें बहुत जीवन और बल आ जावे।

'हाँथ हलाउत जात,' 'हँथिरिया पै आम जमाना,' 'हाँक लगाना' आदि मुहाविरे तथा 'निहुरना,' 'बिसूरना,' 'झंखना', 'हूलना' आदि शब्दों को हिन्दी में स्थान मिलने से अभिव्यक्ति मे शक्ति आएगी। विभिन्न लोक-गीतों की भाषा की शब्दावली के ग्रहण करने से हमारी भाषा समृद्ध होगी। आज जो पारिभाषिक शब्दावली की समस्या है उसका भी बहुत कुछ समाधान हमारी बोलियों मे ही है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि—प्रचण्ड शक्तिशालिनी हिन्दी भाषा की विभूति का विशाल मंदिर जनपदीय भाषाओ को उखाड़कर नही बन सकता, वरन् इस पंचायतनी प्रासाद की दृढ़ जगती मे सभी भाषाओं और बोलियों के सुगढ़ प्रस्तरों का स्वागत करना होगा[१]।

लोक-गीतों में आए हुए शब्दों की व्युत्पत्ति का पता लगाने पर भाषा-शास्त्र की अनेक गुत्थियाँ सुलझाई जा सकती हैं। इनमें व्यवहृत शब्दों के द्वारा हिन्दी के कुछ शब्दों के विकास की परम्परा को हम वैदिक-संस्कृति तथा प्राचीन आर्य-भाषा से जोड़ सकते हैं। बहुत से बोली के ऐसे शब्द हैं जो शिष्ट-हिन्दी में नहीं मिलते। (उदाहरण के लिए जूना,[२] इँडुरी,[३] कठँगर[४] तथा पिलखुआ[५] ऐसे ही शब्द हैं।) इन शब्दों के अतिरिक्त भाषा के विकास तथा परिवर्तन के अध्ययन के लिए भाषा-विज्ञान में ग्रामीण भाषाओं की बहुत आवश्यकता होती है और लोकगीतों में ग्रामीण भाषा का प्रतिनिधि रूप मिलता है। अतः भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी लोक-गीतों का बहुत बड़ा महत्त्व है।

इस प्रकार लोकगीतों का कई दृष्टियों से महत्त्व है। हमारी इन अमूल्य निधियों को शिक्षा और सभ्यता नाश कर देने के लिए तुली है।

---

१. डा० वासुदेवशरण, अग्रवाल, पृथ्वी-पुत्र, पृष्ठ २७
२. जूना (रस्सी)
३. इण्डु
४. काष्ठार्गल
५. प्लाक्ष

जब चक्की ही नही रहेगी और उसका स्थान आधुनिक आटा पीसने की मशीन ले लेगी तो फिर चक्की के गीतों को स्त्रियों के स्थान पर क्या मिस्त्री गायेगा ? इधर पाठशाले विभिन्न जातियों के गीतों को आत्मसात् किये ले रहे हैं और कन्या-पाठशालाएँ नीरस, लक्ष्यहीन, प्रभाव-रहित, निर्जीव और हृदय को स्पर्श न करनेवाली तुकबन्दियों के बदले कन्याओं से उनके मधुर उपदेश-प्रद और लय-युक्त गीतों को लेकर उन्हें विस्मृति के हवाले कर रही हैं। अब ऐसी स्थिति में भी यदि हम गाफिल रहें तो हमारा सर्वनाश ही है। इसलिए लोक-गीतों की इस संक्रमणकालीन अवस्था में हमें इनकी रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील हो जाना चाहिए। इनके संग्रह से हम अपने राष्ट्र की अमूल्य थाती की रक्षा कर सकेंगे।

कनउजी लोक-गीतों का सामान्य परिचय

संस्कार गीतों को छोड़कर सामान्यतया अन्य सभी कनउजी लोक-गीत कथात्मक होते है। यह बात अवश्य है कि किसी गीत में अत्यन्त लघु और किसी गीत मे बहुत लम्बी कथा होती है। कहने का आशय यह नहीं है कि संस्कार गीतों में कथा होती ही नहीं। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बहुत थोड़े ही कथात्मक संस्कार-गीत हैं। ईश्वर की वन्दना सम्बन्धी भजन, देवी के जस आदि भी कुछ गीत ऐसे होते हैं जिनमें किसी प्रकार की भी कथा नहीं होती।

कनउजी लोक-गीतों को समग्र रूप से देखने पर हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि इनमें श्रृंगार-रस की उतनी प्रधानता नहीं जितनी भोजपुरी, लोक-गीतों में है। श्रृंगार के भी अच्छे से अच्छे गीत उपलब्ध होते हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत थोड़ी है।

करुण-रस के गीतों का तो कनउजी में बहुत ही बाहुल्य है, भाई और बहन का पारस्परिक प्रेम और हृदय को द्रवित कर देनेवाली

करुणा के जितने गीत कनउजी में हैं कदाचित् उतने अधिक गीत और किसी जनभापा में नहीं मिलते। स्त्री की ससुराल में दुर्दशा, बांझ स्त्री का नारकीय-जीवन तथा विधवा की असहाय अवस्था सम्बन्धी अनेक गीत उपलब्ध होते हैं। पूर्वी बोलियों में विषादान्त गीत भी मिलते है, परन्तु कनउजी में ऐसे गीतों का सर्वथा अभाव है। कुछ ऐसे भी गीत है जो पूर्वी-बोलियों के गीतों एवं वस्तु- कथा से बिलकुल मिलते हैं परन्तु अन्त में थोड़ा हेर-फेर हो जाता है। एक बाँझ से सम्बन्धित गीत है। अवधी और भोजपुरी मे बाँझ काठ का बालक बनवाती है और उससे प्रार्थना करती है कि वह बोल कर माता के हृदय को प्रसन्न करे परन्तु काठ का बालक कहता है कि यदि में दैव का गढ़ा होता तो बोलकर सुनाता। इस प्रकार यह गीत विषादान्त है। परन्तु कनउजी में यही गीत प्रमादान्त रूप धारण कर लेता है। आगे सोहर गीतों में इसका उल्लेख किया गया है।

गीतों के आकार की दृष्टि से भी हमें बड़ी ही मनोरंजक विपमता मिलती है। इस प्रदेश का सबसे छोटे आकार का गीत 'बिरहा' है। इसमेंकेवल दो ही पंक्तियाँ होती हैं। दूसरी ओर हम देखते हैं कि इतने इतने बड़े गीत भी होते हैं जो पन्द्रह-पन्द्रह दिन तक गाये जाने पर भी समाप्त नहीं होते। 'आल्हा,' 'ढोला,' 'घन्नइया' आदि इन बड़े गीतों की कोटि में आते हैं। वस्तुतः इन गीतों को प्रबन्ध-गीत कहना चाहिए। कुछ संवादात्मक गीत भी कनउजी में मिलते हैं । इनमें नाटकीयता पर्याप्त-मात्रा में होती है। खेतों में काम करते समय या बेकार समय में एक पक्ष कुछ गाता है और फिर दूसरा पक्ष उसका उत्तर देता है।

यहाँ के कुछ गीतों में पंक्ति के आरंभ मेंप्रायः कुछ ऐसे शब्द भी होते हैं जिनका गीत के अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं होता। ये गीत की स्वर-साधना में सहायक होते हैं। प्रारम्भ में 'कि एजू' या 'कि अरे रामा' और अन्त में 'हो हारी,' 'हो रामा' आदि लगा दिया जाता है । कनउजी

लोक-गीतों में वीभत्स और भयानक-रसों के गीतों का नितान्त अभावहै। सबसे अधिक गीत करुण-रस के मिलते हैं।

कनउजी लोक-गीतों के गायक—

कनउजी लोक-गीतों की सच्ची गायिकाएँ स्त्रियाँ हैं। ऐसी कोई भी स्त्री नहीं होती जो किसी उत्सव या संस्कार में सबके साथ गीत न गावे। प्रकृति ने स्त्रियों को मधुर कण्ठ दिया है, अतः वे इसका सदुपयोग क्यों न करें ? स्त्रियाँ प्रायः सामूहिक रूप से गीत गाती हैं। ऐसा कोई भी गीत नहीं है कि जिसे केवल एक स्त्री ही गावे। होली, फाग आदि ही कुछ ऐसे गीत होते हैं जिन्हे पुरुष सामूहिक रूप मे गाते हैं। अन्यथा गीतों के विशेषज्ञ ही उन्हें गाते हैं और अन्य लोग सुनते है। आल्हा, ढोला आदि के गायक तो बहुत बड़े विशेषज्ञ माने जाते है। उनको दूर-दूर से बुलाकर गायन का आयोजन होता है। कुछ ऐसे भी लोग होते है जिनकी भिक्षा-वृत्ति होती है। ये लोग गीत गाकर सुनाते हैं और भिक्षा प्राप्त करते हैं। खंजड़ी, बीन या चिमटा आदि बाजों का ये लोग प्रयोग करते हैं। सामान्यतया स्त्री और पुरुष सभी के गीतों में ढोलक, मजीरा, झींका आदि वाद्ययंत्र प्रयोग में लाये जाते हैं, परन्तु कुछ ऐसे गीत भी होते हैं जिन्हें बिना बाजा के ही गाया जाता है। चक्की के गीत, निरवाही, रोपाई और कटाई के गीत इसी श्रेणी में आते हैं। देवी के गीत-गाते समयस्त्रियाँ नाचती भी हैं।

कनउजी लोक-गीतों का संक्षेप में सामान्य परिचय यहाँ प्रस्तुत किया गया है। विस्तार से अगले अध्यायों में इनका विवेचन किया जायगा।

द्वितीय अध्याय

(कनउजी लोक-गीतों का वर्गीकरण)

कनउजी लोकगीतों का वर्गीकरण

लोकगीतों के वर्गीकरण की पद्धति—

लोकगीतों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उनका वर्गीकरण करना परमावश्यक है। गीतों के भेदों अथवा प्रकारों की विविधता के कारण वग-विभाजन बड़ा ही कठिन हो जाता है। फिर भी कुछ निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर यहाँ वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया जाएगा। नीचे दिए गए सिद्धान्तों के आधार पर लोक-गीतों का वर्गीकरण किया जा सकता है :—

१. रसानुभूति की प्रणाली से।

२. रागों की दृष्टि से।

३. कथानक के आधार पर।

४. अवसर की अनुकूलता की दृष्टि से।

१. रसानुभूति की दृष्टि से—लोकगीतों की सर्वप्रमुख विशेषता उनकी रसात्मकता है। उनमें प्रवाहित होनेवाली रस की अविरल धारा श्रोता तथा पाठक को साधारणीकरण की अवस्था में पहुँचा देती है। रस की प्रधानता को दृष्टि में रखकर विभिन्न रसों के अनुसार इनके विशष वर्ग बनाये जा सकते हैं। रसों की संख्या दस है[1] और

---

1. प्राचीन काव्य-शास्त्रियों ने रस की संख्या ९ मानी है। पर हिन्दी में 'वात्सल्यरस' को भी मान्यता मिल चुकी है। अतः इस प्रकार रसों की संख्या दस हुई।

लगभग सभी रसों से पूर्ण लोकगीत पाए जाते हैं। अतः इनके दस वर्ग बनाए जा सकते हैं।

२. रागों की दृष्टि से —सभी लोक-गीत गेय होते हैं और किसी न किसी राग में ही गाए जाते हैं। अतः अनेक रागों के आधार पर समस्त लोक-गीतों का वर्गीकरण किया जा सकता है।

३. कथानक की दृष्टि से —शिष्ट-काव्य की भाँति लोक-गीतों के भी कथानक की दृष्टि से दो भाग किए जा सकते हैं —मुक्तक और प्रबन्ध। जिन लोक-गीतों की कथा अत्यन्त लघु और क्षीण होती है और जिनका प्रत्येक छंद स्वतंत्र होता है उन्हें हम मुक्तक कीं कोटि में रख सकते हैं। जिन गीतों में विस्तृत कथा के साथ ही साथ पूर्व से सम्बन्ध भीं रहता है और प्रत्येक वस्तु और घटना का विस्तृत चित्रण होता है, उन्हें प्रवन्ध-गीत कहा जा सकता है। अतः इस सिद्धान्त के आधार पर लोक-गींतों के दो वर्ग होते हैं।

४. अवसर कीं अनुकूलता की दृष्टि से —सभी लोक-गीत सभी अबसरों पर नहीं गाए जा सकते। जब कोई संस्कार होता है तो इस अवसर पर केवल संस्कार-गीत ही गाये जाते हैं। किसी व्रत अथवा पर्व के अवसर पर उसी व्रत अथवा पर्व के गीत गाये जाते हैं। जाति-गीत भी किसी विशिष्ट समारोह में ही पाये जाते हैं और इसी भांति चक्की पीसने, रोपनी करने तथा मेले जाने के समय तत्सम्बन्धित काम-काज के गीत ही गाये जाते हैं। इस सिद्धान्त के आधार पर जो विभाजन किया जाता है, उसमें प्रत्येक गींत किसी न किसी वर्ग में अवश्य आ जाता है।

कनउजी लोक-गीतों का वर्गीकरण

उपर्युक्त सभी सिद्धान्तों के आधार पर 'कनउजी लोकगीतों' का वर्गीकरण किया जा सकता है। नींचे हम 'अवसर की अनुकूता' के अनुसार उन्हें छः वर्गों में बाँट सकते हैं : —

१. संस्कार—गीत
२. ऋतु-गीत
३. व्रतगीत
४. पर्व-गीत
५. काम-काज करते समय गाए जानेवाले गीत
६. जाति-गीत

इन वर्गों पर विस्तार से कहने के पूर्व अन्य विद्वानों के लोकगीतों के वर्गीकरण पर विचार करना अप्रासंगिक न होगा।

पं० रामनरेश त्रिपाठी का वर्गीकरण—हिन्दी के लोकगीतों के क्षेत्र में सर्वप्रथम तथा सर्वप्रमुख कार्य करनेवाले पं० रामनरेश त्रिपाठी हैं। उन्होंने लोकगीतों को ११ वर्गों में बाँटा है[1] :—

१—संस्कार-सम्बन्धी-गीत
२—चक्की और चरखे के गीत
३—धर्म गीत।
४—ऋतु सम्बन्धी गीत।
५—खेती के गीत।
६—भिखमंगों के गीत।
७—मेले के गीत।
८—जाति-गीत।
९—वीर-गाथा।
१०—गीत-कथा।
तथा ११—अनुभव के वचन।

उपरोक्त विभाजन पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है क्योंकि धर्म-गीत और संस्कार-गीतों का एक ही वर्ग में रखा जा सकता है[2]। भिखमंगों के गीत जाति-गीत की

१. पं० रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी 'ग्रामगीत', पृष्ठ ६६
२. संस्कार धर्म के ही अंग होते हैं अतः संस्कार गीत तथा धर्म-गीतों को एक ही कोटि में रख देने से कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

कोटि में आते हैं क्योंकि भीख माँगने वाली जातियाँ ही इन्हें गाती हैं। मेले के गीत राह चलते चलते गाये जाते हैं अतः उन्हें काम-काज के गीतों में अन्तर्भुक्त किया जा सकता है। यही बात चरखा और चक्की के गीतों के लिये भी है। खेती के गीतों तथा अनुभव के वचनों में पूर्ण रूप से बौद्धिकता होती है अतः वे गीत की कोटि में आते ही नहीं। वीर-गाथाएँ तथा गीत-कथाएँ जैसे आल्हा और ढोला विशेष रूप से वर्षा-ऋतु में गाये जाते हैं अतः इनको हम ऋतुगीत-वर्ग में रख सकते हैं। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गीतों का ११ वर्गों में विभाजन अनावश्यक है।

पं० सूर्यकरण पारीक ने 'राजस्थानी लोक-गीत' पुस्तक में गीतों का क्षेत्र-विस्तार दिखलाते समय इन गीतों को उनतीस वर्गों में विभक्त किया है[1]। वह वर्गीकरण भी वैज्ञानिक नहीं है क्यों कि पारीक जी के वर्गीकरण में किसी क्रम अथवा पद्धति को नही अपनाया गया है। उन्होंने और, हास्य और शृंगार-रस के गीतों को तीन श्रेणियों में रखा है जिन्हें एक ही श्रेणी में रखा जाना चाहिए। इसी प्रकार भाई बहन और पति-पत्नी-सम्बन्धी गीतों को संस्कार गीतों अथवा ऋतु गीतों में रखा जा सकता है। विभिन्न संस्कारों के गीतों के भी उन्होंने कई वर्ग बनाए हैं जिन्हें संस्कार-गीत वर्ग में रखने में कोई असुविधा नहीं हो सकती।

पारीक जी के पश्चात् हम डा० कृष्णदेव उपाध्याय के वर्गीकरण को देखते हैं। इन्होंने लोक गीतों को ५ प्रधान भागों में विभक्त किया है।[2]

१—संस्कारों की दृष्टि से।

२—रसानुभूति की प्रणाली से।

---

१. पारीक राजस्थानी लोक गीत पृष्ठ २२—२५।

२. डा० कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन—१५८

३—ऋतुओं और व्रतों के क्रम से।
४—विभिन्न जातियों के प्रकार से।
५—क्रिया-गीत के आधार पर।

'रसानुभूति का प्रणाली' गीतों के वर्गीकरण का सिद्धान्त हो सकता है, 'वर्ग' नहीं क्योंकि अन्य सभी वर्गों के गीतों में भी रस होता है। यदि हम उसे अलग से भी मान लें तो वर्गीकरण की वैज्ञानिकता समाप्त हो जाती है। और उसमें अतिछादन (overlapping) का दोष आ जाता है। इन पाँच वर्गों के अतिरिक्त वे चरखे के गीत, मेले के गीत और अनुभव के वचनों को प्रकीर्णक श्रेणी में रखते हैं[1]। 'प्रथम तो प्रकीर्णक श्रेणी ही वैज्ञानिक विभाजन नहीं और दूसरे इस श्रेणी में जिन गीतों को उन्होंने रखा है उनमें से चरखे के गीत तो 'क्रिया-गीतों' में रखे जा सकते हैं क्योंकि ये गीत चरखा चलाते समय गाये जाते हैं। इसी प्रकार मेले के गीत भी क्रिया गीतों में अन्तर्भुक्त हो सकते हैं। अनुभव के वचन गीतों की कोटि में आते ही नहीं अतः उनका 'प्रकीर्णक-श्रेणी' का रखना अनावश्यक ही है।

अवसर की अनुकूलता के अनुसार जो गीतों के छः भेद हैं, उन पर अब क्रमशः विचार किया जायेगा।

१ संस्कार-गीत—

संस्कारों का महत्त्व प्रत्येक जाति में है, क्योंकि संस्कारों के साथ ही मनुष्य का विकास होता है। भारतीय लोगों के लिए इन संस्कारों का महत्त्व और भी अधिक है। धर्म भारत का प्राण है और धर्म के ही अंग है। गीतों के बिना कोई संस्कार नही होता, यहाँ तक कि

---

१. डा० कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन—१६८—।

मृत्यु के अवसर पर भी गीत गाये जाते है[1]। अतः इन संस्कार-गीतों की व्यापकता और महत्त्व का सहज अनुमान किया जा सकता है। यह बात भी नहीं कि संस्कारों का प्रारम्भ जन्म से ही आरम्भ होता है, वरन् इसका आरम्भ तो जन्म के पूर्व भी अर्थात् गर्भाधान और पुंसवन में ही प्रारम्भ हो जाता है। प्राचीन-साहित्य में जहाँ संस्कारों का विधान किया गया है वहाँ गर्भाधान और पुंसवन-संस्कार में मंत्रोच्चारण का उल्लेख मिलता है। परन्तु कालान्तर में इन संस्कारों का लोप सा हो गया। गर्भाधान-संस्कार के बन्द हो जाने के कारण उनके गीतों का भी लोप हो गया। पुसवन-संस्कार भी अब नहीं किया जाता। परन्तु ब्रज और 'कनउजी' के लोक-गीतों में इस पुंसवन का विकृत रूप किसी न किसी प्रकार आज भी मिलता है और इसे 'साध पूजना' कहते हैं। प्रतीक रूप में इसे 'चौक' भी कहते हैं। यह संस्कार गर्भाधान के सातवें महीने के बाद में होता है। इन पूर्वोक्त संस्कारों के गीत अब बालक के जन्म लेने पर ही गाए जाते हैं। 'दोहद-गीत' इसी कोटि में आते हैं। यदि समस्त लोक-गीतों पर दृष्टिपात किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संस्कार-गीतों की संख्या अन्य गीतों सेकहीं अधिक है, यद्यपि वैदिक साहित्य में १६ संस्कारों द्वारा जीवन को संस्कृत करने का आदेश दिया गया है, परन्तु अब मुख्यतया ५ संस्कार किए जाते हैं और इन्हीं से सम्बन्ध रखनेवाले ५ प्रकार के गीत उपलब्ध होते हैं:—

१—जन्म के गीत।

२—अन्नप्राशन के गीत।

---

१. मथुरा की चतुर्वेदी स्त्रियों में मृत्यु पर गाकर ही रोने की प्रथा है—डा० सत्येन्द्र 'ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन'--पृष्ठ १२०।

३—मुण्डन के गीत।
४—यज्ञोपवीत के गीत।
५—विवाह के गीत।

जन्म के गीत—पुत्र-जन्म ही ऐसा सर्वप्रथम और प्रधान-संस्कार है, जिससे सम्बन्ध रखनेवाले गीत प्राप्त होते हैं। ऐसी बात नहीं कि पुत्र-जन्म भारत में ही बड़े उत्साह तथा आनन्द के साथ मनाया जाता है, वरन् यही बात अन्य देशों में भी पाई जाती है। यह अवश्य माना जा सकता है कि भारत में यह अधिक आनन्द का विषय है। पुत्री के जन्म पर ऐसे कम ही देश होंगे जहाँ अत्यधिक आनन्द मनाया जाता हो। 'साध पूजने' का संस्कार इसीलिए किया जाता है कि जिससे पुत्र ही उत्पन्न हो। पुत्रोत्पत्ति के अवसर पर 'सोहर' गीत गाये जाते हैं। सोहर-गीतों के प्रकार का विवेचन अगले अध्याय में किया जायेगा। इस समय अनेक अन्य लोकाचार भी होते हैं और उनमें गीत भी गाये जाते हैं। इन गीतों में आनन्द बधाये, चरुआ, सतिया, जच्चा, नेग आदि के गीत महत्त्वपूर्ण हैं

अन्नप्राशन के गीत—जन्म के पश्चात् दूसरा संस्कार 'अन्नप्राशन' होता है। यह संस्कार किसी देवी के मन्दिर पर किया जाता है। अन्न-प्राशन संस्कार में शिशु को प्रथम बार अन्न खिलाया जाता है। इस सम्बन्ध में भी गीत गाये जाते हैं। इन गीतों को अन्न-प्राशन के गीत कहते हैं। 'कनउजी' में सोहरों की संख्या से ये कहीं कम हैं।

मुण्डन के गीत— अन्नप्राशत के बाद दूसरा संस्कार मुण्डन है। इस संस्कार में बालक के केश प्रथम बार काटे जाते हैं। यह संस्कार किसी देवता के मन्दिर अथवा पवित्र नदी के किनारे किया जाता है। इन संस्कारों की कर्ता-धर्ता स्त्रियाँ होती हैं। अतः प्रायः मुण्डन किसी देवी के मन्दिर में ही होता है। इस संस्कार के समय जो गीत गाये जाते

हैं उन्हें 'मुण्डन के गीत' कहा जाता है। इस प्रकार के गीतों की संख्या भी 'कनउजी' में बहुत कम है।

यज्ञोपवीत के गीत—यज्ञोपवीत संस्कार अन्य संस्कारों में अत्यधिक महत्व का है। यद्यपि यह संस्कार अब विशेषरूप से ब्राह्मणों क्षत्रियों तक ही सीमित रह गया है परन्तु फिर भी इस समय गाये जाने वाले गीतों की संख्या पर्याप्त है। इस समय गाये जाने वाले गीतों को 'बरुआ' कहते हैं। यज्ञोपवीत में अनेक लोकाचार होते हैं और 'कनउजी' में इनके विषय में भी अनेक गीत मिलते हैं।

बिवाह के गीत—विवाह जीवन की अवतारणा से प्रकृत-सम्बन्ध रखता है। इससे स्त्री और पुरुष का वह सम्बन्ध स्थापित होता है जिससे वे सृष्टि की परम्परा को आगे बढ़ावें। मानव-प्रकृति प्रजनन-क्रिया की समृद्धि के लिये सदैव उत्सुक रहती है जिससे उसकी परम्परा अविच्छिन्न रहे। यही कारण है कि समस्त-सृष्टि में प्रजनन-क्रिया के लिये सौन्दर्य और आकर्षण का प्रदर्शन होता रहता है। इसी से प्रत्येक मनुष्य विवाह जैसी घटनाओं की ओर विशेष आकर्षित होता है। यही कारण है कि विवाह-संस्कार बहुत ही महत्त्वपूर्ण और प्रधान संस्कार बन गया है। इस अवसर पर जो विवाह को धार्मिक-कृत्य मानते हैं, वे तो हर्ष प्रकट करने के लिए गीत गाते ही हैं, परन्तु जिनका विवाह के लिए धार्मिक दृष्टिकोण नहीं है, वे भी इसे सामाजिक समझौता मानकर गीतों द्वारा अपने आनन्द की अभिव्यक्ति करते हैं। विवाह के अवसर पर अनेक लोकाचार तथा विधि-विधानों का सम्पादन होता है। अतः इनसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेकानेक प्रकार के गीतों की उपलब्धि होती है। विवाह गीतों का सूत्रपात फलदान (तिलक) के गीतों से होता है। इसके बाद घना, मण्डप, माड़वे, तेल चढ़ने, पूरन-पूरने, कपड़े पहनने, मौर पहनने, कुआँ व्याहने, निकरौसी, जेवनार, परछन, भाँवर आदि अवसरों पर विभिन्न गीत गाये जाते हैं। इन लोकाचारों के बीच-

बीच में ऐसे भी गीत गाये जाते हैं जिन्हें 'गाली' कहते हैं, इनमें मुख्यतया अश्लीलता होती है और जिसका कि उद्देश्य मनोरंजन होता है। इसके अतिरिक्त इस संस्कार में घोड़ा, घोड़ी, बन्ना बन्नी आदि गीतों की भरमार रहती है। विवाह के सम्पन्न हो जाने पर लड़की की विदा होती है और इसके भी गीत पाए जाते हैं। यह गीत बड़े ही करुण एवं मार्मिक होते हैं। जिन जातियों में विवाह के समय विदा नहीं होती उनके यहाँ 'द्विरागमन' गौना के समय इन गीतों को गाया जाता है।

ऊपर 'संस्कारों के गीत' वर्ग में आने वाले गीतों का स्थूल रूप मे परिचय दिया गया है। ये गीत ही विभिन्न संस्कारों में गाये जाते हैं।

२—ऋतु-गीत

भारतीय जनता प्रकृति की पुजारिन है। प्रकृति का जैसा सौन्दर्य भारत में देखने को मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं। अतः ऋतु और महीनों में जो परिवर्तन हुआ करते है उनका निरीक्षण तथा उनसे आनन्द की अनुभूति कौन ऐसा भारतीय है जो न करे? विभिन्न ऋतुओं के आने पर हृदय उल्लसित हो उठता है। इस आनन्द की अभिव्यक्ति कनउजी लोक-गीतों में दर्शनीय है। चैत मास हमारे वर्ष का आरम्भ का मास है। इस मास में वसन्त अपने पूर्ण यौवन में होता है। मादक वायु स्त्री और पुरुषों में एक अनोखी मादकता भर देती है। कोयल की कू कू तथा भ्रमरों का गुंजार एक दिव्य वातावरण की सृष्टि करती है। ऐसे समय स्त्री पुरुष अपने को गीत गाने से नहीं रोक सकते। उनके गीत वातावरण के अनुकूल होते हैं। इस समय के गीतों को 'चैना' कहते हैं, इसके पश्चात् ऋतु-गीतों में हमें श्रावण के गीत उपलब्ध होते हैं। यह गीत वास्तव में स्त्रियों के होते हैं और इनको 'सावन' या 'कजली' कहा जाता हैं। यह गीत झूला झूलते समय गाये जाते हैं। इसी वर्षा ऋतु में बारहमासा भी गाया जाता है जो स्त्री और पुरुष दोनों का ही गीत है। 'बारहमासा' में बारहों महीनों का बड़ा ही रुचिकर

वणन होता है। इसके पश्चात् ऋतु-गीतों में 'फाग' उपलब्ध होते हैं। कन्नौज में इन गीतों की संख्या बहुत अधिक है। यह गीत फागुन मास में गाया जाता है। विविध वाद्य-यन्त्रों को बजाकर जब ये गीत गाये जाते है, तो इनके सुनने का लोभ अपने को सभ्य कहने वाले नागरिक भी सवरण नहीं कर पाते। कन्नौजी-प्रदेश में वर्षा-ऋतु में 'आल्हा गीत' का भी बहुत प्रचलन है। एक आल्हा गानेवाला बुला लिया जाता है जिसे 'अल्हवई' कहते हैं और सारा गांव बैठकर सुनता है।

३. व्रत-गीत—

व्रतों के अवसर पर गाये जानेवाले गीत व्रत-गीत कहलाते है। इन गीतों का सम्बन्ध केवल स्त्रियों से है। स्त्रियाँ व्रत रखती है और इन्ही अवसरों पर गीत भी गाती है। तीज (हरतालिका व्रत), हरछठ, करवाचौथ, नवरात्र आदि व्रतों में गीत गा गाकर अपने मनोवांछित फल को प्राप्त करना चाहती हैं। इसके अतिरिक्त रात्रि में जागने के व्रत का भी स्त्रियाँ अनुष्ठान करती हैं और देवी के मंदिर मे एकत्र होकर रात्रि भर जागती है। रात्रि में यदि वे शान्त होकर बैठें तो सम्भवतः जागना कठिन हो जावे। अतः वे गीत गाती है। यह गीत देवी के गीत होते हैं और इन्हें 'रतिजगे' के गीत भी कहते है।

४ पर्व-गीत—

हमारे समाज में अनेक पर्व मनाए जाते हैं। पर्व हर्ष के प्रतीक होते हैं। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि इन अवसरों पर गीत भी गाए जावें। पर्वों को त्योहार भी कहा जाता है। अतः इसके अन्तर्गत 'होली' आ जाती है। होली गीत फाग से सर्वथा भिन्न हैं। होली में रंग, मिलने का उत्साह, हास्य, मनोविनोद आदि बातें होती हैं। मनोविनोद की मात्रा तो इतनी बढ़ती है कि वह अश्लीलता का रूप धारण कर लेती है। अनेकों ऐसी गालियाँ गाई जाती हैं जिनको

सभ्य और वयोवृद्ध लोग सुनने में घृणा का अनुभव करते हैं। होली के अतिरिक्त पर्व-गीतों में गंगा स्नान के जाने के लिए कार्तिकी, महँगी और दशहरा के समय के गीत मिलते हैं। इन गीतों में गंगा के महत्त्व का गुणगान होता है। गंगा के महत्त्व के अतिरिक्त अनेक भजन आदि भी इन गीतों के अन्तर्गत आते हैं।

५. काम-काज करते समय गाए जानेवाले गीत—

काम करते या राह चलते समय गाये जानेवाले गीतों को काम-काज के गीत कह सकते हैं। इस प्रकार के गीतों को अँग्रेजी लोक-साहित्य के मर्मज्ञों ने 'ऐक्शन्-साँग' कहा है। इन लोक-गीतों के प्रचार करनेवाले बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक होंगे, तभी तो उन्होंने काम करते समय गीतों के गाने का प्रचार करवाया जिससे-काम करनेवाला गीत में अपना ध्यान बँटाकर थकान की ओर ध्यान ही न दे। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि किसी वस्तु की ओर ध्यान देने से उसकी अधिकता का अनुभव होता है और न ध्यान देने पर मानों उसकी अधिकता बहुत कम हो जाती है। श्रम के बोझ को श्रमिक अनुभव न करे और अपना कार्य प्रसन्नता—पूर्वक करे, इस दृष्टि से यह गीत बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। काम करने के समय गाये जानेवाले गीतों को चक्की के गीत, रोंपा के गीत, निरवाही के गीत, राह चलने के गीत, कोल्हू के गीत, चरखे के गीत आदि श्रेणियों में रख सकते हैं। काम-काज के गीतों का लक्ष्य मनोविनोद होता है और यही खेल खेलने का भी, अतः खेल खेलते समय गाये जानेवाले गीतों को भी इसी वर्ग में रख सकते हैं। इन गीतों में बालकों के खेल-गीत—'टेसू,' 'झुँझिया' 'निवरता-निवरती' आदि भी आते हैं।

६—जाति-गीत—

सामान्यतया तो सभी गीत सभी जातियों द्वारा गाये जाते हैं, परन्तु कुछ ऐसे गीत भी हैं जिन पर कुछ जातियों का एकाधिकार होता है।

अतः वर्गीकरण करते समय इन गीतों को 'जाति-गीत' कहा गया है। अधिकतर ऐसे गीतों की पहँचान कि वे किस जाति के हैं, उनमें वर्णित जाति-विशेष के कार्य-क्षेत्र और सामाजिक-रीति-रिवाज आदि से होती है। इन गीतों में जाति के क्रम से अलग-अलग राग भी होते हैं। रागों की दृष्टि से कहारों, चमारों, धोबियों, तेलियों, अहीरों और धानुकों के गीत अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

इस अध्याय में 'कनउजी लोकगीतों' का वर्गीकरण और सक्षिप्त परिचय दिया गया है। अगले अध्याय में गीतों के प्रकार और वर्ण्य-विषय पर विस्तृत-विवेचन किया जायगा।

तृतीय-अध्याय

'कनउजी लोक-गीतों के प्रकार और वर्ण्य-विषय'

'कनउजी लोक-गीतों के प्रकार और वर्ण्य-विषय'

पिछले अध्याय में कनउजी लोकगीतों का वर्गों में विभाजन किया गया है। जब हम कनउजी लोकगीतों के प्रकारों पर विचार करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि इन वर्गों में से एक-एक वर्ग में भी कई प्रकार के गीत पाये जाते हैं। इन प्रकारों की संख्या बहुत बड़ी है। प्रत्येक वर्ग के अंतर्गत गाये जानेवाले गीतों के प्रकार का क्रमशः नीचे वर्णन किया जावेगा।

प्रथम वर्ग संस्कार के गीतों का है। इसको सर्वप्रथम इस कारण रखा गया है कि अन्य भारतीय भाषाओं की भांति कनउजी में भी संस्कार-गीतों की संख्या अन्य अवसरों या विषयों के गीतों से बहुत अधिक है। भारतीय जीवन में संस्कार धर्म के अंग है, अतः उनकी व्यापकता होना स्वाभाविक ही है। संस्कारों के क्रम के अनुसार गीतों के प्रकारों का भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

संस्कार-गीतों के प्रकार—

१—**'सोहर'**-यद्यपि शास्त्रानुमोदित प्रथम संस्कार गर्भाधान है, परन्तु लोकगीतों में इसका वर्णन नहीं मिलता। इसके पश्चात् पुंसवन-संस्कार का भी उल्लेख लोक-गीतों में अप्राप्य है और इस प्रकार हम देखते हैं कि सर्वप्रथम संस्कार जन्म है। इस समय गाये जानेवाले गीतों में सोहर सबसे मुख्य है। भारतीय-भाषाओं में सोहरों की संख्या अन्य प्रकार के गीतों से कहीं अधिक बड़ी है। सोहर शब्द का विकास सूतिगृह से ज्ञात होता है। 'कनउजी' में इसे 'सोहरो' कहते हैं। 'ब्रज' में इसके लिए

'सोहिलो' शब्द का प्रयोग हुआ है। एक शब्द 'सोभर' भी इसके लिए प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ भी जच्चा के रहने का स्थान है। 'सोहर' शब्द का प्रयोग किन्हीं-किन्हीं गीतों में हुआ है :—

'बाजे अनद बधाये उठन लगे 'सोहर' हो'

'सोहर' के स्थान पर कहीं-कहीं 'मंगलचार' का भी प्रयोग किया गया है। जैसे :—

'सखि गावौ मंगलचारु आजु आली भये ललना'।

रामचरितमानस में भी तुलसीदासजी ने रामजन्म पर मंगल-गीतो के गाये जाने का उल्लेख किया है। साहित्यिक-हिन्दी में भी 'सोहरों' की रचना हुई है। तुलसीदास जी ने रामललानहछू नामक ग्रंथ की रचना इसी 'सोहर' छन्द में की है। वस्तुतः इन गीतों में 'सोहर' छन्द के प्रयोग के कारण ही इसका नाम 'सोहर' पड़ गया है। तुलसी दासजी ने जो 'सोहर' लिखे हैं वे तुकान्त है और मात्राओं का एक निश्चित-क्रम है। उदाहरण के लिए नीचे कुछ सोहर दिये जाते हैं:—

'मोचिनि बदन संकोचिनि हीरा माँगन हो।
पनहीं लिहे कर सोभित सुन्दर आँगन हो।
बतिया कै सुघर मलिनियाँ सुन्दर गातहि हो।
कनक रतनमनि मौर लिहे मुसकातहि हो।
नयन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो।'।
देइ गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो [१]।

परन्तु कनउजी लोक-गीतों में पाये जानेवाले 'सोहर' अतुकान्त होते हैं। कुशल लोककवि ने छन्द-शास्त्र के नियमों की कोई चिन्ता नहीं की फिर भी इसकी टेक रागात्मिका-वृत्ति से ओत-प्रोत है। सोहर की रचना स्त्रियों द्वारा ही हुई है। इसी हेतु इनमें स्त्री-सुलभ-कोमलता

१—तुलसी—ग्रंथावली (राम लला नहछू)

भरी पड़ी है और इनका स्वर सौन्दर्यमयी व्यंजना से अनुशासित है। नीचे 'सोहरों' के भेद पर विचार किया जायेगा।

'सोहर' के प्रकार—सोहर छन्दों में वर्णित विविध भावनाओं की दृष्टि से हम उनका विभाजन निम्न प्रकार से कर सकते हैं :—

१—कामना-गीत	२—दोहद-गीत
३—प्रसव-पीड़ा के गीत	४—जन्ति के गीत
५—ननद और भाभी के बदने के गात	६—नेग-गीत
७—जच्चा के नखरे से सम्बन्धित गीत।	८—आनन्द बधाये के गीत।

सोहर का वर्ण्य-विषय—सोहर का वर्ण्य-विषय मुख्यतया शृंगार-रस से युक्त होता है। इसमें दम्पति की रतिक्रीड़ा, गर्भाधान, गर्भिणी स्त्री के शरीर, ननद और भाभी की 'बदन' प्रसव पीड़ा, गर्भिणी की इच्छा, इच्छा की पूर्ति, धाय का बुलाया जाना, पुत्र का जन्म, सद्योजात पुत्र का रोना, माता का आनन्द, सास-ननद तथा ससुर का आनन्द, पिता का हर्ष से प्रफुल्लित होकर दान करना आदि विषयों का वर्णन प्रचुर मात्रा मे मिलता है। परन्तु साथ ही साथ सीता और बांझ स्त्रियों तथा उनके कष्टों एवं मनोवेदना का भी इनमें वर्णन मिलता है। ऊपर 'सोहरों' का जो विभाजन किया गया है उनमें एक-एक को लेकर उनमें वर्णित विषय पर प्रकाश डाला जायगा।

१—कामना-गीत—इन गीतों में स्त्री के पुत्र प्राप्त करने की कामना और उसके उद्योग का वर्णन मिलता है। स्त्री की चरम आकांक्षा मातृत्व की भावना में ही होती है अतः पुत्र प्राप्त करने की आकांक्षा का होना स्वाभाविक ही है। इस कामना और उद्योग को लेकर कई गीतों की लोक-कवि ने रचना की है। इस प्रकार के गीत कनउजी में ही हों, ऐसी बात नहीं, परन्तु इतना अवश्य है कि इनके कथानक और भाव में थोड़ा

बहुत अन्तर तो मिलता ही है। इन कामना-गीतों में दो गीत महत्त्वपूर्ण हैं। एक गीत में पुत्रहीन स्त्री पुत्र के अभाव में गंगा में डूबने के लिए एक लहर मांग रही है। अत: गंगा उसकी कामना को पूरा करने के लिए वरदान देती हैं कि उसके पुत्र होगा। घर जाकर पुत्र के लिए उसे ऐसा 'उछाह' होता है कि वह नौ मास तक पुत्र की प्रतीक्षा नहीं करती और बढ़ई से काष्ठ का पुत्र बनवाती है। वह सूर्य से प्रार्थना करती है कि "हे सूर्य देवता! काष्ठ के पुत्र में प्राण डाल दो जिससे कि इसे लेकर उठूं बैठूं और सोऊँ"। नौ मास बीतने पर उसके पुत्र उत्पन्न होता है और पति, सास, ननद, देवर आदि सम्पूर्ण परिवार के लोग जो उसका निरादर करते थे, आदर करने लगते हैं। इन्हीं भावों को लेकर पूर्वी बोलियों में भी गीत (अवधी और भोजपुरी) प्रचलित हैं। परन्तु ऊपर के कथानक को लेकर दो गीत पाये जाते हैं। कविता-कौमुदी में संगृहीत ग्राम-गीतों का प्रथम 'सोहर' हमारे गीत के आधे अंश तक अर्थात् वरदान प्राप्त करने तक मिलता है और उसके पश्चात् यह दो चरण लेकर समाप्त हो जाता है :—

गंगा गहवरि पिअरी चढ़इबै होरिल जब होइहैंइहो।
गंगा देहु भगीरथ पूत जगत जस गावइ हो।

कनउजी और अवधी के गीत का विषय किस प्रकार मिलता है, इसे दिखाने के लिए दोनों गीतों को उद्धृत किया जाता है:—

अवधी-गीत

गंगा जमुनवाँ के विचवाँ तेवइवा एक तपु करइ हो।
गंगा अपनी लहर हमें देतिउ मैं मँझधार डूबित हो।
की तोहिं सास ससुर दु:ख कि नैहर दूरि बसै।
तेवई! की तोरे हरि परदेस कवन दुख डूबहु हो।
गंगा! ना मोरे सास ससुर दुख नाहीं नैहर दूरि बसै।
गंगा! ना मोरे हरि परदेस कोख दुख डूबब हो।

जाहु तेवइया घर अपने हम ना लहर देवइ हो ।
तेवई आजु के नवएँ महिनवाँ होरिल तोरे होइहैं हो ।
गंगा ! गहवरि पिअरी चढ़इवै होरिल जब होइहैं हो ।
गंगा ! देहु भगीरथ पूत जगत जस गावइ हो ।

कनउजी-गीत (पूर्वांश)

अरि गंगा किनारे इक तिरिया सो ठाढ़ी अरज करै हो ।
गंगा एक लहरि हमैं देव सो जी मैं बूड़ि मरौं हो ।
की दुख की तुमैं सास ससुर को की सजना परदेस हो ।
की दुख है तुमैं माया बाप को की सगे जाये बीर हो ।
ना दुख री हमैं माया बाप को ना सगे जाये बीर हो ।
सासू तौ मोरी बहू ना कहै ना कहै ननदी भउजाइ हो ।
मोरे सजना बाँझ कहि टेरैं सो एई दुख डुबियैं हो ।
ई दुख डुबिओ जु ई दुख डुबिओ ।
तौ लौटि के रनियाँ घर जाव ललन तुम्हारे हुइहैं हो ।

जैसा कि कहा जा चुका है, काठ के बालक बनवानेवाला प्रसंग भी अवधी-गीत में आता है, परन्तु इसका प्रारम्भ दूसरे ढंग से होता है । इस गीत का आरम्भ होता है कि रानी खिड़की में बैठी हुई है । राजा उसके पास जाते हैं और कहते हैं कि मेरे सन्तान नहीं है । अतः मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि योग धारण कर लूँ । रानी ने कहा कि मैं भी आपका साथ दूंगी और दोनों भिक्षा-वृत्ति से उदर-पूर्ति करेंगे । कदम्ब के नीचे बैठे हुए राजा बालक बनवा रहे हैं । रानी राम से कहती है कि "आपने किसी को दो और किसी को चार पुत्र दिए हैं, मुझे ही क्यों विस्मृत कर दिया ?" राम उत्तर देते हैं कि "पूर्वजन्म में राजा बहेलिया और तुम बहेलिन थीं, अतः तुम्हें पुत्र नहीं मिल सकता । तुम सास, ससुर तथा ननद का आदर नहीं करतीं, जेठ की परछाई से परहेज नहीं करती," रानी कहती है, "अब मैं यह सब करूँगी"—और

इसके आगे वे पंक्तियाँ आती हैं जो ऊपर कहे कनउजी गीत में मिलती हैं। नीचे दोनों को दिया जा रहा है:—

अवधी

मोरे पिछवरवाँ बढ़इया वेगि ही चलि आवहु हो।
बढ़ई गढ़ि देहु काठे के बलकवा मैं जिया बुझावउँ मन समुझावउँ हो।
काठे का बालक गढ़ि दिहलै अँगने धरि दिहलहँ हो।
बाबुल मोरे अँगने रोइ न सुनावउ मैं बाँझिनि कहावउँ हो।
देव गढ़ल जो मैं होतेउँ रोइ सुनउतेउँ हो।
रानी बढ़ई के गढ़ल होरिलवा रोवन नहिं जानइ हो।

कनउजी (उत्तरांश)

अरि आई धना बढ़ई के तीर औ सबद सुनावैं हो।
बढ़ई तुम मोरे देउर जेठ कहो मेरो करि देव रे।
काठ को पूत गढ़ि देव तौ उइ का खिलइयैं हो।
अरि नहाय धोय के ठाढ़ी और सुरज मनामैं हो।
सुर्ज काठ पूत जिउ डारौ तौ एइ कौ खिलामैं हो।
अरि बीते जो नौ दस मास तो होरिल सबद सुनामैं हो।
बाजन लागे बाजे उठन लागे सोहर हो।
धनि धनि गंगा तुम्हैं हो मेरो मान बढ़ाय दओ हो।
अब तौ सास बहू कहि बोलैं ननद कहै भउजी हो।
अरि सजना जच्चा कहि बोलैं तौ छतियां सिराइ गईं हो।

अवधी-गीतों से तुलना करने के पश्चात् हमें ऐसा प्रतीत होता है कि कनउजी गीत में दो गीत जुड़ गए हैं। बाह्यदृष्टि से माना भी जा सकता है कि इसमें दो सूत्र जोड़े गए हैं परन्तु आन्तरिक रूप से वह एक ही हैं। प्रारम्भ से अन्त तक एक समान भावधारा प्रवाहित होती रहती है। कनउजी-गीत विषय की दृष्टि से ब्रज-गीत से मिलता जुलता है। इसमें इस प्रदेश के कोमल भावों और कोमल कल्पना का

भी आभास मिलता है और इसी कारण इसे सुखान्त बना दिया गया है। अवधी-गीत दुःखान्त है जो कि भारतीय चिन्तन-धारा का एक अपवाद कहा जा सकता है।

दूसरा कामना-गीत राजा दशरथ और उनकी रानियों से सम्बन्धित है। चौकी पर राजा दशरथ विराजमान हैं। पास ही कौशल्या बैठी हैं। रानी राजा से कहती हैं—हम पुत्र-रूपी-सम्पति से वंचित हैं। अपने राज्य के ज्योतिषियों को बुलवाकर भाग्य पढ़वाइये। पंडित आते हैं और कहते हैं कि यदि पुत्र हो तो हम पढ़कर सुना दें। भाग्य हमसे पढ़ा नहीं जाता अर्थात् भाग्य में कुछ लिखा ही नहीं है। तत्पश्चात् मालियों द्वारा दी गई औषधि को सिल पर पीस कर पिया गया। पहले कौशल्या ने तत्पश्चात् सुमित्रा ने। कैकेई ने सिल धोकर पीलिया। कौशल्या ने राम, सुमित्रा ने लक्ष्मण और कैकेयी ने चरत—भरत को जन्म दिया[1]। जन्म होने पर जब राजा दशरथ धन लुटाने लगे तो कैकेई कहती है कि हे राजा धीरे धीरे धन को बांटो क्यों कि राम बन को जायंगे। राजा यह सुनकर दुखी होते हैं और महल में चले जाते हैं। कौशल्या के धन लुटाने पर राजा उन्हें रोकते हैं पर कौशल्या उत्तर देती हैं कि "राम बन को चले जायंगे तो चले जायंगे परन्तु मेरा बांझ कहलाना तो मिट गया है। क्या इस हर्ष पर भी मैं धन न लुटाऊँ? इस प्रकार कौशल्या की कामना पूर्ण हो जाती है। ब्रज और अवधी में यह गीत कुछ थोड़े बहुत अन्तर से मिलता है। इन दो गीतों के अतिरिक्त और भी बहुत से कामना-गीत मिलते हैं जिनमें स्त्री की पुत्र प्राप्ति की कामना ही प्रधान विषय होता है।

---

१. ध्यान देने की बात यहाँ पर है कि इस गीत में कथा रामायण की कथा से भिन्न है। रामायण में न तो माली ने औषधि दी थी और न कैकेई से चरत अर्थात् शत्रुघ्न उत्पन्न हुए थे।

२—**दोहद-गीत**—स्त्री के गर्भवती होने पर उसको अनेक वस्तुओं के खाने की अभिलाषा होती है । इस अभिलाषा को ही 'दोहद' कहा जाता है । यह अभिलाषा इतनी तीव्र होती है कि पत्नी अपने पति से दुष्प्राप्य वस्तुओं को भी मंगा कर अपनी इच्छा पूरी करना चाहती है । पति उसकी अभिलाषा को पूरी भी करना है । यों तो गीतों में अनेक वस्तुओं का उल्लेख मिलता है पर उनमे 'नौरंगिया' का विशेष रूप मे वर्णन आता है । एक गीत मे पति पत्नी से पूॅछता है कि उसका मन जिस फल में लगा है उसी को लाया जावे । पत्नी 'नौरंगिया' फल मांगती है । पति कठिन परिस्थितियों में पड़ता हुआ अपनी स्त्री को वहीं फल खिलाता है । गीत में वर्णन इस प्रकार है:—

रनियां कौन फलन मन लागो कौन फल लामैं रे ।
सकल वस्त मेरे घर मैं एकौ नहि भावै रे ।
मोरे नौरंगिया की साध 'नौरंगिया' लइ आवौ रे ।
राजन भये घोड़ा असवार 'नौरंगिया, लेन गये हैं रे ।
एक नौरंगिया टोरी नौरंगिया पेड़े बांधो है रे ।
कहौ की के हौ तुम बेटा कौन केरे नाती हौ रे ।
कौन छैल ब्रजनारि नौरंगिया लेन आए हौ रे ।
अपने ददुलि के बेटा आजुलि के नाती हैं रे ।
अपनी धना ब्रजनारि नौरंगिया लेन आये हैं रे ।
सासु हमारी बोले बोल बोले हैं बोलै रे ।
बहुअरि ऐसे फलन मन लागो कि पूता बंधाये हैं रे ।
(इसी प्रकार जिठानी ननद आदि)
भोर भओ पौ फाटी चिरइयां जो बोली हैं रे ।
जल्दी खोलौ तौ चनन किवरियां हाँथ-मुह धौबौ नौरंगिया कौ चीखौ रे
पहिले चिखावौ अपनी मइया अउर सगी बहिनी कौ रे ।
राजा तिनकी जुठन हम खायं संचत मुँह देखैं है रे ।

गर्भिणी की इच्छा (दोहद) का संस्कृत-साहित्य में भी उल्लेख हुआ है। कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में इसका वर्णन किया है।

३. प्रसव-पीड़ा के गीत—संतान उत्पन्न होने के समय स्त्री असह्य प्रसव-पीड़ा से छटपटाने लगती है। इस समय पीड़ा से व्याकुल होकर स्त्री क्या कहती है? किसका किसका स्मरण करती है? आदि का वर्णन इन प्रसव-पीड़ा-सम्बन्धी गीतों में मिलता है। इस समय वह भगवान् का भी स्मरण करती है। ठीक ही है, ऐसे समय पर भी भगवान् का स्मरण न आये तो कब आएगा। एक गीत में, जब पीड़ा होती है तो स्त्री सास, जिठानी, देवर और पति की गोद में शरण लेकर पीड़ा से मुक्त होना चाहती है। क्रमशः एक-एक की गोद में वह जाती है और पीड़ा के शान्त न होने पर दूसरे की गोद में। इस गीत में स्त्री की लज्जा की रक्षा का पूर्ण-रूप से ध्यान रखा गया है। वह पहले सास आदि की गोद में जाती है पर पीड़ा से मुक्ति नहीं मिलती। जब पीड़ा से उसे किसी प्रकार से भी शान्ति नहीं मिलती तो अपने पति के पास जाती है। वह ज्योंही उसे गले लगाता है त्योंही बालक जन्म लेता है और स्त्री पीड़ा को भूलकर आनन्द और उत्साह से गद्-गद् हो जाती है। इस गीत में लोक-कवि ने पति की गोद में पीड़ा के शान्त होने और पुत्र के उत्पन्न हो जाने के प्रसंग को लेकर माधुर्य से श्रोता को सराबोर कर दिया है। गीत इस प्रकार है—

मैं मरोरी पीर की मारी।
पहिली पीर जब आई मैंने अंगना मैं बइठि बुझाई
सुमिरि भगवान पीर की मारी।
दूसरी पीर जब आई मैंने सासु की गोद बुझाई मीचिके आंखी
सुमिरि भगवान............।
तिसरी पीर जब आई मैंने जिठनी की गोद बुझाई
सुमिरि भगवान............।

चौथी पीर जब आई मैंने दिउरा की गोद बुझाई बाँधि लई मूठी
सुमिरि भगवान............ ।

पचई पीर जब आई मैंने सजना की गोद बुझाई लगाय लओ गरे मैं
गरे लगाओ सजन ने होरिलवा ने सवद सुनाओ जुड़ाय गयो जिअरा
सुमिरि भगवान............ ।

प्रसव से सम्बन्ध रखनेवाले गीतों में यह भी वर्णन होता है कि जब गर्भवती स्त्री पीड़ा से व्याकुल होती है तो सास, जिठानी, देवरानी तथा ननद से प्रार्थना करती है कि ये उसकी पीड़ा बँटा लें। इसके बदले मे वह सास को हंसुली, जिठानी को बाजूबन्द, देवरानी को दर्पण, ननद को कंठा देने का वचन देती है। पुत्र के जन्म होने पर जब वह स्वस्थ होती है तो कहती है "पीड़ा बँटाने में मेरे लिए किसी ने कुछ भी नहीं किया। मुझे जो पुत्र की प्राप्ति हुई है वह तो दैव की कृपा से न कि तुम्हारे कारण ?[1] किसी-किसी गीत में यह भी वर्णन मिलता है कि स्त्री पीड़ा से अत्यधिक ब्याकुल है। उदरस्थ बालक से शीघ्र ही जन्म लेने का अनुरोध किया जाता है। इसके उत्तर में बालक कहता है कि मैं जन्म तब लूंगा जब मुझे बचन दिया जावे कि जन्म लेते ही मुझे सोने के खप्पर में स्नान कराया जावेगा, रेशम से बुने पलँग पर सुलाया जावेगा और ओढ़ने बिछाने के लिए सुन्दर वस्त्र दिये जायँगे। गीत में उसे वचन दिया जाता है और तब कहीं बालक जन्म लेता है। ऐसे भी गीत पाये जाते हैं जिनमें उल्लेख मिलता है कि अधिक पीड़ा होने का कारण स्त्री का गुरुजनों के साथ दुर्व्यवहार है। उसने सास और ननद का आदर नहीं किया, ससुर और जेठ की लाज नहीं की। इस समय तो ईश्वर से प्रार्थना करने पर ही उसे मुक्ति मिल सकती है।

४. जन्ति के गीत—प्रसव से सम्बन्ध रखने वाले ऐसे गीत भी होते हैं जिसमें गर्भ के कारण स्त्री के कृश और पीत शरीर यष्टि का.

---

१. 'तुमने सासु जी का कीनो हमैं होरिल राम ने दीनों'

वर्णन मिलता है—"स्वामी ने जो पेड़ लगाया है वह रस-रस डोल रहा है। प्रथम मास में स्त्री को उबकी आती है, दूसरे मास में मुरझा जाती है, तीसरे मास में वह बड़ी उदास सी रहती है, चौथे मास में उसका शरीर पीला पड़ जाता है। उसकी यह दशा देखकर पति दिल्ली शहर से वैद्य बुलाता है। स्त्री इस स्थिति में कहती है कि हे वैद्य दूर रहना। मेरे स्वामी तो बावले हो गए हैं।[1]

५—ननद और भाभी के बदने के गीत—इन गीतों का वर्ण्य-विषय ननद और भाभी की बदन (शर्त लगाना) होता है । गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा या पुत्री, इसका क्या पता ? परन्तु ननद कहती है कि, 'हे भाभी ! तुम्हारे पुत्र ही उत्पन्न होगा।" भाभी पुत्र का नाम सुनते ही मग्न हो जाती है और उत्साह-पूर्वक ननद से कहती है कि 'ननद जी । यदि तुम्हारे भतीजा हुआ तो मैं तुम्हें दुलरी और तिलरी तथा गले का हार दूंगी"। समय आने पर बालक उत्पन्न होता है पर अब ननद को भाभी हार नहीं देती। इस पर ननद कुछ क्रुद्ध होकर शाप देने को सन्नद्ध हो जाती है और तब भय से अभिभूत होकर भाभी को हार देने के लिये विवश हो जाना पड़ता है। इन्हीं गीतों के अन्तर्गत ननद और भाभी के कटु-सम्बन्ध का गीत भी आता है। ननद भाभी (सीता) को कष्ट देना चाहती है अत: अपने भाई राम को भाभी सीता से रुष्ट करवा देने के उद्देश्य से भाभी से रावण का चित्र बनवाती है और बाद में उसे राम को दिखला देती है । राम लक्षमण को आज्ञा देते हैं कि सीता को बन में छोड़ आओ। इस गीतको पढ़कर हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि ग्रामीण लोग जो परम्परा और रूढ़ि से चलने वाली बातों के पक्के अनुगामी होते हैं, उन्होंने भी विश्रुत राम-कथा में अपनी मौलिक कल्पना को

---

१. इस भाव का गीत परिशिष्ट में देखिए ।

प्रस्तुत किया है। सीता के वनवास का कारण लोकापवाद था पर लोक-कवि चित्र के प्रसंग को लेकर वनवास करवाता ह। गीतों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि कनउजी-गीत ब्रज की भांति तपस्वी द्वारा सीता के आश्वस्त होने तक ही नहीं समाप्त हो जाता वरन् उसमें लव-कुश का जन्म, रोचन भेजने, राम के सीता के पास आने और सीता के पृथ्वी में समा जाने की कथा भी आ जाती है। कनउजी गीत बुन्देली से मिलता जुलता है।[१]

६—नेग क गात—लोक जीवन में नेग का बड़ा ही महत्त्व है। कोई भी संस्कार क्यों न हो, नेग के बिना काम नहीं चलता। विविध सम्बन्धी तथा 'परजा' बिना नेग के काम नहीं करते। सोहरों में भी नेग का उल्लेख बहुत अधिक मिलता है। इनमें सास, जिठानी, ननद, देवर, 'धनकुन' आदि के नेग माँगने के अनेक प्रसंग आते हैं। जब वालक उत्पन्न होता है तो नारा काटने के लिए 'धनकुन' नेग माँगती हैं, उसें मनमाना नेग मिलता है। इसी प्रकार सास, जिठानी, ननद आदि को भी। परन्तु कही-कहीं कोई स्त्री यह भी कहती है कि 'हे पति धन लुटाने से क्या लाभ ? सास का नेग मेरी माता से करवा देना और सास को लौटा देना।" गीत इस प्रकार है :—

हम तौ अकेली सइयां सब ना लुटाय दीजौ।
सास जो आवें सइयां द्वारे ते लौटाय दीजौ।
सास को नेग मेरी अम्मा ते कराय लीजौ।
जिठनी जो आमैं सइयां द्वारे ते लौटाय दीजौ।
जिठनी को नेग मेरी भउजी ते कराय लीजौ।

---

१. ब्रज, बुन्देली और पूर्वी में प्रचलित इस गीत के अन्तर तथा साम्य का दिग्दर्शन डा०सत्येन्द्र ने 'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन' ग्रंथ में कराया है। कनउजी गीत की कथा का बुन्देली से साम्य देखने के लिए उपरोक्त पुस्तक के १३७-४० पृष्ठ देखिए।

ननदी जो आमैं सइयां द्वारे ते लौटाय दीजौ।
ननदी को नेग मेरी बहिनी ते कराय लीजौ।
दिउरा जो आमैं सइयाँ द्वारे ते लौटाय दीजौ।
दिउरा को नेग मेरे भइया ते कराय लीजौ।

इसके अतिरिक्त इन गीतों में यह भी वर्णन मिलता है कि नेगों के लिये राजा दशरथ वस्त्र लुटाते हैं तथा रानी कौशल्या विविध आभरण। कोई नेग मांगने वाला रिक्तहस्त नहीं जाता। एक गीत में स्त्री नेग पाने वालों के लिए किस प्रकार मुक्तहस्त होकर दान कर रही है, दर्शनीय है:—

धिया न जलमी जलमें है हीरालाल।
मेरी दाई जू कै कै रुठना लेव।
मेरे मइके की चुनरी सो ओढ़ि घर जाव।
मेरी अम्माजू कै कै रुठना लेव।
मेरे मइके को कंगना सो पहिरि घर जाव।
मेरी जिठनी बड़ी जू कै कै रुठना लेव।
मेरे मइके को कंगना सो पहिरि घर जाव।
मेरी ननद जू कै कै रुठना लेव।
मेरे मइके की तिलरी सो पहिरि घर जाव।
मेरी दिउरानी जू कै कै रुठना लेव।
मेरे मइके की पहुंची सो पहिरि घर जाव।

नेग का एक और गीत है जिसमें दाई के नारा न छीनने पर परिवार के विविध लोग उसे अलग अलग नेग देते हैं। गीत इस प्रकार है:—

ऐसी दाई हरजाई लाल को नारा न छीनें।
नारा छिनाई अजुध्या मांगै मथुरा मांगै हलवाई ....।
द्वारे से ससुरा हंथिया पठओ हंथियौ न लेय वह दाई ....।

द्वारे से जेठा उंटिला पठओ उंटिलौ न लेय वह दाई ....।
द्वारे से दिउरा घुड़िला पठओ घुड़िलौ न लेय वह दाई ....।
द्वारे से सइयां मोहरैं पठई मोहरौं न लेय वह दाई ....।

जन्म के अतिरिक्त अन्य संस्कारों में भी नेग के गीत गाये जाते है, जिनका उल्लेख अन्यत्र किया जायेगा।

७. **जच्चा के नखरे के गीत**—पुत्र के जन्म देने पर स्त्री के हर्ष और उत्साह का पारावार नहीं रहता। उसे इस का गर्व है कि 'हमने जाये हैं नन्दलाल, धिया नहिं जाईहै'। अतः यह बात स्वाभाविक है कि वह इस अवसर पर बात-बात में मनौती ले। स्त्री को इस बात की चिन्ता है कि उसने असह्य-पीड़ा को सहन करके पुत्र को जन्म दिया है परन्तु पुत्र फिर भी पति का ही कहलायेगा। अतः वह सास ननद आदि से इस बात का दावा करती है कि 'दरद तौ हमने सही पिया के लाल कइसे कहामैं'। इस प्रकार वह रूठ करके, पुत्र से उसीका नाम चले, ऐसा सब लोगों से मनवाना चाहती है। स्त्री का रूठना ही नहीं, गीतों में इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि जब उसे चरुआ का पानी और पीपर तथा 'हरीरा' आदि पीने को दिया जाता है तो वह नखरे दिखलाती है और पीने से मना कर देती है। सास-ससुर जेठ-जिठानी और ननद उसे मनाती है तो वह नहीं मानती और कहती है कि:—

पीपरि करुई कसइली बहुत बकठइली ललना।
गेहुआं बरन मोरी देंही जरद हुइ जइयै रे।
कपुर बरन मोरी जिभिया जरद हुइ जइयै रे।

इसी प्रकार अन्य गीत भी पाये जाते हैं जिसमें जच्चा की विभिन्न प्रकार से मनौती की जाती है पर वह रूठती तथा नखरे ही दिखाती चली जाती है। अन्त में जब पति डंडा दिखाता है तो तत्क्षण ही 'पीपर' उठाकर पी लेती है

८. आनन्द बधाये के गीत— पुत्रोत्पत्ति पर जच्चा को परिवार के विविध लोग तथा सम्बन्धी बधाई देने आते हैं और इसी बधाई के विषय को लेकर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'आनन्द बधाये के गीत' कहा जाता है। इन गीतों के बीच अथवा अन्त में कभी-कभी आनन्द बधाये 'या बधाये' शब्द भी आ जाता है जैसे "बधाये नन्द की आली।" आनन्द का तो यह समय ही होता है। सभी प्रसन्न होते हैं और आनन्द-मग्न होकर गीत गाते या सुनते हैं। स्त्री को बधाई देते हुए कहा जाता है कि तुम कुल को तारने वाली हो, "उठौ उठौ धना कुल तारनी बधइयाँ देमैं तुमैं।" "कुल तारने" से उस भारतीय विश्वास की ओर संकेत मिलता है जिसमें माना जाता है कि पुत्र नरक से त्राण करता है,[१] और स्त्री ने ऐसे पुत्र को जन्म दिया है जो सम्पूर्ण कुल का त्राण करेगा। अत: फिर वह कुल-तारनी क्यों न हो ? एक अन्य गीत में उल्लेख मिलता है कि भाई के पुत्र होने पर बहन बधाई देने को गई। भाई बहन का आदर करता है और अपनी स्त्री से उसके पैर भी छूने को कहता है पर बहन को कुछ देना नहीं चाहता और बहाना करता है कि यहाँ पर ताल-पोखर सब सूख गए हैं, कुओं में रेत हो गया अत: कुछ भी पैदा नहीं हुआ। बहन को वह पान का बीड़ा देता है और कहता है कि बहन अपने घर जाओ। इस पर बहन उत्तर देती है कि हे भाई तुम वस्तुत: स्त्री के पूर्ण रूप से दास हो। गीत इस प्रकार है:—

बधइया राजा बीर की

उठौ उठौ धना कुल तारनी बधइया राजा बीर की।
मेरी बहिनी के चरन छुइ लेव बधइया राजा बीर की।
ताल पुखरिया सूखि गई बधइया राजा बीर की।
मेरी बहिनी कौ बिरिया लगाबौ बधइया राजा बीर की।
जाव जाव बहिनि घर आपने बधइया राजा बीर की।

---

१. पुत्नाम नरकात् त्रायते इति पुत्र:।

बइठौ बइठौ बिरन घर आपने बधइया राजा बीर की ।
तुम जोड़ के असिल गुलाम बधइया राजा बीर की ।

अन्य बधायेगीतों में भी ऐसे ही मिलते-जुलते विषय का वर्णन मिलता है ।

'सोहर' के प्रकारों और उनके वर्ण्य-विषय के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'सोहर' सुखान्त और दुःखान्त दोनों प्रकार के होते है । 'मैथिली लोक-गीत' के सम्पादक श्री राम इकबाल सिंह ने लिखा है कि झूमर में निराशा के दिलसोज आँसू दिल को बेचैन करते हैं । 'सोहर' सुखान्त होता है, और इसमें आशा की निर्बन्ध-निर्झरिणी टेढ़ी नागिन सी बल खाती, बिजली सी बल खाती हुई चली गई है[1] । इस कथन से स्पष्ट है कि उनके मत से सोहर दुःखान्त होते ही नहीं । परन्तु तथ्य कुछ और ही है । अवधो, भोजपुरी और मैथिली सोहरों में "काष्ठ के पुत्र बनवाने वाला' दुःखान्त-सोहर मिलता है । यदि यह कहा जाय कि कनउजी और ब्रज में दुःखान्त-सोहर नहीं मिलते तो समीचीन भी है । इस प्रकार हम देखते हैं कि भाव-धारा की दृष्टि से पूर्वीगीतों की अपेक्षा कनउजी-सोहर ब्रज के 'सोहरों' से अधिक साम्य रखते हैं । वे प्रायः सुखान्त होते हैं ।

जन्म के अन्य गीत—

जन्म के गीतों में 'सोहर' का स्थान ही महत्त्वपूर्ण है । ऊपर जैसा वर्णन किया जा चुका है, इसमें करुणा, हास, उत्साह आदि भावों और विविध प्रसंग के द्वारा बड़ी उत्कृष्ट कोटि की रससृष्टि की गई है । परन्तु जन्म के अन्य गीत केवल औपचारिक हैं । जब कोई कार्य होता है तो उसमें किसका क्या हाथ रहता है ? इसी का वर्णन इन गीतों में विशेष रूप से मिलता है । इस कोटि में 'चरुआ के गीत' नारा छीनने

---

१. रामइकबाल सिंह: 'मैथिली लोकगीत । पृष्ठ ५० ।

के गीत, 'सतिया के गीत,' 'तीर मारने के गीत,' 'सन्ततिस्नान के गीत,, छठी रखने के गीत और 'बै के गीत' आते हैं। इन गीतों को 'मांगलिक गीत' भी कहा जाता है क्योंकि इनका अन्त मंगल-भावना से होता है जैसे, 'जो यहु जच्चा गावै गाय सुनावै, तरि बैकुंठै जाय सुनइया फल पावै।' इन गीतों में संस्कार की तैयारी कैसे की जाती है, इसका बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए एक सन्तति-स्नान का गीत देखिए :—

अनदा वधाई री आज मोरे।

जब गउवा को गोबर मंगाओ अंगना लिपाओ री माई .....
जब गोबर अंगना लिपाओ चौक पुराव री माई।
जब मुतियन चौक पुराई कलस धराव री माई।
जब सोने को कलस धराओ दिअना जराव री माई।
जब मानिक दिअना जराओ पटुलि धराव री माई।
जब चन्दन पटुली धराई जसुदा बुलाव री आली।

इन गीतों में यह भी वर्णन मिलता है कि सतिया धरने के लिए ननद चरुआ धरने के लिए सास, पीपर पीसने के लिए जिठानी और तीर मारने के लिए देवर आते हैं।

मुण्डन के गीत—

मुण्डन-संस्कार के समय गाये जाने वाले गीतों को 'मुण्डन के गीत' कहा जाता है। इस संस्कार में प्रथम बार केश-कर्तन किया जाता है। मुण्डन के गीतों की संख्या बहुत ही थोड़ी है। यह स्वतन्त्र रूप से एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। अतः इसके गीतों का उल्लेख अलग से किया गया है। इन गीतों के विषय में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इनके गाते समय ढोलक आदि बाजे नहीं बजाये जाते। सम्भवतः इसका कारण यह है कि यह संस्कार किसी नदी या घर से दूर

किसी मंदिर में होता है । अतः वहां ढोलक आदि ले जाने में असुविधा होती है ।

इस संस्कार में भाग लेने के लिए बुआ (पिता की बहन) बहन तथा अन्य सम्बन्धियों को भी निमंत्रण दिया जाता है, इसका वर्णन इन गीतों में मिलता है । इनमें इन्द्र भगवान् से बुआ-फूफा, बहन-बहनोई प्रार्थना करते हैं कि वे पानी न बरसावें, जिससे कि सुविधापूर्वक संस्कार में सम्मिलित हुआ जा सके । कुछ गीतों में यह भी वर्णन होता है कि बाबा, दाई, ताऊ, ताई, पिता, माता, चाचा, चाची आदि बालक को जंघा पर बैठाये हुए है और दान दे रहे है:—

झड़ुले है आम अमिलिया अउर जंभिरिया अउर जउन के खेत
झलरिया मोरी पावनी रे ।
अथइयां बइठे आजा उनके ठाड़े मुन्ना राम एहो आजा आंगे लुटनी पसारे ।
मुड़ावौ आजा झालरि रे ।
दाई उनकी जांग बइठारे झलरी मुड़ा मैं रे ।

(इसी प्रकार अन्य भी)

'झलरी' मुड़ने के समय (केश-कर्तन के समय) बुआ और बहिन का काम बालों को एकत्र करके अंचल में रखना होता है । इस सम्बन्ध में भी गीतों में वर्णन मिलता है कि बुआ और बहन नेग मांग रही हैं और बालक के बाबा, पिता आदि जीभरकर नेग दे रहे हैं ।

यज्ञोपवीत के गीत—

यज्ञोपवीत-संस्कार में प्रचलित गीतों को 'जनेऊ के गीत' अथवा 'बरुआ' कहते हैं । अब यह संस्कार प्रधानतया ब्राह्मणों के यहां और सामान्यतया क्षत्रियों के यहां किया जाता है । अतः इन गीतों का इन्हीं दो वर्णों में प्रचलन है । इतना होते हुए भी आश्चर्य

की बात यह है कि इसके पर्याप्त-मात्रा में गीत उपलब्ध होते हैं ।

जनेऊ होने के कारण माता पिता की प्रसन्नता, स्वयं ब्रह्मचारी की प्रसन्नता तथा संस्कार के विविध विधि-विधानों एवं कृत्यों का वर्णन इन गीतों में मिलता है । कही वर्णन मिलता है कि दशरथ राम के जनेऊ के लिए चिन्तित हैं और वशिष्ठ जी से प्रार्थना करते हैं कि राम आठ वर्ष के हो गए है, उन्हें जनेऊ पहनने के लिए बहुत बड़ी साध है । जनेऊ पहनने की उत्सुकना को देखिए:—

रामचन्द्र बरुआ भुइं लोटि जायं जनेऊ के कारन ।

जनेऊ के विभिन्न विधि-विधानों की तैयारी में सभी लोग व्यस्त भी दिखलाए गए है । कही कोई मूंज चीरता हुआ तो कहीं जनेऊ के लिए सूत कातता हुआ, कहीं कोई पलाश-दण्ड काटता हुआ तो कहीं लंगोटी तैयार करता हुआ दिखाई देता है । किसी गीत में जनेऊ के समय क्या-क्या विधि-विधान होता है, इसको बतलाने के लिए एक ऐसे पात्र की योजना की जाती है जो पूंछता है कि अमुक का जनेऊ कहाँ हो रहा है ? इसका उत्तर दिया जाता है कि अमुक-अमुक कार्य जहाँ होता हो वही समझो कि यज्ञोपवीत संस्कार सम्पादित हो रहा है । विधि-विधानों के वर्णन करने की यह बड़ी सुन्दर प्रणाली है । देखिए:—

गलिन-गलिन पण्डित घूमैं हाँथ मैं पोथी लये ।
कउन बखरी राजा जसरथ राम को जनेउआ ।
बाँसन धोती सुखत हुइऐ बरुआ जेंउत हुइयैं, पंडित वेद पढ़ैं रे ।
अँगना मैं ढोल धमाका दई जइसे गरजैं रे ।

इसी प्रकार नाई, कहाँर, कुम्हार, बढ़ई आदि पूँछते हैं और उनको भी यही उत्तर दिया जाता है । एक गीत में कपास के बोने से ओंटने, धुनने, चरखा चलाने, सूत कातने और जनेऊ बनाने तक की प्रक्रिया का वर्णन मिलता है । जनेऊ के समय सब सम्बन्धी बुलाये जाते हैं । बहन-बहनोई,

बुआ और फूफा आदि का बुलाना अपरिहार्य है ही। इन गीतों में यह भी वर्णन मिलता है कि ये लोग जब संस्कार में भाग लेने के लिए चलते हैं तो मार्ग में वर्षा होने लगती है और उन बेचारों के 'सोग सिंगार,' जनेऊ में सम्मिलित होने की साध के कारण भींग जाते हैं।

जनेऊ हो जाने पर ब्रह्मचारी भिक्षा माँगता है क्योंकि उसको वेदाध्ययन के लिए काशी जाना है। वह अपनी मातामही, माता, चाची, भाभी आदि से कहता है कि मुझे सत्तू और लड्डू दे दो, मैं 'काशी बनारस' वेद पढ़ने जाऊँगा[1]। ये लोग निर्धनता के कारण असमर्थता प्रकट करते हैं और कहते हैं कि हम लड्डू और सत्तू कहाँ से लायें, तुम घर ही में वेद पढ़लो। एक ब्रह्मचारी की लंगोटी और जनेऊ पर प्रश्न किया जाता है कि:—

किन जादई है पीरी लंगुटिआ
किन इउ जनओ कराओ।
आजा मेरे दई है पीरी लंगुटिया आजी ने जनओ कराओ।
(इसी प्रकार पिता, माता, चाचा, चाची आदि भी)

कनउजी गीतों में लड़की के विवाह में ही मण्डप छाये जाने का उल्लेख है पर मैथिली लोक-गीतों में जनेऊ में भी मण्डप छाया जाता है। यह उस प्रदेश की विलक्षण प्रथा है :—

हरिअर बंसवा कटाएल मारव छायव रे।
आज मोर लाल के जनेउआ केहि-केहि नेवतव रे[2]।

अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी, गुजराती, बंगाली और उड़िया के जनेऊ के गीतों से कनउजी-गीतों की तुलना करने पर हम इस निष्कर्ष

---

१. **लाबौ न आजी मोरी सतुआ औ दुइ लडुआ**
कासी बनारस जैयैं बेद पढ़ि अइयैं।

२. **रामइकबाल सिंह राकेश'—मैथिली लोकगीत, पृष्ठ ६७।**

पर पहुँचते हैं कि इनके वर्ण्य-विषय में बहुत समानता है। विवाह प्रथाओं में तो बहुत अंतर मिलता है परन्तु जनेऊ-प्रथा सब प्रदेशों में लगभग एक सी ही प्रचलित है।

नहछू के गीत—

कन्नौजी-क्षेत्र में 'नाखुरों' (नहछू) विवाह के पहले होता है। इसी दिन पैर के नाखून प्रथम बार काटे जाते हैं। यह संस्कार भी बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है परन्तु इसे स्वतंत्र-संस्कार नहीं कहा जा सकता। वास्तव में यह संस्कार विवाह-संस्कार का एक अंगमात्र ही है। "नाखुरे" के गीतों में वर्णन मिलता है कि इस संस्कार में सभी सम्बन्धियों को निमंत्रित किया जाता है। माता-पिता धन-धान्य लुटाते हैं। "नाखुर" करते समय का वर्णन बड़ा ही सुन्दर होता है, देखिए :—

पतरी पतरी अंगुरियां नउनियां गोरी।
करत राम जी को नाखुरो हो घूँघट खोली।
नउआ तौ कहे नउनियां से इउ सब थोरी।
राम औ लछिमन को नाखुरो लिएँ हम घोड़ी।

कहीं-कहीं 'नहछू' विवाह के बाद भी होता है[1]। शिष्ट-काव्य में भी नहछू-संस्कार का वर्णन किया गया है। इस विषय का तुलसीदास का 'रामलला नहछू' उत्कृष्ट कोटि का ग्रंथ है।

विवाह के गीत—

विवाह का महत्त्व और उसकी विविध प्रथाओं का विस्तृत वर्णन 'सांस्कृतिकचित्रण' नामक अध्याय में किया जायेगा। इन विविध प्रथाओं के समय सैकड़ों गीत गाये जाते हैं। इन गीतों का वर्ण्य-विषय अत्यन्त विस्तृत है। इनमें बालविवाह, वृद्धविवाह, विषमविवाह और दहेज की विषम-समस्याओं पर भी लोक-कवि ने

१—रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी (ग्राम गीत) पृष्ठ ३४०

अपने उद्‌गार प्रकट किए हैं। वर को खोजने के लिए पिता की परेशानी तथा विदा के समय के जो चित्र इन गीतों में खींचे गए हैं, वे बड़े ही मार्मिक हैं। इन गीतों में एक ऐसी प्रथा का भी उल्लेख है जो आजकल यूरोप में प्रचलित है, यह है वर का कन्या की खोज करना और उसके कुटुम्बियों से अपनी ओर से प्रस्ताव करना। कनउजी में ऐसे गीत भी पाये जाते हैं जिनमें वर तपस्वी का वेश धारण करके कन्या के आंगन में बैठकर तपस्या करता है और उसके माता पिता आदि के पूँछने पर कहता है कि मैं तुम्हारी कन्या का वरण करना चाहता हूँ। विवाह के गीतों में कही-कहीं कन्या सुन्दर और अपने अनुरूप वर के ढूँढने की प्रार्थना करती है तो कहीं उसकी माता अपने पति को कन्या के लिए वर खोजने के लिए प्रेरित करती है। कहीं बारात के आने और बाजा बजने का उल्लेख होता है तो कही माता जामाता को समझाती है कि वह उसकी पुत्री को किसी भी प्रकार का कष्ट न दे। इन गीतों में विवाह की सजधज और ज्योनार का भी बड़ा ही अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मिलता है[1]।

विवाह गीतों के भेद—विवाह के गीतों में दो प्रकार के गीत पाये जाते हैं। एक तो वे हैं जो वधू के घर में गाये जाते हैं और दूसरे वर के घर में। कन्या-पक्ष के गीत करुण-रस से पूर्ण होते हैं। इसका कारण है कि माता पिता को बड़ी चिन्ता यह है कि उनकी कन्या, जिसको उन्होंने पाल-पोस कर इतना बड़ा किया है, एक अपरिचित व्यक्ति के साथ चली जायेगी। उन्हें उसके जाने का इतना शोक नहीं है जितना यह सोचकर कि जाने पर वहां उसे सुख भी मिलेगा अथवा नहीं ? दूसरी ओर वर-पक्ष के अधिकांश गीतों में शोभा-सजावट और धूम धाम का वर्णन मिलता है। इसका कारण भी यह है कि वर, उसके पिता तथा माता को इस बात की प्रसन्नता और उत्साह है कि उन्हें

---

१. परिशिष्ट में 'ज्योनार गीत' देखिए।

'बहू' की प्राप्ति होगी। नीचे दोनों पक्षों में गाये जाने वाले गीतों के प्रकार दिये जाते हैं :—

कन्या—पक्ष

१—पीली चिट्ठी के गीत। २—फलदान के गीत।
३—भात मांगने के गीत। ४—घना के गीत।
५—मण्डप गाड़ने के गीत। ६—तेल चढ़ने के गीत।
७—पितृ-निमंत्रण तथा देवता-निमंत्रण के गीत। ८—मायं मैंधरा के गीत।
९—मण्डप छाये जाने के गीत। १०—द्वार-चार के गीत।
११—चढ़ावे (वस्त्राभूषण मांगने और पहनने के गीत)
१२—भांवरों के गीत। १३—कन्यादान के गीत।
१४—द्वार रोकने के गीत। १५—बाती मिलाने के गीत।
१६—ज्योनार के गीत। १७—कलेवा के गीत।
१८—गारी। १९—बन्नी।
२०—घोड़ी। २१—नकटा।

वर—पक्ष

१—वरीक्षा के गीत। २—फलदान के गीत।
३—भात मांगने के गीत। ४—घना के गीत।
५—मण्डप गाड़ने के गीत। ६—तेल चढ़ाने के गीत।
७—पितृ-निमंत्रण तथा देवता-निमंत्रण के गीत।
८—'मांय-मैंधरा' के गीत। ९—पुरइन पूरने के गीत।
१०—मौर पहँनने के गीत। ११—वस्त्र पहनने के गीत।
१२—'निकरौसी' के गीत। १३—'नूनराई' उतारने के गीत।
१४—उबटन के गीत। १५—कंगन छुड़ाई के गीत।
१६—मौर सिराने के गीत। १७—गारी।
१८—बन्ना। १९—सोहाग-रात के गीत।

विवाह के अधिकांश गीतों में संस्कारों का उल्लेख रहता है। कौन संस्कार है ? कौन इसका संपादन रहा है ? यही बातें साधारणतः इन गीतों में मिलती हैं। विवाह के विविधविधानों के समय तत्सम्बन्धी जो गीत गाये जाते हैं उनका वर्णन 'सांस्कृतिक-चित्रण' करते समय किया जायेगा। यहाँ पर कथात्मक तथा भावपूर्ण गीतों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। विवाह के संस्कारों का प्रारम्भ 'लगुन' से होता है। अतः उस समय भेजने वाली पीरी चिट्ठी के गीतों का यहाँ उल्लेख किया गया है। इन गीतों में शुभ-शकुन, 'लगुन' की तैयारी तथा बाबा, पिता, चाचा आदि की भावना का उल्लेख होता है। कहीं-कहीं कन्या के पिता का वर ढूँढ़ने के लिये तथा संवाद भेजने की चिन्ता का भी उल्लेख होता है। राम का निवास दूर है, पत्रवाहक को अयोध्या कैसे भेजा जावे ? न तो नाई और न ब्राह्मण ही जाने के लिए तैयार हैं। कन्या की माता कहती है कि 'हे नाई मैं तुम्हारी स्त्री के लिये चुनरी और ब्राह्मण को पचास मुहरें दूंगी। तुम लोग 'पीरी चिट्ठी' ले जाओ,।

पीली चिट्ठी के बाद भात के गीत गाये जाते हैं। जब बहन अपने भाई के यहाँ भात मांगने जाती है तो उस अवसर पर गीत गाये जाते हैं। किसी-किसी गीत में ऐसा वर्णन मिलता है कि भात के निमन्त्रण के लिये गई हुई ननद का भाभी आदर-सत्कार नहीं करती। कुछ खाने को भी नहीं देती। परन्तु भाई कहता है कि हे बहन तुम निश्चिन्त होकर अपने घर जाओ मैं तुम्हें निश्चित तिथि पर भात पहनाऊँगा'। एक गीत में यह भी उल्लेख आता है कि बहन का सगा भाई मर चुका है, अतः वह अपने फुफेरे भाई के यहाँ भात मांगने जाती है, पर वहां से निराश हो कर लौटना पड़ता है। भात की उसे इतनी साध है कि वह श्मशान जाती है और कहती है:—

भइया कहां तुम बइठे हो
तुम्हरी बहिनी करत पुकार।

भाई बृक्ष से उतर आता है और पूछता है कि:—

बहिनी कब है तुम्हरो माड़ओ
अउर कब है रचियैं बियाह
भात कब लामैं जी ।

समय पर भाई उत्सव में सम्मिलित होता है और बहन को भात पहनाता है। वह बहन को पहले ही रोक देता है कि महुए का पीढ़ा मत डालना। पर ईर्ष्यालु सौत महुए का पीढ़ा डाल देती है और उसमें भाई समा जाता है। तब सौत देवरानी जेठानी ताने मारती हैं कि भूत भात पहना गया। इस गीत में करुणा का चरमरूप मिलता है। बहन के क्षणिक सुख को निर्दयतापूर्वक कुचले जाने के कारण विषाद ओर भी अधिक गहन हो जाता है।

'गारी':—वास्तविकता तो यह है कि 'गारी' गीतों का ही विवाह में साम्राज्य है। ये गालियां प्राय: सभी अवसरों पर गाई जाती हैं पर भोजन के समय इनको विशेषरूप से महत्त्व दिया जाता है। यह गालियां व्यंगपूर्ण होती हैं और अर्थ गाभीर्य से युक्त भी, सुरुचिपूर्ण और अश्लील भी। गाली का व्यंग-रूप हमे वहां मिलता है जहां पर अभिप्राय तो प्रशंसा करना होता है परन्तु वाह्यरूप से पूर्व-पुरुषों और माता-पिता आदि की निन्दा की जाती है। इसे हम एक प्रकार की व्याजस्तुति कह सकते हैं। नीचे एक उदाहरण देखिए :—

अरे तुम सुनौ क्रस्न बलराम हमारी गारी प्रेम भरी।
बुआ तुन्हारी कुन्ती कहामैं रूप में हैं सिरमौरि।
क्वांरे ही मैं लड़िका जाओ निकरी सउति छिनारि।
हमारी गारी प्रेम भरी।
बहिनी तुम्हारी सहुद्रा कहामैं रूप में हैं सिरिमौरि।
क्वांरे में अरजुन संग भाजीं निकरी सउति छिनारि।
हमारी गारी प्रेम भरी।

अतः अधिकांश गालियों में अश्लीलता तथा फूहड़पन का ही बोलबाला रहता है। उनमें यौनसंकेतों की भरमार होती है। इनमें पुरुष के गुप्तअंगों और उनकी विविध क्रियाओं तक का निर्लज्जता-पूर्ण वर्णन किया जाता है। विविध-वर्जित तथा अनुचित सम्बन्धों का प्रसंग लाकर गाली देना तो सामान्य ही बात है।

'ज्योनार'—ज्योनार-गीत भी भोजन करते समय गाये जाते हैं। इनमें शिष्टता का पूर्णरूप से निर्वाह होता है। विशेषरूप से भोजन के चोष्य, चर्ब्य, लेह्य और पेय सभी प्रकार के पदार्थों के नाम इस अवसर पर गिनाये जाते है। इस श्रेणी में आनेवाले किसी-किसी गीत में इन पदार्थों की संख्या ७०-८० से ऊपर निकल जाती है[1], जब कि भारतीय भोजन के ५६ प्रकार ही बतलाये जाते हैं। भोज्य-पदार्थों में फर्रुखाबाद की मिठाई, इत्र, बालूशाही आदि के वर्णन से जान पड़ता है कि यह गीत बहुत पुराने नहीं है।

'बन्नी'—विवाह के विविध गीतों में से 'बन्नी' भी एक प्रकार का गीत है और ये गीत पर्याप्तमात्रा मे उपलब्ध होते हैं। इनका प्रधान विषय है विवाह के लिए सजी हुई कन्या का वर्णन। कन्या सुन्दर रेशमीवस्त्र पहने है और विविध आभूषणों से सुसज्जित है। रुनुक-झुनक चल रही है। किसी-किसी गीत में वर की बुराई भी मिलती है। वर सुन्दर नहीं है अतः माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धी वर को लौटा देना चाहते हैं परन्तु 'बन्नी' कहती है कि वह विषपान करके मरजाएगीः—

मेरी लाड़ो रूप सरूप सामरो बर पाओ।
छज्जा ऊपर माया बोलीं वर दीजौ लौटाय।
परदा भीतर लाड़ो बोलीं खाय जहर मरि जाँय
भँउरी डारौं ये ही बर तें।

---

१. परिशिष्ट देखिए।

कुछ गीतों में वर्णन मिलता है कि वर नदी के उस पार है और इस पार आने के लिए नाव चाहता है। उसके उत्तर में कहा जाता है कि न तो यहाँ नाव है और न नाविक। यदि लाड़ली की चाह हो तो वर महाशय ही चले आवें :—

नदिया किनारे दूल्हा ऐसो असवार है रे।
डारौ नाव नवइया दूल्हा चले आमैं रे।
ना मोरी नाव नवइया औ नाहीं खिवइया है रे।
होय लाड़िली चाह दूल्हा चले आमैं रे।

इन 'बन्नी' गीतों में वर-वधू के पुर्वानुराग का भी वर्णन मिलता है। परन्तु उसके प्रेम में संयम है जो भारतीय नारियों का विश्व-प्रसिद्ध गुण कहा गया है। जब प्रेमी स्त्री का स्पर्श करना चाहता है तो वह कहती है :—

ना छुइऔ दूल्हा ना छुइऔ दूल्हा अबै तौ हम हैं कुआरि।
जब हमरे दादुलि संकलपैं तबही हुइबो तुम्हारि॥

'घोड़ी'— यह भी कन्या-पक्ष का गीत होता है। इन गीतों की संख्या बहुत कम है। इसमें उस घोड़ी की चाल, सजधज, बनाव-शृंगार आदि का वर्णन होता है, जिस पर बैठकर दूल्हा ब्याहने आता है :—

बन्ना की घोड़ी तेज बन मैं अकेली ठाड़ी।
गरे तुम्हारे सोने को तोड़ा चमकै सम्हारै तेरी ठाड़ी।
अंग तुम्हरे मखमल की चुलिया झंगा सम्हारे तेरी ठाड़ी।

'बनरा'—बन्नी कन्या-पक्ष का गीत है और 'बन्ना वर-पक्ष का। पर कोई कड़ा नियम नही है कि अपने पक्ष के गीतों का ही गान किया जाय। दोनों पक्षों के गीत दोनों पक्षों में गाये जा सकते हैं। 'बन्ना' गीतों में वर के रूप रंग और नाज-नखरे का वर्णन होता है। बन्ने के सिर पर चीर, कान में सच्चे मोती गले में सोने का तोड़ा, हाथों में

स्वर्ण के कंकण, अंग में केसरिया जामा, पैरों में मखमली जूते, घोड़ी पर चढ़ा हुआ तथा भाइयों की जोड़ी साथ में—यह है उसकी एक झाँकी। कहीं वर भागा जा रहा है और लोगों से पुकार कर कहा जा रहा है कि पकड़ो-पकड़ो! इस प्रकार बन्ना के गीतों में विविधभाव होते हैं। कुछ आधुनिक गीतों में गान्धी का नाम भी आया है। चरखा कातने और कपड़ा बुनने का भी उल्लेख हुआ है:—

'दिल्ली मैं सोर भओ भारी बन्ना मेरो गान्धी भओ है।
आजा तौ उइको चरखा चलावै आजी बिनै गजी गाढ़ा बन्ना मेरो···।

'नकटा'—विवाह दाम्पत्य-जीवन की भूमिका है। अतः इस समय गाये जाने वाले गीतों मे वर-वधू के भावी दाम्पत्य-जीवन के विषय में चर्चा होनी स्वाभाविक ही है। इस प्रकार दाम्पत्य-जीवन के समस्त गीतों का विवाह-गीतों में ही अन्तर्भाव हो जाता है। इन गीतों को 'नकटा' कहा जाता है।

पत्नी एक गीत में पति को उपालम्भ देती हुई कहती है कि:—

सइयाँ साँझ के निकरे हैं आए भोर भए।
कउने बिलमाए कउने के बस मैं परे।
लउंगन बिलमाए जइफर बस मैं परे।
लउंगन कटवइऐं जइफर कलम करे।
महलन ऊपर रनियाँ रूप-सरूप धरे।
रनियाँ मरवइऐं बलमा बस मैं करे।
पतिया लिखि भेजौं नइहर खबरि करैं।
भइया चढ़ि आमैं बलमा पै मार परैं।

ऐसे भी अनेकों गीत है जिनमें पति से पत्नी प्रार्थना करती है कि वह परदेश न जावे। वह सदैव उसके साथ ही रहना चाहती है। इसी-लिए कहती है कि:—

चाकरी मति जइऔ पिया प्यारे।
पाँच रुपइया की तुम्हरी चाकरी दस दीबो कलदार
घरै मैं परे रहिऔ मेरे प्यारे।

कभी-कभी ऐसा वर्णन भी मिलता है जिसमें पत्नी कहती है कि मैं चक्की पीसकर, चरखा कातकर कमाऊँगी और हम दोनों यहीं चैन की वंशी बजाएँगे। परदेश जाने में बहुत ही दुःख है। जब पति परदेश चला जाता है तो पत्नी के लिए जीवन भार हो जाता है। यद्यपि उसके लिए वैभव तथा समृद्धि है परन्तु प्रियपति के बिना सब व्यर्थ ही है। महल भी उसके लिए भीषण झंकार करते हैं:—

ठाड़े महल झहनायँ अकेले राजा राम बिना।

विरहिणी की पति के वियोग में बड़ी ही बुरी स्थिति हो जाती है। उसका खाना पीना सब कुछ व्यर्थ है क्योंकि पति पास नहीं है:—

नैनन जल ढुरि जायरे जब सुधि आवै पिया की।
सोने के थारन भुजना परोसे भुजना परे अलसाँय रे
जब सुधि आवै बलम की।
सोने के गड़ुआ गंगा जल पानी गड़ुआ परे अलसाँय रे
जब सुधि आवै बलम की।
पाना पचासी की बिरिया लगाई बिरिया परी अलसाय रे।
जब सुधि आवै बलम की।
चुनि-चुनि कलिअन सेजा बिछाई सेजा परी बिलखाय रे
जब सुधि आवै बलम की।

पत्नी पति से वियुक्ता है। वह प्रिय पति की प्रतीक्षा में सारी रात जागती है और उसके साथ ही रात भर दीपक भी जलता है। संध्या से वह प्रतीक्षा करती है और प्रातःकाल हो जाता है पर वह निर्मोही फिर भी नहीं आता। उसके हृदय से उद्‌गार फूट पड़ते हैं:—

सेजड़िया सूनी स्याम नहिं आये।
हरे हरे दिअना दीप के जराए सिगरी रात, स्याम नहिं आए।
पूरब तरइयां पछिम गई है चन्दा गओ पिछवारे, स्याम नहिं आए।

इस गीत में न तो स्त्री आह भरती है और न कराहती है। वह सीधा सादा वर्णन करती है कि प्रतीक्षा करते-करते प्रातःकाल हो गया पर वह आया नहीं। इसी कारण तो उसकी वेदना की यहाँ चरम सीमा है।

बिदा के गीत—जब लड़की की बिदा होती है तो उस समय भी गीत गाये जाते हैं। कनउजी में इन गीतों को बिदा के गीत की संज्ञा दी गई है। इस अवसर के राजस्थानी गीतों को 'ओलूँ', भोजपुरी के गीतों को 'गवना' और मैथिली-गीतों को 'समदाउनि' कहा गया है। इन गीतों में पुत्री के प्रति माता-पिता का प्रेम उमड़ पड़ता है और पुत्री के 'नइहर' छोड़ने के मोह के कारण अश्रुपात देखकर पुरुषों की आँखें भी छलछला पड़ती हैं। विवाह के अन्य गीतों में आनन्द, उल्लास एवं परिहास का वर्णन होता है, केवल 'बिदा के गीत' ही ऐसे होते हैं जिनमें घोर-विषाद की छाया पड़ी होती है। माता विदा के समय लड़की का रोना नहीं देख सकती। अतः वह उसको सोती हुई ही भेज देती है। एक गीत में इसका मार्मिक वर्णन किया गया है :—

आम नीम तरे ठाड़ी बेटी, माया कलेवा लये ठाड़ि हैं रे।
खाय न लेव मोरी बेटी परदेसिन तुम्हारो कलेवा बड़ी दूरि रे।
सोउत बेटी की डुलिया फंदाभैं सोउत करैं असवार है रे।
इक बन नागी दुसरो बन नागी तिसरे मैं पहुँची जाय है रे।
परदा खोलि जब बेटी जू देखो छूटो नइहर को देस है रे।
तौ मइके को कोई नाईं बाप को कोई नाईं।
ए हो मारि कटारि मरि जांउ तौ मइके को कोई नाईं रे।

कहीं भाई अपनी बहन की पालकी के डण्डे को पकड़कर रोता दिखाई पड़ता है तो कहीं बहिन अपने भाई, माता, पिता और बहिनों के वियोग के दुःख से दुःखी होकर रोती, कलपती और सिसकती हुई पाई जाती है। एक गीत में लड़की, उसके भाई और माता के दुःख की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। माता को इस बात का दुःख है कि उसने व्यर्थ में पुत्री को जन्म दिया क्योंकि आज वह जामाता के घर जा रही है। गीत का सारांश यह है। 'कोने आंतर' में गुड़िओं को तथा रोती हुई सहेलियों को मैंने छोड़ दिया। अपने पिता के घर को छोड़कर ससुर के साथ जा रही हूँ। छोटे भाई ने पालकी का डंडा पकड़ कर कहा कि "बहन कहाँ जा रही हो!" "अपने पराये और पराये अपने होते हैं, यही कलियुग का व्यवहार है।" पुत्री को भेजकर पिता वापस आए हैं। सारा घर तथा आँगन रोता दिखाई देता है। बज्र सा हृदय फटता क्यों नहीं? "मेरा घर और आंगन भर गया है। मेरा पुत्र बहू ले आया है। मैं पुत्री को जन्म नहीं दूगी क्योंकि उसे जामाता ले जाता है। मैं तो 'नितउठि' पुत्र को जन्म दूँगी क्योंकि वह वधू लावेगा।"

सुहाग-रात के गीत—बिदा के बाद वधू ससुराल पहुँचती है और वहाँ पर सोहाग-रात मनाई जाती है। सोहाग-रात के भी अनेकों गीत मिलते हैं। इन गीतों में पति-पत्नी यही कामना करते हैं कि उनके मिलन की यह रात्रि बहुत बड़ी हो जावे। उसमें सूर्य से प्रार्थना की गई है वे उदित न हों और चन्द्र देव से प्रार्थना की जाती है कि वे रात्रि को बढ़ा दें :——

आज सुहाग की राति चन्दा तुम उइऔ।
चन्दा तुम उइऔ सुरज जिनि उइऔ।
मोरे हिरदै बिरस जिनि करिऔ मुरग जिनि बुलिऔ।
आज चन्दा करौ बड़ी राति चन्दा तुम उइऔ।

सुहाग-रात विवाह संस्कार की चरम परिणति है अतः इसके पश्चात् विवाह के गीत भी समाप्त हो जाते हैं।

ऋतु तथा पर्व-गीत

'फाग'—वसन्त ऋतु के फाल्गुन मास में गाये जाने वाले गीतों को 'फाग' और 'होरी' कहते हैं। जिस प्रकार सावन के गीतों में स्त्रियों के कण्ठ से स्वर-लहरी प्रवाहित होकर वातावरण को और भी आर्द्र बना देती है उसी प्रकार 'होली' का गीत पुरुष के कण्ठ से निःसृत होकर वसन्त के उन्माद को द्विगुणित कर देता है। इस अवसर पर गीत पर गीत फूट पड़ते हैं। रात और दिन लोगों को 'फाग' के गाने की ही धुन सवार हो जाती है। फाग का प्रधान-विषय राधा-कृष्ण का होली खेलना है जिसमें अबीर गुलाल और पिचकारी का विशेष रूप से उल्लेख होता है। इन गीतों में राधा-कृष्ण के प्रेम और क्रीड़ा का वर्णन भी मिलता है। कुछ गीतों में शिव का नाम भी आ जाता है। संभवतः होली के समय भंग का प्रयोग शिव का होली से सम्बन्ध होने के कारण ही आया है। इस अवसर पर राधा-कृष्ण और शिव का संयोग अस्वाभाविक नहीं हैं, क्योंकि तीनों ही प्रजनन और यौन-पक्ष के प्रतीक हैं। राधा-कृष्ण ने तो प्रजनन को मूर्त रूप दे दिया है और शिव ने उसको दार्शनिक रूप। होली वास्तविकता में फसल का पर्व है। इसमें सृजन का तत्वदर्शन होता है। यही कारण है कि होली में नग्नता और अश्लीलता का भी प्रदर्शन होता है।

होली के समय गाये जानेवाले गीतों की दो श्रेणियाँ होती हैं। एक तो इस अवसर के क्रीड़ा-विलास की, और दूसरी ओजपूर्ण गीतों की। होली में महाभारत, रामायण के विविध युद्धों की कथा का बड़ा ही ओज-पूर्ण वर्णन होता है। इसमें सीता-वनवास और लक्ष्मण-शक्ति आदि मार्मिक-स्थलों की भी कमी नही रहती। कुछ होलियों में उपदेश भी रहता है।

इन होली के गीतों में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनका एक स्वतन्त्र राग होता है। इसके गाने की विधि भी बड़ी विचित्र होती है। गीत में सम्मिलित होने-वाले सब लोग एक साथ ही गाते हैं। ढोलक और 'झींका' दो ही वाद्य-यन्त्र पर्याप्त होते हैं। इस गान को सामूहिक गान (कोरस) कहा जा सकता है।

क्रीड़ा-विलास की होलियाँ अनेकों मिलती हैं। उनमें से एक यहाँ पर दी जाती है:—

होरी खेलि रहे नन्दलाल मथरा की कुंज-गलिन में।
अरे कहाँ ते आईं राधा प्यारी अरे कहाँ ते आये नन्दलाल,
अरे कहाँ ते आये गोपी ग्वाल,
मथुरा की कुंज-गलिन में।
अरे पूरब ते आईं राधा प्यारी अरे दखिन ते आये नन्नलाल,
अरे पछिम ते आये गोपी ग्वाल,
मथुरा की कुंज-गलिन में।
अरे रंग तो लाईं राधा सखि प्यारी अरे पिचकारी नन्दलाल,
अरे भरि भरि मारैं गोपी ग्वाल,
मथुरा की कुंज-गलिन में।

क्रीड़ा-विलास में देवर और भाभी के रंगगुलाल खेलने का भी उल्लेख होता है। ओजपूर्ण होलियों में वीर-रस की सृष्टि की जाती है। भीम और कीचक के युद्ध का एक प्रसंग दिया जाता है:—

ताल बजाय भिम्म दहलानों—ताल बजाय भिम्म दहलानो हरे।
ताल बजाय भिम्म दहलानो बादर सो घहरानो।
फूलो अंग भओ जब दूनो तब कीचक घबड़ानो। ताल···हरे।
भिम्मा जोधा यों उठि बोलो भेद न तुमने जानो।

लड़ि ले आज तू अधम अभिमानी तोरो काल नियरानो ।
दोनौं लड़त मस्त जइसैं हांथी भुज गहि भिम्मा तानो ।
अइसी पटकि मारी धरती में कढ़त प्रान कीचक ठहनानो ···· ।
नौबतराय कहैं कर जोरी भेद न केऊ जानों ।
वाहर गाँव लहास लइ डारी भिम्मा बदलों भेस जनानों ····

होली के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में कुछ ऐसे गीत होत
है जिन्हें 'कबीर' कहते हैं । इनमें यौन-सम्बन्धों को लेकर अश्लीलता क
प्रदर्शन होता है । स्त्रियाँ भी होली गाती है, परन्तु उनके गीतों में साधा
रण राग ही होता है ।

सावन के गीत—श्रावण मास बड़ा ही मनोरम होता है । श्याम
मेघों का गर्जन सुनकर मोर कूक उठते हैं । कभी घटा उमड़ती है, कभ
दामिनी दमकती है और बूँदें इस प्रकार रिमझिम-रिमझिम करती हु
गिरती है मानों संगीत की 'मूर्छना' हो रही हो । दादुर अपना अल
राग अलापते हैं और झिल्ली अपनी झनकार सुनाती है । चारों औ
हरीतिमा ही दृष्टिगोचर होती है । प्रकृति की ऐसी सुन्दर पृष्ठभूमि
ही सावन के गीत गाये जाते हैं । स्थान-स्थान पर झूले पड़ जाते हैं औ
स्त्रियाँ झूला झूलती हैं । इस महीने को गीतों का महीना कहा जाय त
अत्युक्ति नहीं होगी[1] ।

सावन के विविध गीतों का हम निम्नांकित विभाजन कर सकते हैं–

- सावन के गीत
  - प्रबन्ध
  - मुक्तक
    - कजरी
    - पति-पत्नी-सम्बन्धी
    - भाई-बहन सम्बन्धी

---

१. डा० सत्येन्द्र : ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन पृष्ठ १०६ ।

प्रबन्ध-गीत बड़े ही रोचक होते हैं। इनमें किसी में तो छोटी कथा होती है और किसी में बड़ी। अधिकांश गीत स्त्री और पुरुष के परस्पर सम्बन्धों के हैं। प्रधान-विषय तो कोई कहानी होती है और प्रारम्भ किसी उद्यान अथवा कुआँ के दृश्य से कराया जाता है। मुगलों के अत्याचार, पति का भ्रष्टाचारी होना, सौत की ईर्ष्या आदि इन कथाओं का विषय होता है। 'चन्द्रावली'[1] का प्रसिद्ध वृत्त भी इन गीतों में मिलता है। इन गीतों में पति का दक्षिण 'चाकरी' करने के लिए जाने का उल्लेख भी मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि इन गीतों की रचना मराठों के उत्कर्ष के समय हुई थी। इन गीतों में एक विशेषता और है कि इन 'रोमांसों' के अधिकांश नायक काम करनेवाले सेवक अथवा व्यवसायी जैसे धोबी, नाई, सुनार तथा बनजारे आदि निम्नस्तर के लोग ही होते हैं। एक गीत में तो राजा की बेटी का बनजारे से प्रेम और उसके साथ भाग जाने का उल्लेख हुआ है।

कजरी—सावन के गीतों में कजरी मुक्तक-गीत होता है। घिरनेवाले मेघों की कालिमा के कारण ही इसका नाम कजली पड़ा है। भारतेन्दु ने मध्य-भारत के एक दादूराम राजा के वृत्त से सम्बन्धित होने के कारण इसका नाम 'कजली' कहा है। डा० ग्रियर्सन का मत है कि श्रावण तथा भाद्रपद के शुक्ल पक्ष तृतीया का नाम—जिस दिन यह गीत गाया जाता है—ही कजली तीज है। इस नाम से भी इसकी उत्पत्ति मानी जाती है[2]। कजली को हिंडोला गीत भी

---

१. चन्द्रावली की कथा को लेकर 'ब्रज', 'कनउजी', 'अवधी' और 'भोजपुरी' सभी में गीत मिलते हैं। यह कहना कठिन है कि मूल रूप में यह कहाँ का गीत है।

२. डा० ग्रियर्सन-ज० ए० सा० बं० भाग ५३. खण्ड १ (१८८४) पृष्ठ २३७।

कहते हैं। इस गीत में ऋतु की शोभा का वर्णन बड़ा ही सुन्दर मिलता है। रिमझिम-रिमझिम फुहार पड़ रही है, झिलमिल-झिलमिल वायु बह रही है, नारंगी की डाल हिल रही है तथा कोयल कूक रही है—

रिमझिम परैं फुहार औ बुँदियाँ टपकि रहीं।
झिलिमिलि बहै बयारि पवन झलि डोलि रही।
डोलैं नौरंगिया की डार कोइलिया कुहुकि रही।
गरजैं घटा घनघोर मुरइला कूकि रहे।

कजली का वर्ण्य-विषय प्रेम है। इसमें शृंगार के उभय-पक्ष की झाँकी मिलती है। एक गीत में वर्णन है कि पत्नी पति के पास है, उसके लिए वह नाना प्रकार के व्यंजन तैयार किये बैठी है और अपने पति से खाने के लिए आग्रह कर रही है। भोजन करने के पश्चात् वह पति को शय्या पर सुलाना चाहती है :—

कि अरे रामा हीरा जड़ी सन्दूक मोतिन की माला हे हारी।
कि अरे रामा जेमौं ननद जू के भइया तुम्हारे परैं पइयाँ हे हारी।
कि अरे रामा सोने के गड़ुआ गंगाजल पानी रामा हे रामा।
कि अरे रामा पिऔ ननद जू के भइया तुम्हारे परैं पइयाँ हे हारी।
कि अरे रामा पाना पचीसी की बिरिया लगाई रामा हे रामा।
कि अरे रामा रचौ ननद जू के भइया तुम्हारे परैं पइयाँ हे हारी।
कि अरे रामा फूलनवारी की सेजा लगाई रामा हे रामा।
कि अरे रामा सोबौ ननद जू के भइया तुम्हारे परे पइयाँ हे हारी।

यह तो शृंगार के संयोग-पक्ष का वर्णन हुआ। अब वियोग-पक्ष का भी कुछ उल्लेख करना होगा। वियोगिनी-स्त्री पति की प्रतीक्षा करती है। मेघ बरसने आगए परन्तु उसके पति नहीं आए अतः वह कहती है:—

स्याम नहिं आए आई स्याम बदरिया[1]

---

१. इस पंक्ति की सूरदास की दो निम्नपंक्तियों से मिलाइये—
बरु ये बदराऊ बरसन आये।
अपनी अवधि जानि नन्दनन्दन गरजिजाग घन छाये।

एक वियुक्ता-स्त्री स्वप्न में अपने पति को देखती है कि वह 'जोगी' हो गया। वह अपने पति के साथ रहना चाहती है अतः अपने यौवन और सुकुमारता की चिन्ता न करके स्वयं भी जोगिन बन जाना चाहती है और सखि से कहती है:—

सपने में सखी सइयाँ जोगी भए हमऊँ जोगिन हुइ जायँ।
जोगी के लाले-लाले कपड़ा हो जोगी के लम्बे-लम्बे केस।
जुगिया बजावै सोने की किंगिरी जोगिन गावै मल्हार।
हमऊँ जोगिन हुए जायँ।

सावन के गीतों में करुणा की भावना भी कूट-कूट कर भरी गई है। इस सम्बन्ध में वे गीत उल्लेखनीय है जिनमें स्त्री ससुराल में कष्ट पाती है और मायके की बार-बार स्मृति उसके हृदय को वेध जाती है। इस विषय के गीत भारत के सभी प्रदेशों में मिलते हैं। 'मायके' की बार-बार स्मृति आने के कारण इन गीतों को गढ़वाली लोक-गीतों में 'खुदेड़ गीत' नाम दिया गया है। सामान्यतया खुद का अर्थ 'याद' किया जा सकता है परन्तु इसमें उतने भाव नहीं जितने 'खुद' में। एक स्त्री को ससुराल में बहुत कष्ट है। उसे मायके की याद आती है और वह माता के पास संदेश भेजती है। इस भाव को तथा किस प्रकार भाई आता है और किस प्रकार बहन की दशा को देखकर माता से निवेदन करता है, आदि की बड़ी ही मार्मिक अभिव्यक्ति नीचे दिए गए गीत में हुई हैं:—

'जो तुम माया मोरी धरम की हुइऔ साउन बीरन पठइऔ'।
'बाप तुम्हारे बेटी देस के राजा ओऊ गए परदेस।
जेठो बिरन बेटी धनियाँ के लोभी नित उठि जइऐ ससुरारि।
लहुरो बिरन बेटी निपट अनारी नदि-नारे देखि डिराय।'
ऊँचे चढ़ि-चढ़ि बहिनी देखैं आज बिरन मेरो आवै।

आइ गई डुलिया आइगए कहरवा 'बइठौ मेरे भइया तखत बिछाय ।
कहि लेव माया जू की बात ।'
'माया तो बहिनी मोरी अन्न न पानी भउजी कही पैंलाग ।
बइठौ न बहिनी मेरी मचिआ जो डारि कहि लेव सासु जी की बात ।'
'सासु तौ बिरना मोरे अइसी निरदयिनि सोउन कल ना देय ।
राँधी मछरियाँ सींके धरी औ रोटी पै नून न देय ।
माया अंगारू जनि कहिऔ बिरना पेट मारि मरि जायँ ।
भउजी अंगारू जनि कहिऔ बिरना ओउ नइहर कहैं जाय ।
बहिनी अंगारू जनि कहिऔ बिरना ओऊ ससुरे नहिं जायँ ।'
ऊँचे चढ़ि-चढ़ि माया हेरैं आज धिआ मोरी आवै ।
छूँछी है डुलिया छूँछे कहँरवा छूँछे हैं पूत हमार
'उतरौ न डुलिया उतरौ कहाँर तुम बइठौ न पूत तखत बिछाय ।
कहि लेव बेटी जू की बात[1] ।'
'बहिनी तौ माया मोरी अइसे रोवैं जइसे मघा के बूंद ।
देंही तौ माया मोरी अइसी मइली जइसे दिवाल को लेस ।
कपड़ा तौ माया मोरी अइसे मइले जइसैं तेलिया को चीकट ।'
निकरे न पूता निपट कपूता बहिनी रोउत कइसे छोंड़ी ।
लाबौ न माया मोरी ढाल तरवरिया देस मारि घिया देयँ ।

इस गीत में स्त्री को विषम-वेदना एवं दुःख है परन्तु फिर भी उसे अपनी माता का बहुत ध्यान है । वह भाई से कहती है कि मेरा यह दुःख माता से मत कहना । साथ ही साथ इस दुःखमय जीवन को काटती हुई भी उसकी ससुराल की कहीं बदनामी न हो जाय । अतः वह कहती है कि इन बातों को भाभी से भी न कहना नहीं तो वह अपने मायके में मेरी हँसी उड़ाएगी ।

कुछ गीतों में ससुराल से स्त्री मायके को काग द्वारा भाई का समाचार लेने को भेजती है । उसी समय भाई भी आ जाता है । वह बहन के

लिए कुछ भी नहीं लाया अतः सास ससुर आदि भाई का अपमान करते हैं। वह लौटकर जब दूसरी बार बहुत सा सामान लाता है तो बड़ा ही सम्मानित किया जाता है। इस प्रकार धन का कितना महत्त्व है, इसका उल्लेख नीचे के गीत में हुआ है:—

बीर आए कुछौ न लाए सासु ननद मुख मोरी जी।

× × ×

बीर आए सब कुछ लाए सासु ननद हँसि मुख बोली जी।
हाथन मेंहदी पाँयन बिछिआ कइसे मिलैं राजा बीर जी।
धोय डारौं मेंहदी काढ़ि डारौ बिछिआ झपटि मिलौ राजा बीर जी।
राँधौ न बहुअरि मोती छरहर भातू अउर गेहुंन की रोटी जी।
सारे बहनोई जेउँन बइठे सारे बिदा की कही तौ जी।
सजि गई डुलिया सजि गए कहँरवा सजी भइआ जी की बहिनि जी।

ससुराल के लोग धन के कितने लोभी हैं, इसका भी वर्णन इसमें मिलता है। देखने में तो यह किसी भाई-बहन की कहानी सी जान पड़ती है परन्तु किसी एक भाई-बहन का वृत इस गीत में नहीं है, वस्तुतः समाज के प्रत्येक भाई, बहन और माता की आत्मा इसमें झांकती है।

बारहमासा—ऋतु-गीतों में 'बारहमासा' बड़ा ही लोकप्रिय-गीत है। लोक-साहित्य ही में नहीं शिप्ट-काव्य में भी इसकी परम्परा पाई जाती है। हिन्दी के कवि जायसी ने पद्मावत 'महाकाव्य' में भी नागमती के विरह का वर्णन अषाढ़ मास से प्रारम्भ करके ज्येष्ठ मास में उसे समाप्त किया है। इनकी शैली बड़ी ही संक्षिप्त हे :—

सावन बरस मेह अति पानी।
भरनि परी हौं बिरह झुरानी।
लाग पुनरवसु पीव न देखा।
भइ वाउरि कहं कंत सरेखा॥

वस्तुतः 'बारहमासा' वियोग का गीत है। इसमें वियोग-दुख से दुःखी

नायिका पर वर्ष के विविध महीनों की क्या प्रतिक्रिया होती है, इसी की अभिव्यक्ति की जाती है। प्रत्येक ऋतु और मास अन्य लोगों के लिये सुखदायक हैं पर विरहिणी को वही दुःख-सागर में डुबो देते हैं। इन गीतों में मासों अर्थात प्रकृति का वर्णन है और नाम से भी अनुमान किया जा सकता है कि यह प्रकृति-वर्णन के गीत हैं परन्तु प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन नहीं है। इनका प्रकृति-वर्णन वियोग-शृंगार के उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आता है। जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य में प्रवास-कथन में 'मंदाक्रान्ता' छन्द का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार लोक-गीतों में वियोग-वर्णन के लिए 'बारहमासा' ही बहुधा प्रयुक्त हुआ है। साहित्य में षट्ऋतु वर्णन का जो स्थान है, वही लोक-गीतों में 'बारहमासा' का। एक बारहमासे में स्त्री का पति परदेश गया है विभिन्न मासों में अपने पति को बिना देखे वह चिन्ता से तप्त हो रही है। उसे किसी प्रकार धैर्य नहीं बँधता। फागुन में सब सखियाँ होली खेल रही हैं परन्तु अपने पति के बिना वह किससे होली खेले। बारह-मासों के भाव, भाषा और शैली तथा प्रवाह के देखने के लिए यहाँ एक पूरे बारहमासा का देना अप्रासंगिक न होगा :—

चैत मास चिन्ता अति बाढ़ी प्रान रहे चित लेखे।
कइसे धीर धरौं मोरी सजनी बिन हरि मोहन देखे।
बइसाख मास रितु लागी री सजनी सब कोइ मण्डिल छाये।
हमरे तौ ऋस्न बिदेस हैं छाये हमरे मण्डिल को छावै।
जेठ मास रितु लागि री सजनी चौलित पमन झकोरै।
अइसी पमन चलै नित वासर अंग-अंग करि टोरै।
असाढ़ मास रितु लागी री सजनी चौलित बादर घेरे।
विजुली चमकै कोई न सदरखै रिमिकि झिमिक जल बरसै।
साउन मास रितु लागी री सजनी सब सखि झूला झूलैं।
हमरे तौ ऋस्न बिदेस में छाये हम झलुआ कइसे झूलैं।

भादौं मास रितु लागी री सजनी चौलित अंधिरिया छाई।
मोर की बानी पपिहरा बोलै दादुल[1] वचन सुनावै।
क्वांर मास रितु लागी री सजनी सब कोई दान लुटावै।
हमरे तौ क्रस्न विदेस है छाये हमरे को दान लुटावै।
कातिक मास रितु लागी री सजनी सब कोई गंगा हनाय।
हमरे तौ क्रस्न विदेस छाय रहे हमरे को गंगा हनाय।
अगहन मास रितु लागी री सजनी सब सखि गउने जायें।
हमरे तौ क्रस्न बिदेस छाय रहे हमरो को गउनो लेय।
पूस मास रितु लागी री सजनी जाड़ो बहुत सतावै।
हमरे तौ क्रस्न बिदेस छाय रहे हमरो जाड़ो कइसे छूटै।
महा मास जब लागी री सजनी मालिन बउर लइ आई।
हमरे क्रस्न बिदेस हैं छाये हमरे बौर कउन लेय।
फागुन मास रितु लागी री सजनी सब सखि होरी खेलैं।
हमरे तौ क्रस्न बिदेस हैं छाये हम होरी कइसे खेलैं।

इस 'बारहमासा' में विविध महीनों में जो क्रिया-कलाप किये जाते हैं, उन सभी मे अपने पति का वियोगिनी को स्मरण आता है और उन सब क्रियाओं को करने में वह असमर्थ हो जाती है। बारहहासों में पत्र द्वारा संदेश भी भेजा जाता है। स्त्री कहती है कि निर्मोही! अब तो आजा। मैं तेरे लिये सदैव पलक पाँवड़े बिछाये रहती हूँ। बारहमासे प्रधानतया वर्षा-ऋतु में और सामान्यतया सभी ऋतुओं में गाये जाते हैं।

व्रत-सम्बन्धी-गीत—

व्रत-सम्बन्धी-गीत अधिकांशतया स्त्रियों के ही होते हैं। स्त्रियों में धर्म-भावना अधिक होती है और इसी कारण वे 'व्रत' करती हैं और साथ ही गीत भी गाती हैं। परन्तु यह नही कहा जा सकता कि पुरुषों

---

१. दादुर।

के व्रत-गीतों का नितान्त अभाव है। देवी के व्रत के गीत स्त्रियाँ भी गाती हैं और पुरुष भी। यह बात अवश्य है कि व्रतों के गीतों का गायन सामान्यतया सभी स्त्रियाँ करती हैं जब कि पुरुषों का एक सीमित समुदाय। पुरुषों में केवल 'भगत' ही होते हैं जो देवी का 'व्रत' रखते हैं और गीत भी गाते हैं। यों तो गोधन, करवा-चौथ, हरितालिका, देवोत्थानी-एकादशी आदि के गीत पाये अवश्य जाते हैं परन्तु विशेष महत्त्व के गीत देवी के ही हैं। अतः यहाँ पर देवी के गीतों का ही परिचय दिया गया है।

देवी के गीत—देवी के गीत दो भागों में बांटे जा सकते हैं। एक वे जो स्त्रियाँ घर में तथा जागरण में गाती हैं और दूसरे वे जो 'भगत' गाते हैं। स्त्रियों के गीतों को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है, एक स्फुट और दूसरे प्रबन्ध-गीत। स्फुट-गीतों में देवी की प्रार्थना, स्तुति, उसके पराक्रम का उल्लेख, उसके स्थान तथा शोभा का वर्णन, जाति की तैयारी तथा यात्रियों की कठिनाइयों का वर्णन मिलता है।

यह गीत स्त्रियाँ तथा पुरुष विशेष रूप से चैत्र तथा क्वाँर मास में गाते हैं। चैत्र तथा क्वाँर मास के शुक्ल-पक्ष में प्रतिपदा से लेकर नवमी तक व्रत रखे जाते हैं और इसे नवरात्र-व्रत (नौ दुर्गा) कहा जाता है। इन दिनों रात्रि-जागरण (रतिजगो) भी होता है और स्त्रियाँ रात्रि भर जागती हैं तथा गीत गाती हैं। कभी-कभी स्त्रियाँ नृत्य भी करतीं हैं। इस प्रदेश में सात देवियों (सप्त-मातृका) की पूजा की जाती है। इन सात देवियों के अतिरिक्त शीतला देवी की भी पूजा तथा व्रत किया जाता है।

शीतला देवी के गीत—विज्ञान चेचक को एक रोग मानता है। परन्तु लोक-विश्वास में उसे शीतला-देवी कहा जाता है। इतने भयंकर रोग का, जिसमें शारीरिक तपन की चरमता होती है, शीतला नाम

सुनकर आश्चर्य होता है। डा० तारा पुरवाला[1] के मत से मनुष्य की यह प्रकृति होती है कि वह नीच तथा भयंकर वस्तु को किसी सुन्दर नाम से पुकारने का प्रयत्न करता है। जैसे रसोई बनानेवाले ब्राह्मणों को महाराज कहते हैं। इसी प्रकार से इस भयंकर बीमारी को शीतला कहने लगे हों तो कोई आश्चर्य नही। चेचक की भयंकरता के कारण ही लोक-जीवन में इसे देवी का रूप मिल गया है।

जब बच्चों को चेचक निकलती है तो स्त्रियाँ शीतला से बच्चे की रक्षा की याचना करती हैं और उनकी प्रशंसा भी करती हैं जिससे वे रोगी को नीरोग कर दें। चेचक के प्रकोप के समय तो उनकी पूजा होती ही है, साधारण-अवस्था में स्त्रियाँ अपनी शीतला का आदर-सम्मान करती हैं। यदि उनका वश चले तो वे शीतला देवी को अपने देश में लायें और उनके भोजन जलपान आदि का भी प्रबन्ध करें :—

पांमों तौ लावौं यहि देस मैं सीतली कौ।
जो मेरी सीतली को भूखा लगति है भुजना जिमामैं
यदि देस मैं सीतली कौ।
जो मोरी सीतली को प्यासा लगति है गड़ुआ पियामैं
यहि देस मैं सीतली कौ।
जो मेरी सीतली को ललबा लगति है बिरिआ रचामौं
यहि देस मैं सीतली कौ।
जो मेरी सीतली कौ नीदा लगति है सिजिआ सुआमैं
यहि देस मैं सीतली कौ।

स्त्रियाँ शीतला देवी का जयजयकार करती हैं परन्तु उनको खिलाने पिलाने की बहुत बड़ी समस्या है क्योंकि जब वह दूध पिलाना चाहती हैं तो देखती हैं कि उसे बछड़े ने जूठा कर दिया है। चावल गंगाजल और पुष्पों को भी किसी न किसी ने जूठा कर दिया है :—

१—तारापुरवाला : एलिमेंट्स आफ दी डाइंस आफ लैंग्वेज

सीतला महरानी की जइ जइ बोलौ ।

गउआ को दूध मइआ कइसे चढ़ामैं बछरा ने डारो है जुठारि-
की जइ-जइ बोलौ ।

साठी के चांउर मइआ कइसे चढ़ामें चिरई ने डारे हैं जुठारि-
की जइ-जइ बोलौ ।

गंगा को नीर मइआ कइसे चढ़ामैं मछरी ने डारो है जुठारि-
की जइ-जइ बोलौ ।

बारी को फूल मइआ कइसे चढ़ामैं भउंरा ने डारो हैं जुठारि-
की जइ-जइ बोलौ ।

शीतला के अतिरिक्त अन्यदेवियों की पूजा तथा प्रशंसा के अनेकों गीत हैं । एक ही गीत में फूलमती और काली देवी की आराधना की गई है :—

अइबे कौ फूलमती आइगई पहाड़मती,
कालिका मोरी मइआ यही बन ।
सोने के थारन भुजना बनाये जींबे कौ फूलमती,
आइ गई पहाड़मती कालिका महरानी यही बन ।
(इसी प्रकार जल-पान तथा शय्या)

स्त्रियाँ देवी को विभिन्न वस्तुएँ विभिन्न कामनाओं के लिए अर्पित करती हैं । प्रश्नोत्तर रूप में इस विषय का वर्णन नीचे के गीत में हुआ है :—

काहे के काजे मइआ धजा रे नारियर
काहे के काजे मइआ दोनन मेवा ।
दूधा के काजे मइआ धजा रे नारियर
पूता के काजे मइआ दोनन मेवा ।

और उनकी प्रार्थना पूरी भी हो जाती है तब वे कहती है :—

दूध तौ दओ मइआ भरि के दुधाड़ी

पूत दओ भरि गोदी मोरी मइआ।

'भगतों' के देवी-गीतों में भी देवी की प्रशंसा होती है। वे भी भाँति-भाँति की सांसारिक-समृद्धियों की याचना करते हैं। देवी के मन्दिर में दीप के प्रसंग का एक गीत यहाँ दिया जाता है:—

उजेरो री मइआ धिअना का सांझ भई।
काहे के धिअन काहे केरी बाती काहे के घिआ जरे।
सोने के धिअन कपुर की बाती सुरई के घिआ जरे रे।
जरि गए धिअन अरफि गई बाती मंडिल भए अँधियार भुमन मैं।

देवी के लम्बे-लम्बे गीत भी बहुत पाये जाते हैं। इनमें विविध देवियों ने विविध राक्षसों का किस प्रकार नाश किया तथा भक्तों पर किस प्रकार वत्सलता दिखलाई, आदि विषयों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

काम-काज करते समय गाए जानेवाले गीत—

काम करते समय या राह चलते समय गाये जानेवाले गीतों को काम-काज के गीत कहा जा सकता है। इनका मुख्य उद्देश्य श्रम-परिहार तथा मनोरंजन होता है।

चक्की के गीत—चक्की को 'जांतसार'[1] भी कहते हैं। इसीलिए चक्की के गीतों को जांत के गीत भी कहा जाता है। चक्की के गीत श्रम-निवारणार्थ तो गाए ही जाते हैं, परन्तु साथ ही साथ वे पीसने वाली स्त्रियों के मन को प्रेम,करुणा और उदारता से भिगोकर कुटुम्बियों के असह्य व्यवहार से उत्पन्न होनेवाले विकार को भी निकालते रहते है। जांत के गीतों के एक-एक शब्द स्त्री सदाचार की नींव की एक एक ईंट है।[2] इन गीतों में करुणरस की बड़ी ही मार्मिक अभिव्यंजना

१—यंत्र-शाला का जांतसार विकसित रूप है।
२—पं० रामनरेश त्रिपाठी—कविता कौमुदी (ग्रामगीत)।

हुई है। कही तो वियोगिनी की कराह और कहीं वंध्या की अगीम मनोवेदना का सागर उमड़ पड़ता है और कही स्त्री को कष्ट देकर सास और ननद उसके जीवन को नारकीय बना देती हैं। इन कारुणिक विषयों के अतिरिक्त चक्की के गीतों में रामायण तथा महाभारत के कथानक को लेकर भी पर्याप्त गीत मिलते हैं। सीताहरण तो चक्की का अनिवार्य अंग ही है। एक गीत में सीताहरण तथा जटायुमरण का प्रसंग इस प्रकार आया है—

रथ तौ रोकत जात जटाई।
विप्र रूप धरि आओ राउन भिच्छा मांगन जाई।
कुड़री बाहर भई जानकी रथ पै लेत चढ़ाई। रथ तौ रोकत जात⋯⋯।
की की बिटियां काह नाम है कउन हो लिए जाई।
सुर्जवंस निरपति राजा जसरथ तिनके सुत रघुराई। रोकत जात⋯⋯।
तिनकी तिरिया नांव जानकी हरे निसाचर जाई।
अस कोई होवै रामादल में हमको लेय छुड़ाई।
अगिन बान जब छोड़ो राउना पंख गिरे हहराई।
तुलसीदास[1] भजौ भगवाना राम से कहिऔ कथा समुझाई।

एक गीत में सीता को लक्ष्मण वन में ले जाते हैं, वहां उन्हें प्यास लगती है और वे लक्ष्मण से कहती हैं कि या तो मुझे पानी पिलाओ या मार डालो। लक्ष्मण पानी के लिए जाते हैं और सीता सो जाती हैं। वे अवसर पाकर पानी के दोने को वृक्ष में लटका कर लौट आते हैं। दोने के पानी की बूंद सीता के वक्षस्थल पर गिरती है और वे उठ पड़ती हैं। लक्ष्मण को अनुपस्थित देखकर कहती हैं कि यदि लक्ष्मण बतला कर जाते तो मैं उन्हें अमर होने का आशीर्वाद देती। पुत्री और माता के वार्तालाप द्वारा एक गीत में स्त्री के दुःख का वर्णन किया

१—प्राय: लोक-गीतों में तुलसी, सूर और कबीर की भी छाप लगी होती है। पर वास्तव में यह गीत इन कवियों के नहीं हैं।

गया है। उसको स्वप्न में भी सुख प्राप्त नहीं होता। वन की लकड़ी की भांति उसका शरीर घुन रहा है। पीपल का पत्ता जिस प्रकार कंपता है वैसे ही भय के कारण उसके शरीर मे कंपन होता है :—

कठिन राम जी की प्रीति लगै न मोई जानत नाईं।
काए कौ माया मोरी जलम दओ है काए कौ दओ है बिदेस
लगै न सोई जानत नाईं।
हंसन खिलन को जलम दओ है सुख को दओ है बिदेस
लगै न सोई जानत नाईं।
सुख तौ माया मोरी सपने कौ नाईं दुखते बूड़ो सरीर
लगै न सोई जानत नाईं।
जइसे बन की लकड़ी घुनत है तइसे घुनै सरीर
लगै न सोई जानत नाईं।
जइसे पिपर को पता डुलत है तइसे डुलै सरीर
लगै न सोई जानत नाईं।

यदि समग्र-रूप से चक्की के गीतों को देखा जावे तो यह निष्कर्ष निकलता है कि जीवन के लगभग सभी पहलुओं पर इनमें कुछ न कुछ प्रकाश अवश्य पड़ता है। इन गीतों में कथाएं भी होती हैं। कथानक तो वास्तव में नाम-मात्र का ही होता है, परन्तु उनमें जो भाव रहता है वह इस प्रकार होता है जैसे मिट्टी के गमले में फूल। चक्की के गीतों में दु:ख-वेदना का वर्णन होता है और वे करुणा की सृष्टि करते हैं। कोमलता, मधुरता तथा चिरस्थायी-प्रभविष्णुता उनके गुण हैं। उत्तेजना तो उनमें खोजने पर भी नहीं मिल सकती।

रोंपा तथा निराई के गीत—रोंपा तथा निराई के समय जो गीत गाये जाते हैं, उनमें तथा चक्की के गीतों में कोई स्पष्ट सीमा-रेखा नहीं खींची जाती, क्योंकि जिस प्रकार चक्की के गीत श्रमनिवारणार्थ

गाये जाते हैं उसी प्रकार 'रोंपा' तथा निराई के गीत भी। इन गीतों में भी मुगलों के अत्याचार, वियोगिनी का दु:ख और सास आदि के कष्ट देने का वर्णन मिलता है। चक्की तो बैठे-बैठे पीसी जाती है, परन्तु रोंपा और निरवाही करते समय चलना भी पड़ता है। योंतो प्राय: जो गीत 'रोंपा, के समय गाये जाते है वही निराई में भी, परन्तु स्वर-साधना में दोनों मे अन्तर होता है। सीता और लक्ष्मण का आम और महुआ के पेड़ के बीच मे मिलना, प्रश्नोत्तर होना, धनुर्भंग करना और उनके साथ विवाह करना इन सब का एक गीत मे उल्लेख हुआ है:—

कि एजी माझ मांझ रुखवा है ठाड़े इक महुआ इक आम।
कि एजी उइ तरे ठाड़े दुइ परदेसिया इक लछिमन इक राम।
कि एजी सिउ कौ पूजन चलों सितलदे सब सखियन के संग।
'कि एजी को हो तुम कोई बाट बटोहो की रे परदेसी लोग'।
'कि एजी ना हम है कोई बाट-बटोहो ना रे परदेसी लोग।
कि एजी हम तो हैं दोनों राम लच्छिमन राजा जसरथ जू के पूत'।
कि ऐजी नौ मन सुनवाँ जनिक मगाओ धनिस धरो बनवाय।
'कि एजी जो कोई धनिस कौ टोरि दिखावै सीता को ब्याहि लइ जाय'।
कि एजी धनिस को टोरन राम जी चले है लछिमन ठाड़े मुसक्यांय।
'कि एजी कोमल-गात उमिरि भइआ थोरी बहियां मुरिकि न जाय।'
'कि एजी बहिआ रे बहिआं जनि करौ लछिमन फिरि पाछे पछिताव'।
कि एजी धनिस टोरि नौ खण्ड करे हैं सीता का ब्याहे लए जायं।
कि एजी सीता कौ ब्याहि अवधपुर लइ गए घर-घर बजत बधाई।
कि एजी मांझ मांझ रुखवा हैं ठाड़े इक महुआ इक आम।

इस गीत पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि रामायण की कथा से इसमें पर्याप्त अन्तर है। जनक-वाटिका के स्थान पर आम और महुआ का वर्णन है। आम महुआ का वर्णन स्वाभाविक ही है क्योंकि ये लोक जीवन के सुपरिचित वृक्ष है। अत: पुष्प-वाटिका को कल्पना न करके

लोक-कवि आम और महुए की ही कल्पना करना उचित समझता है। शिव-धनुष के स्थान पर वर्णन मिलता है कि जनक ने नौ मन सोने का धनुष स्वयं बनवाया। रामायण आदि ग्रंथों में लक्ष्मण को राम का भक्त और सेवक का स्वरूप दिया है परन्तु लोक-कवि लक्ष्मण द्वारा राम से यह कहला कर कि उनका शरीर कोमल है और कहीं बांह न मुरक जावे, परिहास करवाता है।

खेल के गीत –

कनउजी लोक-गीतों में अनेक ऐसे गीत पाये जाते हैं जिनको खेलों के खेलते समय गाया जाता है। यह गीत गाये अवश्य जाते हैं परन्तु इनका उद्देश्य खेलों को मनोरंजक बनाना ही होता है। अतः इन गीतों को भी हम 'काम-काज के गीत' के अन्तर्गत ही रख सकते है। इन गीतों में उत्कृष्ट गीत-तत्त्व न होकर केवल वाणी-विलास होता है।

'टेसू के गीत'—टेसू' एक प्रकार का वयस्कों का खेल होता है। इसमें सब लोग मिलकर घर-घर 'टेसू' मांगने जाते हैं। इस भिक्षा के समय जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'टेसू के गीत' कहा जाता है। इसमें सब लोग मिल कर गाते हैं, अतः सामूहिक लय का ध्यान रखा जाता है। जब खेल खेलते हुए किसी द्वार पर जाते हैं तो इस प्रकार गीत आरम्भ करते हैं :—

टेसू तौ आएआउन दीजौ खेलैं पमर दुआर।
बैठक दीजौ री ढाल की तरवारि न आदर लेयं।।

इन गीतों में विलक्षणता प्रमुख विशेषता है। इस विलक्षणता के साथ एक क्षीण तथा लघु कथावस्तु भी इनमें मिलती है। एक गीत में कथा है—कोई कहीं गुलैंदे खाने गया उसने कुछ तो खाये और कुछ अपनी झोली में बांध लिए। रक्षकों ने उसे पकड़ लिया तब उसने अपनी सहायता के लिए एक अहीर को पुकारा। उस अहीर की घोड़ी ने रक्षक को पछाड़ दिया और तब वह रक्षक दिल्ली फरियाद के लिए गया।

पर दिल्ली तो बड़ी दूर है अतः वह चूल्हे की ओट में छुप गया। इन गीतों में एक पद में एक बात का वर्णन होता है। और दूसरे में दूसरी बात का। इस प्रकार असम्बद्ध को सम्बद्ध करके इन गीतों की योजना की जाती है। टेसू' गाने वाले जब भिक्षा पा जाते हैं तो अन्त मे वह कहते हैं.—

बड़ो दुआरो बड़ी अटरिया बड़ो जानि के टेसू आए।
मेड़न-मेंड़न रौंसा फूलै बन फूलै कचनार।
मदा बखरिया अइमी फूलै जीमैं हाँथी झुकै दुआर।

'झुंझिया के गीत'—जिस समय बालक और युवा टेसू के गीत गाते है उसी समय बालिकाएं 'झुंझिया' खेल के साथ 'झुंझिया' के गीत गाती हैं। 'झुंझिया' के गीतों मे 'टेसू' गीतो के समान विलक्षणता तो होती ही है परन्तु इनकी शैली मे एक ओर विशेष बात यह है कि ये गीत संवादात्मक होते है। एक गीत मे उल्लेख मिलता है कि एक तोते ने एक चंचल लड़की के डुपट्टे को पकड़ लिया। वह उससे मनचाहा मागने और छोड़ देने को कहता है। तोता 'ताल-कसिरुआ' तथा 'गूलरि को फूल' मागता है। इस पर लड़की उत्तर देती है कि तालाब का कसिरुआ तो सड़ गया है और 'गुलरी का फूल' आधीरात फूलता है :—

उनके ससुर की लगर बिटेना सुअना पकरो डुपट्टा खीचि।
छोंड़ौ-छोंड़ौ हमै लगर बिटेना जो मांगौ सो देयं।
मांगैं तौ मागैं ताल कसिरुआ अउर गुलरि को फूल।
ताल कसिरुआ सरि गओ सुअना गुलर फुलै अधिरात।

इन गीतों मे माता और पुत्री के संवाद द्वारा अनेक विषयों को प्रस्तुत किया जाता है। कभी पुत्री पूंछती है माता! भाई के विवाह मे क्या-क्या मिला ? भाभी कैसी है और उसके गुण और अवगुण क्या हैं ? माता उत्तर देती है . पर उत्तर में बड़ी अद्भुत बातें होती हैं। इस प्रकार 'टेसू के गीतों' से भिन्न 'झुंझिया' के गीतों की एक

विशेषता यह भी है कि इनमें हृदय का रस भी झांकता है क्योंकि यह गीत किसी न किसी सम्बन्धी का आश्रय लिये रहते हैं और साथ ही साथ जिज्ञासा भी इनमें होती है। माता तथा सास आदि स्त्री के साथ जो व्यवहार करती हैं, उसका भी वर्णन इनमें पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। टेसू और झाँझी के गीत कन्नौजी-क्षेत्र मे आश्विन मास मे गाए जाते हैं और इनकी समाप्ति शरत् पूर्णिमा को होती है।

'फुलेरा'—बालिकाओं का 'फुलेरा खेलना' भी एक खेल होता है। यह खेल फाल्गुन मास के शुक्ल-पक्ष में प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक खेला जाता है। चौक पूरी जाती है और वही कई बालिकाएँ मिलकर गीत गाती है। इन गीतों के साथ ढोलक आदि नही बजाई जाती। खेलों के अन्तर्गत आने वाले सभी गीतों से यह गीत कही अधिक गम्भीर होते है। इनमें बालिकाओं के प्रति माता-पिता का लाड़-प्यार, ताड़ना पाने पर उसका उत्तर तथा 'मायके' के मोह का बड़ा ही हृदय-ग्राही चित्रण होता है। एक गीत में उल्लेख है कि बालिका अपने पिता के यहा ग्राम-सखियों के साथ फुलेरा खेलने जाती है। संध्या से वह खेलती है और खेलते-खेलते सबेरा हो जाता है। पिता इस पर क्रुद्ध होते हैं और दण्ड देने के लिये छड़ी उठाते है। पुत्री बड़ा ही हृदय-द्रावक उत्तर देती है, हे पिता ! मुझे दण्ड देने के लिये आप छड़ी क्यों उठा रहे है और माता भला बुरा क्यों कहती है ? मैं तो आप लोगों की आश्रित चिड़िया हूँ। चुनते-बिनते किसी दिन उड़ जाऊँगी। उड़ जाने का आशय विवाह होने पर ससुराल चले जाने का है। गीत इस प्रकार है :—

ऊंचौ चौतरा चोखुटो जहाँ बेटी खेलन जांय। हो राधा भामिन बनवारी की।

खेलत खेलत भोर भओ है बाबुल के दरबार। हो राधा भामिन बनवारी की।

बाबुल काढ़ी सांटुली हो माई ने बोले हैं बोल। हो राधा भामिन बनवारी की।
आज बसेरो नीयरे कालि बसेरो है दूरि। हो राधा भामिन बनवारी की।
हम तौ तुम्हारी चीरई चुनत-बिनत उड़ि जाय। हो राधा भामिन बनवारी की।

इन गीतों में भाई और देवर आदि के विवाह में चन्द्रमा, साँप, बिच्छू, नदी आदि से अनुकूल होने की कामना भी की जाती है तथा साथ ही उनमें भाई तथा देवर से यह भी पूछा जाता है कि उनकी पत्नियां कैसी हैं ? उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार करती है ? इन गीतों में संवाद-शैली का आश्रय लिया गया है :—

बीरना तरी कइसी दुलैया।
बहिनी री जइसे सोन-चिरइया।

इन संवादात्मक गीतों में कहीं—कहीं हास्य का भी पुट मिल जाता है। जैसे :—

दिउरा रे तुम्हरी कइसी दुलइया
भउजी री जइसे कोने मुसरिया
दिउरा रे तुम्हें पीसत कइसे
भउजी री जइसे घोड़ा को दाना
दिउरा रे तुम्हें परसत कइसे
भउजी री जइसे भैंस कौ सानी

इन गीतों में इस बात का भी प्रसंग आता है कि बालिका को, जब वह ससुराल जावेगी, खेलने को नहीं मिलेगा —

डग डग डोना डाडारी डूडौरी दें।
खेलि लेव री खेल लेव री माई बाबुल के राज।
फिरि ढुरि जइऔ सासुरे डूडौरी दें।

फिरि ढुरि जइओ सासुरे सास खिलन न देय डूडौरी दें।
राति पिसावै पीसना दिन कौ गोबर की हेल डूडौरी दें।

इसके बाद यह गीत आगे बढ़ता है और इसमें हास्यपूर्ण और अद्भुत घटनाएँ घटती हैं :—

गुबर की हिलिया ढुनगि परी डूडौरी दें।
दउरी छँटा की मार, छँटा बिचारे ना लगे डूडौरी दें।

और फिर

नौ मन गिहुआँ पिसाए डूडौरी दे।
ताको बनाओ इक लोल डूडौरी दें।

इस "लोल" को सेंकने के लिए ससुर का "बठेआ" सुलग जाता है और तब भी वह सिकता ही नहीं। अन्त में यह लोल कौर-कौर बंट जाता हे और बेचारी फूहड़ खिसिया कर रह जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'फुलेरा' गीतों में हास्य, अद्भुत और करुण तीनों रसों के गीत मिलते हैं।

'लोरी'—लोरी' गीत बच्चों को खिलाते तथा सुलाते समय गाया जाता है। माताएँ बच्चों को बहलाने के लिए इस गीत का सहारा लेती हैं। लोरियों के भी दो प्रकार होते हैं-एक तो वे जिन्हें माता, बहन आदि गाती हैं और दूसरी वे जिन्हें भाई, पिता, पितामह आदि गाकर बच्चे को प्रसन्न करते हैं। कुछ लोरिओं में बच्चों की वीर तथा साहसी बनने का भी उपदेश मिलता है। परिशिष्ट में कुछ लोरियाँ दी गई हैं।

जाति-गीत —

लोक-गीतों को सभी जाति के लोग गाते हैं, परन्तु सवर्ण-जातियों को छोड़कर अन्य जातियों के कुछ निजी विशेषता रखनेवाले गीत भी होते हैं। इन गीतों तथा अन्य गीतों में स्पष्ट रूप से तो कोई भेद नहीं होता है, परन्तु अपनी-अपनी जाति के अनुसार वे जातियाँ भिन्न-भिन्न

रागों से गीत गाती है। रागों के आधार पर ही हम समझ पाते है कि कौन गीत किस जाति का है। इन जातीय गीतों को समझने के लिए एक और सहायक बात है यह कि इनमें से कुछ ऐसे भी होते हैं जिनमें उन जातियों के सामाजिक जीवन का वर्णन मिलता है। नीचे एक-एक जाति को लेकर गीतों का संक्षिप्त-परिचय दिया जाता है।

अहीरों के गीत—कन्नौज-प्रदेश में अहीर 'जखई' के उपासक होते है। अतः वे जखई के 'जस' गाते है। जसों मे जखई, 'जगता और 'मइकू' आदि के युद्ध की प्रशसा, उनकी उपासना, उनके गुणों आदि का वर्णन होता है। जखई तथा उनके साथी सभी प्रेत-योनि में हैं और वे अहीरों से पूजा लेते है। बेचारे अहीर भयग्रस्त होकर उनकी पूजा करते है। एक 'जस' मे बतलाया गया है कि 'जखई' लौंग का लोभी है। अतः उसी के देने मे वह प्रसन्न रहता है। इन गीतों मे लघु-कथाएं भी होती हैं। गीत मे उल्लेख आता है कि एक बार जगता ने लगर खॅगिया से एक यज्ञ के लिए दही मॅगाया। उसने दही के नाम पर एक छींट नही दी। उससे कहा गया कि उसके जानवर मार दिए जावेगे, परन्तु वह फिर भी नही डरी। तब जगता ने कलुआ, महम्दा, सुल्तान, मुल्तान तथा चलाना, पांच वीरो को खॅगिया की दाढ़ में पीड़ा उत्पन्न करने के लिए भेजा। दाढ़ मे पीड़ा होते ही खॅगिया बहंगियों मे दही लाकर देती है, पर जगता दही नही लेता और उसकी पीड़ा हर लेता है :—

वहिंगी दहिआ भराय चली जगता मे जाय लगर खॅगिया।
जगता नेक हरौ डाढ़ की पीर बंहिगिन दहिआ लेव उठाय॥
जा तौ ससुरी अब दहिआ छिटक ना लेयं।
नटिनी के वीरा हरौ डाढ़ की पीर।

जसों के अतिरिक्त अहीरों का एक बड़ा ही प्रसिद्ध गीत **'बिरहा'** भी है। इस 'बिरहे' को अहीर जानवर चराते हुए तथा विवाह के अवसरों पर गाया करते हैं। 'बिरहा' लोक-गीतों में सबसे छोटा छन्द है,

पर यह बिहारी के दोहों की भाँति देखने में तो छोटा प्रतीत होता है, पर घाव गम्भीर करता है। यहाँ पर दो बिरहे दिए जाते हैं।

गोरी के जुबना हुमसन लागे जइसे हिरनियाँ के सींग।
मूरिख जानै कुछु रोग उठन है पीसि लगावै नीम।

दूसरे बिरहे में मँहगाई की बड़ी ही तीक्ष्ण आलोचना की गई है। सत्य ही है कि भूख रहने पर न तो आदमी को गाना ही आता है और न कामवासना ही सताती है:—

महँगी के मारे बिरहा बिसरि गओ भूलि गई कजरी, कबीर।
देखि के गोरी को हुमसो जुबना, अब उठै न करेजवा मे पीर॥

चमारों के गीत—कन्नौजी-प्रदेश में चमारों के भी पर्याप्त गीत मिलते हैं। ये लोग नाचकर गीत गाते हैं। नाचनेवाला स्त्रीवेश धारण करता है। ये लोग गाते समय चिकाड़ा, ढोलक और बेला, इन तीन बाजों को बजाते हैं और अपने गीतों मे सब की खरी आलोचना भी करते हैं। चमारों का एक मनोरंजक गीत इस प्रकार है :—

मारे डारैं कटीली तोरी अँखियाँ।
ब्रह्मा बस कीनो बिस्नु बस कीनो।
रिसि मुनि बस कीनो बजाय के बंसुरिया।
काम बस कीनो, किरोध बस कीनो।
हरि बस कीनो लगाय के छतियाँ।

चमारों के गीतों में ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें मिलती हैं। कन्नौजी-प्रदेश के अधिकांश चमार कबीरपंथी हैं अतः उनके लोक-गीतों में भी ज्ञान ने अपना सिक्का जमा रखा है।

कहाँरों के गीत—कहाँरों के गीत भी मुख्यतया शृंगार-रस के होते हैं। ये लोग वर-वधू की पालकी के ढोने का काम करते हैं, अतः साथ

ही साथ वर-वधू को गुदगुदाते भी जाते हैं। विवाह के लिए हर्षित वर को तथा पति के घर जानेवाली उत्सुक वधू को शृंगार कितना प्रिय होता है, इसे अनुभवी ही जानते हैं। इनके गीतों को 'कहँरवा' कहते हैं। ये लोग वैवाहिक उत्सवों पर नाचते भी हैं। नृत्य-गान के समय हुड़क (एक बाजा) बजाते हैं। इनके गीतों में कहीं उपदेश भी मिलता है, देखिए:—

गोरी धना सुअना पालो जी, गोरी धना ने।
बड़ो जतन करि पिंजरा बनाओ।
तामैं घने-घने तार लगाए जी।
तुचाके कागत पिजरा मढ़ाय दओ।
मेरो पंछी न कहूँ उड़ि जाय जी।
रातदिन उइकी टहल करति हैं।
मेरो पंछी न दुखियाय जी।
मेवा खवावै दिन रात पढ़ावै ताय।
दिओ वाई सो चित लगाय जी।
एक दिना सो गाफिल हुई गई।
तोता निकरि गओ करै हाय जी।
खिरकी न खुली कोई तार न टूटो।
जानै निकरि गओ कउन राह जी।
बाग बगीचा बन खण्ड सब ढूंढ़े
कहूं पंछी न मिलै राम जी।
प्यारे सुअना को कहूं पता न पाओ
गोरी बइठि रही झकमारि जी।
याही विधि तेरे तन की दशा होय[1]

१. यह गीत पं० रामनरेश त्रिपाठी के संग्रह में दिये गये एक गीत से बिलकुल मिलता है। यह गीत तिरवा (फरुखाबाद) से संगृहीत किया गया है और त्रिपाठीजी ने इसे बदायूं से प्राप्त किया है। पर दोनों हैं लगभग एक से ही।

लेउ जीवन हरि गुन गाय जी ।

इस गीत से यह आशय प्रकट किया गया है कि जिस प्रकार पिंजड़े से सुआ निकल जाता है उसी प्रकार एक दिन शरीर से प्राण भी निकल जावेगा और फिर पछताना पड़ेगा । अतः प्राणी को भगवान् की ओर ध्यान लगाना चाहिए ।

धोबियों के गीत—अहीरों, चमारों और कहाँरों की भाँति ही इनके भी कुछ जातीय-गीत होते हैं । योंतो ये सारी जातियाँ नाचती हैं' परन्तु जब धोबी 'दारू' पीकर नाचता तथा गाता है तो दर्शक के मन को मुग्ध कर लेता है । इनके गीत 'धुबियाराग' में गाये जाते हैं । इन गीतों का अन्य गीतों से यही भेद है कि इनमें धोबी के कौटुम्बिक-जीवन का ही वर्णन मिलता है । कही धोबी धोबिन से परिहास करता है, कभी अपने काम की कठिनता बतलाता है ।

धोबी कौ चहिए चारि मेहरियाँ छियो राम छियो ।

एक पीसे औ कूटै औ इक रोटी बनावै छियो राम छियो ।

एक लिआवै रोटी औ पानी एक तौ कपड़ा फींचै छियो राम छियो ।

धोबी यह गीत कपड़ा धोते समय भी गाता है । अतः बीच में विश्राम के लिये वह 'छियो राम' भी कहता जाता है । परिश्रम के समय जोर से सांस निकाल देने पर कुछ विश्राम सा मिलता है ।

अहीरों के 'बिरहों' की भाँति धोबियों के भी 'बिरहे' होते हैं । इनमें 'विरह' का बड़ा ही सुन्दर वर्णन मिलता है । अहीरों के 'बिरहों' से इनमें केवल भेद इतना ही है कि वे धोबी के कौटुम्बिक-जीवन का ही चित्रण करते हैं । उनके बिरहों की सृष्टि कपड़ा धोनेवाले पाट पर कपड़ा धोते हुए ही हुई है :—

ना बिरहन की खेती पाती ना बिरहन को बंज।
जाई पेट से बिरहा उपजै गाऊँ दिना औ रात।
छियो राम छियो।

'प्रबन्ध-गीत'—

'प्रबन्ध-गीत' किसी न किसी कहानी को लेकर चलते है, मूलत: ये कहानियाँ ही है, पर गेय हैं, अत: गीत की कोटि में इन्हें रखा जाता है। कन्नौजी-क्षेत्र में अनेकानेक प्रबन्ध-गीत मिलते है। स्थानाभाव के कारण यहाँ सबका विवेचन तो सम्भव नही है, पर कुछ का संक्षेप में उल्लेख किया जाता है।

आल्हा प्रबन्ध-गीत—कन्नौजी-प्रदेश मे 'आल्हा' सबसे अधिक लोकप्रिय लोक-गीत है। दीर्घ आकार और वर्णन की विविधता तथा सुन्दरता के कारण इसे प्रबन्ध-काव्य कहा जा सकता है। आल्हा के मूललेखक तो जगनिक बतलाये जाते है, परन्तु जो आल्हा ग्रामों में गाया जाता है उसका सम्बन्ध जगनिक के आल्हा से स्थापित करना संगत प्रतीत नही होता। कारण यह है कि जितने आल्हा गानेवाले होते हैं, उनकी वर्णनशैली में भी उतनी ही विविधता होती है। वास्तव में यह लोक-प्रचलित आल्हा ग्रामीणों की कल्पना की ही अभिव्यक्ति है। इसका वर्तमान रूप जगनिक के आल्हा के आधार पर ही रचा गया है। यह प्रबन्ध वास्तव में वीर रसात्मक है। इसमें महोबे के चन्देल राजा परमाल की सेना के आल्हा और ऊदल सैनिकों की वीरता का वर्णन है। ये दोनों वीर पृथ्वीराज से भी लड़े थे। आल्हा का एक अध्याय लड़ाई कहलाता है और इस प्रकार इसमें ५२ लड़ाइयाँ हैं। इन लड़ाइयों का मूल कारण विवाह तथा कर उगाहना है। इस काव्य का कोई स्थिर स्वरूप नही है। कल्पना की ऊँची उड़ान सर्वत्र मिलती है।

कन्नौजी-प्रदेश में तुलसीकृत रामायण के पाठ का बहुत अधिक

प्रचार है, परन्तु आल्हा सरलता, वीरता और उत्साह आदि से भरपूर होने के कारण लोक-प्रियता में रामायण से भी आगे बढ़ गया है। इसमें युद्धों की ही प्रधानता है, अतः युद्धका एक उदाहरण देकर आल्हा का प्रसंग समाप्त किया जाता है :—

गुस्सा हुइके प्रिथीराज तब, तुरतै हुकुम दओ करवाय।
बत्ती दै देव इन तोपन मैं, इन पाजिन कौ देव भजाय।
झुके खलासी तब तोपन पै, तुरतै बत्ती दई लगाय।
तोपैं छूटी दोनों दल मैं, रन में होन लगे घमसान।
अरर अरर अर गोला छूटैं, कड़-कड़ करें अगिनियां बान।

'**ढोला प्रबन्ध-गीत**'—आल्हा के समान ढोला भी प्रबन्ध-काव्य है। इसके गानेवाले भी कुछ विशेषज्ञ ही होते हैं, सर्वसाधारण को यह याद नहीं रहता। चिकाड़ा, ढोलक और मजीरे को बजाकर ढोला गाया जाता है।

ढोला में नल के जन्म से विवाह तक का बड़ा ही विशद तथा विस्तृत वर्णन मिलता है। बीच-बीच में इसे मनोरंजक बनाने के लिए अप्सराओं, जादूगरनियों आदि के प्रसंग लाये गये है। यदि ढोला ढग से कराया जाय और गानेवाला रुचि से गाए तो एक महीने में भी कठिनाई मे समाप्त होगा।

नल के पिता राजा नरवर को शिकार खेलने जाते हैं, इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

राजा पिरथिम ने अपनो घोड़ा सजवाओ,
सब सिंगार करो घोड़ा को,
सोने को जड़ाऊ जीन धरवाओ,
गमकि भओ है असवार,
कइसे खेलन जात सिकार।

'धन्नइया प्रबन्ध-गीत' -आल्हा, ढोला आदि तो अन्तर्प्रान्तीय गीत है। परन्तु 'घन्नइया' गीत कनउजी का स्थानीयगीत है। लोक-गीतों पर बोलियों में जितने भी संग्रह प्रकाशित हुए है उनमें किसी में भी यह गीत नहीं मिलता। यह गीत बहुत बड़ा है परन्तु 'आल्हा' और 'ढोला' जैसे विशाल आकार का नही। लेखक ने पूरे गीत का संग्रह किया है और वह रजिस्टर के आकार के ४८ पृष्ठों मे आया है।

यह गीत मंगलाचरण से प्रारम्भ होता है। सक्षेप मैं कथा इस प्रकार है—'एक ओर गंगा और दूसरी ओर यमुना बहती है, बीच मे 'बकेसुर' नाम की राजधानी है। इसके राजा गजोधर हैं, उनकी रानी ने कन्या को जन्म दिया। 'धनकुन' ने आकर कन्या का नारा छीना तथा स्नान करवाया। पुरोहित ने आकर कन्या का नाम 'पद्मिनी' रखा। बाद मे कन्या ने वर खोजने के लिए माता से कहा। वर खोजने के लिए नाई-ब्राह्मण 'बसावसेली' के वासुकि राजा के यहा पहुंच गए। वहाँ उसके पुत्र 'नगमुनियाँ' को देखा। किसी प्रकार वे वहां से पीछा छुड़ा कर भागे। तत्पश्चात् वे 'निवानिवौरी' के राजा 'सुरजमल' के यहाँ पहुँचे। राजा सुरजमल ने अपने पुत्र 'खरगलाल' से विवाह-सम्बन्ध तय कर लिया। खरगलाल इसके विरोध में बहुत रोया-चिल्लाया, पर पिता ने एक भी न सुनी। बारात बकेसुर आई, परंतु भांवरे पड़ते समय 'नग-मुनियां' ने खरगलाल को डंस लिया। पद्मिनी ने 'धन्नइया' बनाकर उसमें पति के शव को रखकर गंगा द्वारा 'कुरूकमंछा' के लिए यात्रा प्रारम्भ कर दी। मार्ग में कई प्रकार के दुष्टों से सामना करती हुई वह बंगाल पहुंची और वहाँ जादू के प्रभाव से पति को जीवित कर लिया। परन्तु वहां अन्य जादूगरनियों ने खरगलाल को कभी कोल्हू का बैल, कभी कुत्ता और कभी बिल्ली बना दिया। 'पद्मिनी' ने युक्ति से सब को अपने वश में करके स्वामी की रक्षा की और 'बकेसुर' पुनः लौट आई। सब लोग हर्षित हुए और वे दोनों आनन्दपूर्वक रहने लगे।

इस गीत की वर्णनशैली बड़ी ही मनोरम है। विवाह के समय विविध आचारों का भी वर्णन हुआ है। खरगलाल टीका चढ़वाने के लिए तैयार नहीं होता है। ब्राह्मण और उसके विवाद को देखिये :—

ता मुख बोलैं पण्डित बराम्हन सुनि लेव खरगल मोरी बात।
अच्छी है साइत आजै खरगल टीका न लेव चढ़वाय।
ना मुख बोलै कुंअर खरगलाल सुनि लेव न ददुआ मोरी बात।
अवै तुम्हारो कुछ नहिं बिगरो टीका न देव लौटाय।

इस गीत में 'घन्नइया' द्वारा यात्रा की गई है। बंगाल पहुँचने के लिये वही साधन स्वरूप थी। इसी कारण इस गीन का नाम 'घन्नइया' है। यह सूप बजाकर गाया जाता है।

ऊभदेव का गौना—यह भी एक स्थानीय प्रबन्ध-गीत है। इसमें ऊभदेव अहीर का गौना किस प्रकार हुआ, उसमें किस किस प्रकार की वाधाएँ पड़ीं ? कैसे-कैसे भयंकर युद्ध हुए ? आदि का वर्णन है। यह गीत भी लगभग २७ पृष्ठों का है। लेखक ने इसका भी संग्रह किया है। परिशिष्ट में इसका थोड़ा सा अंश दिया जावेगा।

इन उपर्युक्त गीतों के अतिरिक्त अन्य प्रबन्ध-गीत भी कन्नौजी प्रदेश मे गाए जाते हैं। स्थानाभाव के कारण सबका यहां उल्लेख नहीं किया जा सकता। लोक-गीतों के इस विवेचन के साथ कनउजी लोक-गीतों के प्रकार और उनके वर्ण्य-विषय का प्रसंग यहां समाप्त होता हैं।

चतुर्थ अध्याय

'कनउजी लोक-गीतों में सांस्कृतिक-चित्रण'

'कनउजी लोक-गीतों में सांस्कृतिक-चित्रण'

लोक-गीतों में 'संस्कृति-चित्रण' का विवेचन करने के पूर्व हमें यह जान लेना चाहिए कि 'संस्कृति' किसे कहते हैं। 'संस्कृति' शब्द संस्कृत भाषा की 'कृ' धातु में 'सम्' उपसर्ग तथा 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ 'अच्छी स्थिति,' 'सुधरी हुई स्थिति' आदि का बोधक है। परन्तु इसका भावार्थ अधिक विशद तथा विस्तृत है। 'संस्कृति' से मानव-समाज की उस स्थिति का बोध होता है जिससे उसे सुधारा हुआ, ऊँचा, सभ्य आदि विशेषणों से विभूषित किया जाता है। 'संस्कृति' शब्द को अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' का पर्याय समझना ठीक नहीं है। वस्तुतः 'कल्चर' के लिए हमारे यहाँ 'कृष्टिः' शब्द मिलता है। 'कल्चर' के अन्तर्गत मनुष्य के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, मनोरंजन आदि भौतिक-जीवन का ही समावेश किया जा सकता है, परन्तु संस्कृति में भौतिक-जीवन तथा आध्यात्मिक-चिन्तन दोनों ही समाविष्ट हो जाते हैं। भारतीय-धारणा के अनुसार मनुष्य तभी पूर्ण रूप से 'संस्कृत' समझा जाता है जब कि वह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चारों का लाभ करे। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य अपने विकास के लिए जो कुछ भी करता है, सभी संस्कृति में अन्तर्हित हो जाता है। संस्कृति के इसी व्यापक-अर्थ को लेकर इस अध्याय में कनउजी लोक-गीतों में सांस्कृतिक-जीवन की व्याख्या की जाएगी।

संस्कार

जीवन को संस्कृत बनाने के लिए जो विधान किए जाते हैं उन्हें

संस्कार की संज्ञा दी गई है। हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में १६ संस्कारों का उल्लेख किया गया है। वे इस प्रकार है:—

१—गर्भाधान	९—कर्णवेध
२—पुंसवन	१०—उपनयन
३—सीमन्तोन्नयन	११—वेदारम्भ
४—जातकर्म	१२—समावर्त्तन
५—नामकरण	१३—विवाह
६—निष्क्रमण	१४—वानप्रस्थ
७—अन्नप्राशन	१५—संन्यास
८—चूड़ाकर्म	१६—अन्त्येष्टि

वैदिक-साहित्य तथा स्मृति-ग्रंथों में प्रत्येक संस्कार के लिए मंत्र पाये जाते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में प्रत्येक संस्कार विधिवत् मनाया जाता था। परन्तु आजकल हिन्दू-समाज में कई संस्कार, जैसे गर्भाधान, पुंसवन, समावर्त्तन, वानप्रस्थ आदि सामान्यतया लुप्तप्राय हो गए हैं। जो शिक्षित समाज है उसमें तो अभी कुछ लीक पीटी भी जाती है, परन्तु ग्रामीण जनता में तो अब जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, चूड़ाकर्म, उपनयन, विवाह तथा अन्त्येष्टि संस्कार ही मुख्य रूप से मनाए जाते हैं और इन संस्कारों से ही सम्बन्धित गीत भी मिलते है। कनउजी लोक-गीतों मे जिन संस्कारों का उल्लेख आता है, उनका आगे क्रमशः वर्णन किया जावेगा।

जातकर्म-संस्कार—

पाश्चात्य-संस्कृति में विवाह का उद्देश्य यौन-सुख का भोग करना है तथा वहाँ इसे एक सामाजिक बन्धन भी कहा गया है, पर भारतीय-संस्कृति के अनुसार विवाह का लक्ष्य सन्तानोत्पत्ति है और इसे धार्मिक-बन्धन समझा जाता है। यहाँ की ललनाओं की चरम-लालसा की परि-णति पुत्र-जन्म है। अतः पुत्र जन्म होते ही 'सोहर' नाम के गीत घर

तथा पड़ोस की स्त्रियों के कल-कण्ठों द्वारा ऐसे उच्चरित होने लगते हैं कि प्रसव-पीड़िता अपनी सारी पीड़ा को भूल जाती है। कनउजी-क्षेत्र में जन्म के समय विविध आचारों का विधान होता है। गर्भाधान मे लेकर जन्मदिन के नवें दिन बाद तक की अवधि जन्म-संस्कार मे ममाहित होती हैं। यहाँ के लोक-गीतों में गर्मिणी की इच्छा का भी वर्णन आता है:—

सकल बस्तु मेरे घर मैं एकौ नहिं भाबै है रे।
नौरंगिया की साध नौरंगिया लै आबौ है रे ।।

गर्भिणी की, ज्यों-ज्यों सन्तानोत्पत्ति का समय निकट आता जाता है, क्या दशा होती हैं, उसकी अंगयष्टि कैसी हो जाती है? आदि का भी वर्णन इन गीतों में उबलब्ध होता है। एक-एक महीने को लेकर नीचे के गीत में गर्भिणी की दशा का संकेत किया गया है:

संइयां लगाई नौरंगिया रसैं रस डोलैं।
जब नौरंगिया मैं दुइ दुइ पतौआ काए धना उबकानी
रसैं रस डोलैं।
जब नौरंगिया में नौ नौ पतौआ काए धना पियरानी
रसैं रस डोलैं।

इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरणों से सिद्ध हो जाता है कि गर्भाधान और सीमंतोन्नयन, जन्मसंस्कार के अन्तर्गत आते हैं, क्योंकि वे स्वतंत्र रूप से मनाए नहीं जाते, केवल गीतों मैं ही उनका उल्लेख है और ये गीत भी जन्म पर ही गाए जाते हैं। पुत्र जन्म होते ही ढोलक-मजीरे के माथ सोहर गाए जाते हैं। इन गीतों में यह तो स्पष्ट ही है कि यह गायन, कर्म तथा आनन्द का प्रतीक है, इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि यह उस प्रथा का प्रतीक हो जिसमें प्राचीन काल में इस अवसर पर गायन-वादन किया जाता था। महर्षि वाल्मीकि ने भी राम के जन्मोत्सव

पर गन्धर्व-पत्नियों तथा अप्सराओं के गाने-नाचने का उल्लेख किया है । [१]

बालक के उत्पन्न होते ही घर का कोई पुरुष 'धनकुनि' (धानुक की पत्नी) जो 'धाय' का काम करती है, बुला लाता है । धाय आकर छुरी अथवा हंसिए से नाल काटती है । इस क्रिया को 'नारा छीनना' कहते है । गीतों मे 'सोने की छुरिअन नारा छिनाओ' तथा 'आबौ न धनकुन नारा न छीनौ' का उल्लेख मिलता है । जिस छुरी से धाय नाल काटती है वह उसी को दे दी जाती है । 'सौंरि' (सूतिका-गृह) के द्वार पर 'वर्सिआ' (मिट्टी की एक प्रकार की अंगीठी) में नामकरण-संस्कार के दिन तक निरन्तर आग जलती है जिससे प्रेतादि घर में न घुस सकें । वायुमण्डल को शुद्ध करने के लिए इसमें गन्धक डाला जाता है । गीतों मे कही-कहीं सोने की 'वर्सिआ' और चन्दन की लकड़ी जलाने का उल्लेख मिलता है । जच्चा को पीने के लिए कई औषधियाँ डालकर उबला पानी दिया जाता है । यह पानी गोबर से चित्रित किए गए एक मिट्टी के घड़े में उबाला जाता है । यह समस्त-क्रिया 'चरुआ धरिबो' कहलाती है, जिसे सास द्वारा सम्पादित कराया जाता है ।

आबौ न सासू चरुआ तौ धरि देव ।
चरुआ धराई तुम्हैं तिलरी गढ़ाय दियैं ।

इसी समय गोबर से कौरों पर ननद द्वारा 'सतिया' भी रखवाई जाती है । जच्चा को सर्दी से बचाने के लिए तथा शक्तिप्रदान करने के लिए एक पेय 'हरीरा' बनाया जाता है जिसमें तेल, घी तथा सोंठ आदि गर्म चीजे पड़ती है । इसी समय बच्चे को स्नान भी कराया जाता है । कहीं-कही यह स्नान तीसरे-चौथे दिन होता है, परन्तु कनउजी-गीतों में 'नारा छीनना' तथा 'हनान' साथ-साथ ही होता है :—

१—जगु: कलत्र गन्धर्वा: ननृतुश्चाप्सरोगणा: ।
देवा दुन्दुभयो नेदु: पुष्पवृष्टिश्च खात्पतति ॥ वा०रा०बाल० १८।१६

ऐसी दाई हरजाई लाल को नारा न छीनैं ।
नारा छिनाई अजुध्या माँगै मथुरा माँगै हनवाई......।

इन कार्यों के सम्पन्न हो जाने पर छठे दिन 'छठी' की जाती है इसमे गृह-शुचि तथा जच्चा एवं बच्चा को स्नान कराया जाता है इसी दिन संध्या को 'तीर मारने' का संस्कार होता है। बच्चे के साथ माता चौक पर बैठती है और देवर तीर मारता है। यह तीर सींक का बना होता है। चरुवा धराई, सतिया धराई, हनवाई, तीरमराई आदि समस्त कार्य नेग द्वारा होते हैं। एक गीत में एक स्त्री नेग नहीं देना चाहती है वह कहती है :—

हम तो अकेली सइयां सब न लुटाय दीजौ ।
सासू जी आमैं सइयाँ दुआरे ते लौटाय दीजौ ।
सासू को नेग मोरी अम्मा पै कराय लीजौ ।
नानदी जो आमैं संइयाँ उनहूँ कौ लउटाय दीजौ ।
ननदी को नेग मोरी बहिनी पै कराय लीजौ ।
दिउरा जो आमैं संइयाँ उनहूँ कौ लउटाय दीजौ ।
दिउरा को नेग मोरे भइया पै कराय लीजौ ।

छठी के दिन ननद भाभी की आँखें 'आँजती' है और छठी की पूजा भी होती है —

'चलौ छठी पूजिए जाई ।
लइके भतीजे कौ बइठी सहुदरा आव कछु देव भउजाई ।
सौ लाख गउएं सवाव लाख भैंसी तब हम करैं अँजाई ।।

नामकरण अथवा दष्ठौन संस्कार—

यह संस्कार जन्म के दसवें दिन बाद होता है। इस दिन पुनः घर लीपा-पोता जाता है तथा सन्तान को स्नान कराया जाता है। घर के लिपवाने के बाद आँगन में चौक पूरी जाती है और जच्चा तथा बच्चा बाहर आते हैं। इसका वर्णन एक गीत में हुआ है :—

अनदा बधाये री आज मोरे ।
जब गउआ को गुबर मंगाओ अंगन लिपाओ री माई....
जब मुतियन चौकं पुराई कलसा धराओ री माई....
जब सोनेन कलस धराओ दिअना जराओ री माई ।
जब मानिक दिअना जराओ पटुली धराई री माई ।
जब चन्दन पटुलि डराई जसुदा कौ बुलाव री माई ।
जब जसुदा चौकं आईं कनियां हीरालाल हैं माई ।
जब कनिआँ हीरालाल लाई सूरज अलोप है माई ।

जन्म होते ही जच्चा के मायके से पुत्र जन्म का समाचार भेज दि जाता है, जिसे 'रुचना' कहते हैं :—

सब सखियाँ मिलि पूछन लागी केहि के भये नंदलाल
रुचना लै आए हौ ?

लोकाचार के अनुसार भाई-बहन के यहाँ आता है और कुछ भें के साथ बधाई देता है। एक गीत में वर्णन मिलता है कि जब भा कुछ नहीं ले गया तो उसे फटकार मिलती है :—

बइठौ बइठौ बिरन घर अपने बधइया राजा बीरन ।
तुम जोड़ू के असल गुलाम बधइया राजा बीरन ।

यज्ञ करने के बाद पुरोहित नामकरण कर देता है ।

अन्नप्राशन-संस्कार—

आश्वलायन गृह्य-सूत्र में कहा गया है कि छठे मास जिसको तेजस् बालक करना हो वह घृतयुक्त भात अथवा दधि, मधु और घृत ती मिलाकर अन्नप्रासन करावे। यह संस्कार बहुत धूमधाम से न मनाया जाता है पर इस प्रथा का बराबर निर्वाह होता है। छठे मा माता-पिता बालक को पास की किसी देवी के मन्दिर में ले जाकर अ प्राशन कराते हैं। इस संस्कार को 'मुँह बौर' कहा जाता है। इस उत्स का भी गीतों में उल्लेख मिलता है :—

कालि मोरे लीपने पोतने औ मुंहबौर री आली ।
मासु मोरी निउतौ न अरजा परजा औ नाते गीत री आली ।

चूड़ाकर्म संस्कार—

चूड़ाकर्म बालक के जन्म के तीसरे वर्ष[1] या एक वर्ष[2] में करने का विधान है। पर व्यवहार रूप में पुरोहित से मुहूर्त पूँछा जाता है। मुहूर्त के अनुसार मुण्डन-संस्कार घर मे हवन आदि करने के पश्चात् हो जाता है। कुछ लोग मुण्डन कराने के लिए पहले ही मनौती करते हैं और उसी के अनुसार माने हुए स्थान पर मुण्डन होता है। मुण्डन के समय बुआ तथा बहन आदि का होना आवश्यक समझा जाता है। लड़के के मामा का भी होना आवश्यक है, जो अपनी बहन के लिए 'पियरी' लावे। पियरी लाने का उल्लेख लोक-गीतों में बहुत मिलता है और इसके पहनने की लालसा बहन को बहुत अधिक होती है। मुण्डन करनेवाले नाई और बालों को इकट्ठा करनेवाली बहन को नेग मिलता है। नीचे के गीत में इसका उल्लेख है—

झड़ुले हैं आम अमिलिया अरे अउर जम्हिरिया अउर जउंन के खेत
झलरिया मोरी णाउनि रे।
अथइयाँ बइठे आजा उनके ठाढ़े मुन्ना राम,
आजा आँगे लुटनी पसारे,
मुड़ावौ आजा झालरि रे।
दाई उनकी जांग बैठारे झलरि मुड़ामैं
आजा उनको खरचैं दाम झलरिया मोरी पावनी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुण्डन-संस्कार भी बड़ी धूम-धाम मे किया जाता है।

---

१. 'तृतीये वर्षे चौलम्' आश्वालयन गृह्य सूत्र १।१७।१
२. 'सांवत्सरिकस्य चूड़ाकरणम्' पारस्कर गृह्य सूत्र २।१।१

उपनयन-संस्कार

यज्ञोपवीत धारण करना आर्य-जाति की बहुत पुरानी प्रथा है। प्राचीन-काल में यज्ञोपवीत-संस्कार के होने पर ही ब्रह्मचारी आचार्य के पास विद्याध्ययन करने के लिए जाता था। इसी हेतु इस संस्कार को 'उपनयन' भी कहा जाता है—'उपनीयते गुरुसमीपं प्राप्यते अनेनेति उपनयनम्'। मनुष्य को द्विज कहलाने के लिए यज्ञोपवीत धारण करना अनिवार्य था, क्योंकि मनु की व्यवस्था के अनुसार यज्ञोपवीत धारण करने के पूर्व मनुष्य-मात्र शूद्र उत्पन्न होता है—

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्विजोच्यते।

ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत ८ वर्ष की अवस्था में, क्षत्रिय का ११ वर्ष की अवस्था में तथा वैश्य का १२ वर्ष की अवस्था मे होना चाहिए। ब्राह्मण का १६ वर्ष, क्षत्रिय का २२ वर्ष और वैश्य का २४ वर्ष के पूर्व यज्ञोपवीत होना आवश्यक हो जाता है। यदि पूर्वोक्त-काल में इनका यज्ञोपवीत न हो तो वे पतित माने जावें[1]। यज्ञोपवीत का समय ब्राह्मणों के लिए वसन्त, क्षत्रियों के लिए ग्रीष्म तथा वैश्यों के लिए शरद अथवा सब ऋतुओं में भी हो सकता है[2]।

यह संस्कार अब भी बड़ी धूम-धाम से किया जाता है। सभी ब्राह्मणों के यहां यह संस्कार अनिवार्य रूप से होता है, परन्तु क्षत्रिय और वैश्यों में अब यह प्रायः स्वतंत्र रूप मे न होकर विवाह के साथ कर

---

१. अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्। गर्भाष्टमे वा। एकादशे क्षत्रियम्। द्वादशे वैश्यम्। आषोडशाद् ब्राह्मणस्योपनीतकालः। आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अत ऊर्ध्वं पतित सावित्रीकाभवन्ति। आश्वालयन गृ० सू० १।१९।१-६

२. वसन्ते ब्रह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम्। शरदि वैश्यम्। सर्वकालमेके। शत० ब्रा०

दिया जाता है। कन्नौज-क्षेत्र में शायद ही कोई ऐसा ब्राह्मण हो जिसके यहाँ ८ वर्ष की अवस्था में बालक का यज्ञोपवीत-संस्कार होजाय, अन्यथा १३-१४ वर्ष की अवस्था में ही अब यह सम्पादित होता है। इसका कारण है कि अब विद्यारम्भ यज्ञोपवीत के पहले ही कर दिया जाता है। यज्ञोपवीत-संस्कार में भाँवरों के अतिरिक्त सारी बातें, जो विवाह में होती हैं, की जाती है, अतः कन्नौजी लोग इस संस्कार को 'आधो-बिआव' (आधा विवाह) भी कहते है। भात माँगना, मण्डप गाड़ना, तेल चढ़ाना, पितरों को निमंत्रित करना, 'नहखुरो' (नखछेदन) होना आदि क्रियाएँ जो विवाह में की जाती है उन्हें यज्ञोपवीत के समय भी किया जाता है। अतः इन सबका उल्लेख विवाह वर्णन करते समय किया जायेगा। यहाँ पर यज्ञोपवीत मे जो इसके अतिरिक्त बातें होती है उन्हीं का वर्णन अपेक्षित है।

यज्ञोपवीत-संस्कार के लिए ब्राह्मण बुलाया जाता है और किस प्रकार उत्सव होता है, इसकी झलक नीचे के गीत में मिलती है:—

ऐ कनउजवा के ब्राह्मन हमरे हूँ आएहु।
पोथिया पतरवा लैके आएहु हमरे बरतबन्ध[1] ॥ १ ॥
कैसे का तोहरे आइब घरवा नहि चीन्हों नांव न जानों ॥ २ ॥
आँगन मोरे मांड़व ओसरवां मोरे कोहवर।
हरदी क घेवरल कवन लाल कवन लाल द्वारे आएहु ॥ ३ ॥
ऐ जवने बन सिकिया न डोलै भंवरा न गुजरइ
ऐ तबन बन पैठत कवन राम परास डंडा तोरैं ॥ ४ ॥
ऐ काहे की टंगिया[2] तुहुं कटबेउ केथुआ सिहुरवउ।

---

१. यज्ञोपवीत धारण करने के दिन से ब्रह्मचारी को कुछ व्रतों अर्थात् नियमों का पालन करना अनिवार्य हो जाता था, इसलिए इसे व्रतबन्ध भी कहते हैं।

क० कौ० त्रिपाठी-पृ० ३१७।

२. कुल्हाड़ी।

ऐ केकरे मण्डप ओंठघड़बेउ केकर बरत बन्ध ।। ५ ।।
ऐ सोनवा की टंगिया हम कटबइ रूपवा सिहुरबइ ।
राजा दसरथ मण्डप ओंठघइबउ राजा रामचन्द्र क बरत बन्ध[1] ।। ६ ।।

यज्ञोपवीत-संस्कार की पूर्व रात्रि को बालक को व्रत रखना पड़ना है। दूसरे दिन पुरोहित प्रातःकाल संस्कार प्रारम्भ करा देना है। यज्ञस्थान के पास १६ मिट्टी के 'पुरबों' में चने की दाल भर कर एक पर जनेऊ रख दिया जाता है। अनेक विधिविधानों के पश्चात् नाई बालक के बाल उतारता है। इसके पश्चात् बालक के शरीर में उबटन लगाकर स्नान कराया जाता है। सस्कार के समय वह लँगोटी, मूंज की मेखला तथा पलाश-दण्ड धारण करता है। इस समय तीन प्रकार के जनेउओं का विधान है:—

को मेरे मुजवन जइऐ मुजिया कटइऐ।
को लइ आवें मूंज जनओ मूज को चहिए।
(अमुक) लइआमैं आली मूंज जनेऊ मूंज को चाहिए।
पहिलो जनेऊ मूंज को दुसरो हिरनवाँ की खाल।
तिसरो जनेऊ सूत को रगो है हरदिया की गाँठ।

साथ ही साथ यह भी विधान है कि जनेऊ हाथ का कता हुआ ही होना चाहिए। इस आशय का वर्णन हमें लोक-गीतों में निरन्तर मिलता है:—

गंगा जमुन बिच आतर चन्दन एक रुखवा है हो।
तेहि तरे ठाड़े फूफा उनके कातैं जनेउवा हो ।।

यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् ब्रह्मचारी गुरुकुल में विद्याध्ययन करने के लिए भिक्षा माँगता है। भिक्षा माँगना उस प्राचीन-प्रथा का सूचक है जब प्रत्येक ब्रह्मचारी गुरुकुल में रह कर विद्याध्ययन करता

१. इस गीत की भाषा अवधी है, पर यह इसी रूप में कनउजी में भी मिलता है।

था और भिक्षा-वृत्ति द्वारा जीवन-निर्वाह करता था। भिक्षा देने की गृहस्थों की बड़ी साध होती थी:—

जो जनतीं की बरुआ हमारे घर अइऔ रे।
बरुअरो खेत जोतउती घनमुतिया बबौतीं रे।
मुतियन थार भरउती भीख उठि देतीं हो।

भिक्षा-याचना के पश्चात् ब्रह्मचारी वेद पढ़ने के लिए काशी जाने को प्रस्तुत होता है जिससे सिद्ध होता है कि प्राचीन काल के सभी विद्यार्थी गुरुकुल जाते थे। उस समय काशी विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र था। अत: लोक-गीतों मे उसी का उल्लेख मिलता है। ज्यों ही ब्रह्मचारी जाने को प्रस्तुत होता है त्योंही उसमे कहा जाता है कि घर में अमुक व्यक्ति विद्वान् है, उसी से वेद क्यों न पढ़ लो ?

प्राचीन काल में समावर्तन-संस्कार होता था जब बिद्यार्थी गुरुकुल की शिक्षा समाप्त करके लौटता था परन्तु अबतो पाँच पग चलने पर ही ब्रह्मचारी लौटा दिया जाता है और उसके वस्त्रादि उतार कर उसे नूतन वस्त्रों से सुसज्जित कराया जाता है। इस प्रकार यह समावर्तन का विकृत-रूप ही रह गया है। यदि सूक्ष्म-दृष्टि से निरीक्षण किया जावे तो हम देखते है कि इस उपनयन-संस्कार में अब बेदारम्भ, उपनयन और समावर्तन तीनों की एक साथ ही लीक पीट दी जाती है।

विवाह—

भारतीय-संस्कृति के अनुसार मनुष्य के तीन ऋणों में से एक पितृ-ऋण है। इस ऋण की पूर्ति सन्तानोत्पति से की जाती है और इसका साधन बिवाह है। अत: हिन्दू-जीवन में विवाह सबसे प्रधान और प्रसिद्ध सस्कार है। हमारे यहाँ बिवाह का प्रमुख उद्देश्य सन्तानोत्पति है। ब्रह्म ने भी सृष्टि की उत्पत्ति वासना के बशी-भूत होकर नहीं की थी वरन्-'एको ह बहुस्याम'-की भावना से।

मनुस्मृति मे शिक्षा समाप्ति पर बिवाह का विधान किया गया है अर्थात् ब्राह्मण चार वेदों को, क्षत्रिय दो वेदों को और वैश्य एक वेद

को समाप्त करके बिवाह करे।[1] इस विधान का पालन तो अब नहीं किया जाता है परन्तु लोक-गीतों में यह तो मिलता ही है कि घर में ब्रह्मचारी को आजा, पिता आदि अध्ययन करा देंगे। शास्त्रों के अनुसार बर की आयु कम से कम २४ और कन्या की १६ होनी चाहिए। यद्यपि अब यह रीति पूर्णतः नहीं मानी जाती है फिर भी गीतों में इसका यत्र-तत्र उल्लेख मिल ही जाता है। हमारे समाज में राम और सीता का विवाह आदर्श विवाह माना जाता है जिसके विषय में लोक में प्रसिद्ध है कि 'वर्ष अठारा की हतीं सीता और सत्ताइस के राम'। कन्या के लिए भी व्यवस्था है कि 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्,[1] अर्थात् कन्या ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ कर पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त कर, पूर्ण युवा होकर अपने सदृश युवा पुरुष को प्राप्त होवे। अनुमान किया जा सकता है कि जो बालविवाह होने लगे हैं उनका कारण सम्भवतः परवर्ती संस्कृत ग्रन्थ हैं जिनमें कहा गया है कि आठ वर्ष की कन्या गौरी, नौ वर्ष की रोहिणी और दस वर्ष में वह रजस्वला हो जाती है और दसवें वर्ष तक विवाह न करके रजस्वला कन्या को माता पिता और बड़े देख कर नरक में गिरते हैं।[2]

मनु ने आठ प्रकार के बिवाहों की व्यवस्था की है[3] १-ब्रास २-दैव ३-आर्ष ४-प्राजापत्य, ५-आसुर ६-गांधर्व, ७-राक्षस तथा ८-पैशाच।

१--वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अबिप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्। मनु० अ० ३।२।

१--अथर्व० (कां ११ प्र० २४ अ० ३ मं० १८)

२--अष्टवर्षा भवेत गौरी नववर्षा च रोहिणी दशवर्षा भवेत् कन्यातत ऊर्ध्वं रजस्वला माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च। त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्। 'पाराशरी और शीघ्र बोध'

३--ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः।
गांधर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः। मनु० (६।२१)

प्रधानतः जो बिवाह आजकल प्रचलित हैं उनको ब्राह्म और दैव का मिश्रण कहा जा सकता है। लोक-प्रचलित आल्हा गीतों में राक्षस-विवाह बहुत मिलते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोक-गीत ऐसे भी हैं जिनमें मुगल लोग हिन्दू कन्याओं को बलात् छीन ले जाते थे। यह भी राक्षस विवाह की कोटि में आते हैं :—

ठाढ़े एक घांई मुगल पचास सो यहि रन-वन मैं।
दुलहा एक छोर ठाढ़े अकेले तौ यहि रनबन मै।
रामा जूझे हैं मुगल पचास तौ यहि रन बन मैं।

कन्या-पक्ष से वर-पक्ष धन लेकर आज विवाह करता हुआ प्रायः पाया जाता है, लोक-गीत इस विषय में भी मूक नहीं हैं। विषम-विवाह ही वस्तुतः असुर-विवाह होते हैं और तभी धन के लोभ के कारण पिता अपनी कन्या का विवाह बूढ़े से कर देता है—"माया के लोभी बापने बूढ़े कौ व्याहि दीनो रे।' कन्या और वर की इच्छा से होने वाले गांधर्व-विवाह का उल्लेख भी गीतों में मिलता है :—

बाहर ते आए बीरना हाँथ लिये तरवारि।
मारौं रे पूत तपसिया बहिनि मोरी माँगै।
भीतर ते निकसीं लाड़िली मुतियन माँग भरे।
जिन मारौ पूत तपसिया जलम मेरो को खेइहै ॥

कन्या का पिता या भाई योग्य-बर की तलाश में स्थान-स्थान पर जाता है। जब उपयुक्त-वर मिल जाता है तो कन्या और वर के जन्म-पत्र मिलाए जाते हैं। यदि गृह-नक्षत्रादि ठीक हुए और दोनों पक्ष सम्बन्ध के लिए तैयार हुए तो विवाह का बीजारोपण वरिच्छा (वरीक्षा) से होता है। इसमें कुछ द्रव्य सामर्थ्यानुसार दिया जाता है। इसके पश्चात् 'पीरीचिट्ठी' या लगुन (लग्नपत्रिका) जाती है जिसमें बह लिखा होता है कि अमुक दिन फलदान तथा अमुक दिन विवाह का मुहूर्त है। कन्या के यहाँ से यह 'पीरीचिट्ठी' पहले पुत्री के

हाथ पर रखी जाती है और फिर वर के यहाँ भेजी जाती है। वास्तव मे हाथ पर चिट्ठी रखना उस प्रथा का अवशेषमात्र है जिसमें विवाह में लड़की की स्वीकृति ली जाती थी। जब फलदान भेजा जाता है तो कन्या-पक्ष की स्त्रियाँ गीत गाती हैं :—

फूल तौ फूलो गुलाबी सबै रग फूलो।
पांच भइआ की बहिनी अकेली रानी रुकमिनि हो ।।
कासी के पाँच विराम्हन लइ लगुन लिखामें।
पाँचौ भइआ इक मत करो रुकमिन विवाहौ हो ।।

फलदान के बाद घर की सारी विवाहिता स्त्रियाँ अपने भाइयों को भात न्योतने जाती हैं :—

फूल को बेला सवाव सेर सतुआ ऊपर गुड़ की बट्टी
भतइअन बहुत संकोच करी।
भात माँगन आई लला जू बीरन की बखरी ......

विवाह के कुछ दिन पूर्व मुहूर्त के अनुसार 'घना' पड़ता है जिसका आशय है कि उस दिन से विवाह के लिए जो सामग्री तैयार करनी होती है उसका प्रारम्भ होता है। उस दिन ग्राम की स्त्रियाँ इकट्ठी होती है और पीसना-कूटना आरम्भ होता है। इसके लिए ग्राम की स्त्रियों को कुछ उपहारस्वरूप दिया जाता है। बिवाह के दो दिन पूर्व 'मड़ओ' (मण्डप) गाड़ा जाता है। गारी नामक गीतों मे मण्डप गाड़ने वालों के लिए मजदूरी दिलाने का भी उल्लेख मिलता है :—

मड़ओ गड़ाउन आए (अमुक) लाल........
अउर का दीयै जौं रे चना तुम्हरी अम्मा का दीहैं........।
हरामजादे तुइका मजूरी दिवाय दीऐ।

भात माँगने से मण्डप गड़ने तक की क्रिया दोनों पक्षों के घर पर होती है। कन्या के पक्ष का मण्डप छाया जाता है क्योंकि उसके नीचे बैठ कर विवाह-संस्कार होता है। मण्डप वर्गाकार बाँस गाड़कर फूस से छाया जाता है। मण्डप छाने की क्रिया इस प्रकार होती है :—

कीके आँगन तौ मड़ओ काहे ते छाओ है रे।
अजुली के आँगन मड़ओ तौ पानन छाओ है रे ॥

विवाह के लिए यात्रा करने के पूर्व तेल चढ़ाने की क्रिया भी होती है। तेल वर के पैरों, घुटनों और मस्तक पर चढ़ाया जाता है। यह कार्य स्त्रियों द्वारा सम्पन्न होता है। तेल चढ़ने के समय 'तेलिन तेलिन तुम बडी गनी काए को तेल संचारो········आदि 'गीत गाया जाता है। तेल चढ़ने के बाद कपड़े पहनना, मौर पहॅनना, 'पुरइन पूरना' आदि क्रियाएँ होती है जिनका भी उल्लेख मिलता है :—

पुरइन का गीत—

पहिली पुरइन पूरिऔ हुरकिनियाँ के जाए।
दुसरी पुरइन पूरिऔ ·········· के जाए ॥

मौर पहॅनना—

की कुल को मालिया सो की कुल को बरना।
कहवाँ केरो मालिया कहवाँ केरी खजूर ·········

बारात चलते समय माता, मातामही आदि को इस बात का भय रहता है कि उनके प्रेम का जो एकाधिकार अपने पुत्र पर था, वह वधू के आने पर नही रहेगा। अतः माता कुएँ में गिरने के लिए सन्नद्ध होने का प्रदर्शन करती हैं। वर उसको मनाता है और गीत में स्त्रियां कहती हैं—

कुआं गिरन कौ माया बइठीं बन्ना गिरन ना देय।

'निकरौसो' के समय भी ऐसा ही दृश्य उपस्थित होता है:—

पटुली पायं धरे ठाढ़ो लड़ैतो आजी चलन ना देय।
तुम कौ आजी मोरी बहुआ लइबो अपने कौ जलम सहेज।

दोनों पक्षों में देवी-देवता तथा 'पितर' निमंत्रित किए जाते है, जिससे विवाह-कार्य सफलतापूर्वक पूरा हो जावे। बारात बड़ी सजधज के साथ बैलगाड़ी, रथ, घोड़े तथा गानेवालों से युक्त होकर चलती है

जब बारात इष्ट स्थान पर पहुँच जाती है तो कन्या-पक्ष के लोग स्वागत करते हैं और 'जनवासो' दे दिया जाता है। इसके पश्चात् 'दुआरो' होता है। कन्या का द्वार भली भाँति सजाया जाता है। द्वार पर दो कलश, दो लोटे और उनपर दो कटोरियां रखी जाती हैं। इसके अतिरिक्त थाली और उसमें कुछ रुपये और वस्त्राभूषण भी दिए जाते हैं। द्वार पर वर का स्वागत किया जाता है, अतः इसे 'द्वारचार' भी कहते है। इसी समय कन्या छिपकर वर पर जौ-अक्षत फेंकती हैं। तत्पश्चात् बाराती 'जनवासे' को लौट जाते हैं और वर का बड़ा भाई नाई द्वारा वधू के लिए वस्त्राभूषण लाता है। इसमें बिछुए, कंघा, शीशा तथा शृंगार की अन्य सामग्री भी होती हैं। इसके बाद भाँवरों के लिए वर पटली पर बैठाया जाता है। माता कन्या का हाथ और वर का अँगूठा हल्दी से रंग देती है। इसके पश्चात् माता, पिता, भाई, बड़ी बहनें तथा अन्य सम्बन्धी लोग कन्या के पैर पूजते हैं। इसको 'पैंपुजी' कहा जाता है। आटे की एक लोई बनाकर उसके भीतर एक रुपया रखा जाता है इसे 'हतलोई' कहते हैं। इसीसे पहले माता-पिता कन्या-दान देते हैं और बाद में अन्य लोग। कन्या-दान देने वालों के लिए प्रातःकाल से ही व्रत रखना आवश्यक समझा जाता है। कन्यादान के पश्चात् भाँवरें होती हैं। भाँवरों (सप्तपदी) का विवाह में बहुत बड़ा महत्त्व है। कन्या और वर सत्संकल्पों के लिए एक दूसरे को सहायता देने की प्रतिज्ञा करते हैं। सप्तपदी के पूरे होने पर ही विवाह पूरा माना जाता है[1]। भाँवरों के पश्चात् वर-कन्या देवी-देवताओं वाले कमरे में ले जाये जाते हैं। जहाँ उनसे पूजा करवाई जाती है। इस समय एक आचार होता है जिसे 'वातीमिलाना' कहते हैं। वाती मिलाने में लड़का नेग के

---

1. **पहिली भाँवरि होय अबे धिया बाप की। दूसरी........ ....।
अब सतई भाँवरि होय कि अब धिया साजन की।**

लिए झगड़ता है। इसी समय सालियाँ-सलहजें भाँति-भाँति का हास्य-विनोद करती हैं।

भात के दिन संध्या को कच्चा खाना परोसा जाता है और 'ज्यो-नार' गाया जाता है जिसमें कि भाँति-भाँति की गालियाँ भी होती हैं। बढ़ार के दिन 'कलेऊ' (पलकाचार) होता है। मण्डप के नीचे पलंग बिछाया जाता है। सिरहाने वर तथा पैंताने उसके पास छोटे भाई बैठते हैं। लड़का खाने के पूर्व कुछ भेंट लेता है तभी खाना प्रारम्भ करता है। इस समय उसे भाँति-भाँति की वस्तुएँ दी जाती हैं। साली जूता छिपा देती है और बाद में परेशान करके दे देती है। अन्य लोग भी उससे बहुत अधिक हास्य-विनोद करते हैं। तीसरे दिन लड़की की विदा कर दी जाती है। यह दृश्य माता-पिता के लिए बड़ा ही हृदय-द्रावक होता है। बिदा होने के पहले वर बुलाया जाता है और उससे मण्डप के गूथ खुलवाये जाते हैं।

वधू जब वर के घर पहुँचती है तो शुभमुहूर्त में उसे घर के अन्दर प्रवेश कराया जाता है। इसी दिन मण्डप उखाड़ा जाता है और वर-वधू तथा अन्य स्त्रियाँ मण्डप 'सिराने' के लिए किसी नियत-स्थान पर जाती हैं। लौटते समय वधू को वर की पीठ पर कोड़ा मारने का आदेश दिया जाता है। लौटकर स्त्रियाँ पुरुषों को विनोद-वश पानी से भिगो देती हैं। कुछ दिन वधू ससुराल में रहती है और बाद में 'मायके' से उसका भाई 'चौथी' लेकर आता है। इस 'चौथी' में मिठाइयाँ तथा अन्य खाद्य-सामग्री होती है। चौथी का अर्थ चतुर्थ दिन होता है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि कन्या चौथे दिन ही लौट आवे। यदि वर और वधू वयस्क हुए तो सुहाग-रात भी हो जाती है। सुहाग-रात में वर-वधू को एक ही कमरे में सुलाया जाता है। इस कार्य का उत्तरदायित्व वर की बड़ी भाभी लेती है। सुहाग-रात पर भी गीत गाए जाते हैं। इन गीतों का उल्लेख पिछले

अध्याय में हो चुका है। ऊपर विवाह का जो संक्षिप्त-विवरण दिया ग है, कुछ थोड़े हेर-फेर के साथ यह संस्कार लगभग इसी प्रकार सम्प कन्नौज-क्षेत्र में ऐसा ही होता है।

अन्य-संस्कार—

गृहस्थाश्रम संस्कार का प्रत्यक्ष वर्णन तो गीतों में नहीं मिल परन्तु गृहस्थ को धर्म मे विश्वास रखना चाहिए, दान करना चाहि आदि का तो विधान है ही। अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि अप्रत्यक्ष रूप से इन गीतों मे गृहस्थाश्रम-संस्कार का भी वर्णन है 'वानप्रस्थ' का तो किसी प्रकार भी उल्लेख नहीं मिलता है। प्रत्य रूप से संन्यास-संस्कार का तो कोई विवरण नही मिलता परन्तु अने गीतों में 'तपसिया' आता है, जिससे अप्रत्यक्षतः कहा जा सकता है कि संन्यास-संस्कार का भी एक धुधला चित्र लोक-गीतो में विद्यमान है।

'अन्त्येष्टि' जीवन का अन्तिम सस्कार है। साधारणतः य शोक को अवसर होता है[1]। ऐसे अवसर पर कनउजी मे गीतों क विधान नहीं मिलता। युवा स्त्री या पुरुष को मृत्यु होने प सामान्यतया किसी नदी के किनारे चिता बनाकर जला दिया जाता परन्तु बालक और बालिकाओ को भूमि मे गाड़ दिया जाता है। न दिन नौबार होता है जिसमे बाल 'मूड़' दिए जाते है। ग्यारहवें दि 'एकादशा' होता है जिसमे महाब्राह्मण को दान दिया जाता है। तेरह दिन ब्राह्मणों को भोजन कराके यह संस्कार भी समाप्त हो जाता है इस प्रकार संस्कारो का चित्रण लोक-गीतों मे विवाह के गीतों तक ह

---

१. साधारणतः इसलिए क्यों कि कहीं कहीं पर मृत्यु के लिए ह मनाया जाता है। उदाहरण के लिए ब्रह्मा और चीन की सीमा प मचीना नामक नगर के निवासी मृत्यु पर प्रसन्न होते हैं क्यों f उनका विश्वास है कि मृत्यु से जीवन का बन्धन छूट जाता है।

मिलता है। शान्त-रस के कुछ भजन ऐसे भी होते हैं जिनमें मृत्यु के समय का करुण-रोदन तथा चिता जलने का चित्रण होता है।

सामाजिक जीवन का चित्रण

कनउजी लोकगीतों में कन्नौज के समाज के प्रायः प्रत्येक पहलू का वर्णन मिलता है।

समाज में स्त्री का स्थान—

हमारे शास्त्रों में स्त्री को बहुत बड़ा सम्मान दिया गया है। स्त्री के जितने स्वरूप होते हैं सभी का यथोचित सम्मान किया गया है। स्त्री जन्म देती है, पालन पोषण करती है तथा अपने स्नेह के दान से मनुष्य को प्रेरणा देती है। इसका इतना अधिक महत्त्व है इसीलिए तो मनु ने यहां तक कह दिया कि :—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते तत्कुलं आशु नश्यति।

अर्थात् जिस कुल में नारी की पूजा होती है वहाँ देवता लोग रमण करते हैं, जहाँ उनकी पूजा नहीं होती वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। स्त्री का इतना अधिक महत्त्व है कि किसी भी अनुष्ठान को स्त्री के सहयोग के बिना पूरा नहीं समझा जाता। राम ने जब अश्वमेध यज्ञ किया था तो सीता की अनुपस्थिति में उनकी सोने की मूर्ति बनाकर रखी गई थी। आज भी जब कोई धार्मिक-अनुष्ठान होता है, स्त्री की उपस्थिति तथा उसका सहयोग नितान्त आवश्यक समझा जाता है। परन्तु यह बात अब प्रथामात्र ही रह गई है। स्त्री का अब वह ऊँचा स्थान नहीं रहा जो प्राचीन काल में था। इसका कारण है संस्कृत के तथाकथित शास्त्रों का समाज पर प्रभाव जिनमें लिखा गया है कि-'स्त्री शूद्रौ नाधीयतामिति श्रुतेः—अर्थात् यह श्रुति-सम्मत है कि स्त्री तथा शूद्रों को नही पढ़ना चाहिये।

लोकगीतों में स्त्री की दशा के जो करुण-चित्र मिलते हैं उनमें स्त्री की दशा नितान्त शोचनीय है। सन्तान के उत्पन्न होने से ही इसका सूत्रपात हो जाता है। यदि पुत्र उत्पन्न होता है तो महान् हर्ष मनाया जाता है। 'सोहर' गाये जाते है। बाजे बजते हैं। पुत्र जन्म को चन्द्रिका (उंजिरिया) माना जाता है। परन्तु इसके विपरीत यदि पुत्री उत्पन्न हो तो घर में ऐसा प्रतीत होता है कि कोई शोक का अवसर है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि समाज में स्त्री और पुरुष के स्थान मे कितना बड़ा अन्तर है। अन्य भारतीय लोकगीतों के सोहरों की भाँति कनउजी सोहर में भी कृष्ण तथा राम के जन्म का बड़ा ही विशद-वर्णन मिलता है। उनके जन्म पर माता-पिता तथा अन्य लोग गीतों मे बहुत प्रसन्न दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु शान्ता तथा सुभद्रा के जन्म का प्रसंग किसी एक लोकगीत में भी नहीं आता कि उनके जन्म पर क्या हुआ क्या नहीं? इस दृष्टि से भी कहा जा सकता है कि स्त्री का स्थान पुरुष के समान नही समझा गया। जब पुत्र उत्पन्न होता है तो माता को भी इस बात का गर्व होता है कि उसने पुत्र को जन्मा है, पुत्री को थोड़े ही।[1] पुत्री के उत्पन्न होने पर पिता को भी दुःख होता है। उसको पुत्री से कोई घृणा अथवा चिढ़ नहीं है वरन् इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण है। पुत्री के उत्पन्न होते ही उसके लिए यह महान् चिन्ता हो जाती है कि उसका विवाह किसके साथ किया जाय। विवाह होने पर भी उसे सुख प्राप्त होगा या नहीं, इसकी भी चिन्ता कम नहीं है।[2] इसके अतिरिक्त पुत्री की ससुराल से पिता को बात-बात पर गाली मिलती है। जिस दिन कन्या का जन्म हुआ उसी दिन निश्चित हो गया कि पिता को गाली सहनी पड़ेगी। घर मे पुत्र

१--हमेने जाए हैं नन्दलाल धिआ नहिं जाई है।

२--पुत्रीति जाता महती हि चिन्ता कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
दत्वा सुखं प्राप्स्यति वानवेति कन्या पितृत्वं खलु नामकष्टम्॥

और पुत्री के साथ एकसा व्यवहार नहीं किया जाता। भाई-बहन में यदि झगड़ा हो तो माता विशेष रूप से पुत्र का ही पक्ष लेगी। खाने पीने की वस्तुओं में भी पुत्र को प्राथमिकता दी जाती है। एक गीत में कन्या माता से कहती है कि :—

भइआ कौ पिआओ दूध कटोरन हम कौ पिआई छांछ।

कन्या ज्यों-ज्यों बढ़ने लगती है माता-पिता की चिन्ता भी त्यों-त्यों बढ़ने लगती है। पुत्री के विवाह के लिए उसे चिन्ता के कारण ठीक प्रकार से नींद भी नही आती। इसका वर्णन लोकगीतों में बराबर मिलता है। पुत्री को पराये घर का धन और 'धरोहर' ही समझा जाता है। उसको लौटा देने मे पिता सुख का अनुभव करता है। लोकगीतों में कन्या के वर ढूँढने में कितना कष्ट होता है, इसका मार्मिक चित्रण मिलता है। अधिकांश जनता अशिक्षित है अतः अन्य देशों की भाँति यहाँ पर समाचार-पत्रों में विज्ञापन देने से वर नहीं मिल सकता। वर कहाँ-कहाँ मिल सकता है, यही एक बड़ी समस्या होती है। यदि वर मिल भी जाता है तो वर वाला पर्याप्त सम्पत्ति माँगता है। अतः उस समय पिता पुत्री के विवाह की समस्या की कठिनता का, अनुभव करता है। पुत्री कहती है कि हे पिता तुम सात-सात नौकरानियों और भाइयों का भार सहन कर सकते हो, केवल मेरा ही नहीं और यही कारण है कि तुम मुझे अनजाने स्थान को ढकेल रहे हो। यदि तुम्हें मुझको पराये घर भेजना ही था तो मुझे क्यों लाड़ प्यार किया और भर-भर कटोरों 'साढ़ी' वाला दूध क्यों पिलाया ? इसी प्रकार भाई से भी कन्या कहती है कि :—

छोंड़ि देव भइया डुलिया हमारी जानि देउ ससुरारि।
सात बंदिया को बोझ सहियौ तुम भइया एक हमारोई नाहिं।

इन उपर्युक्त पंक्तियों में बहन की अन्तर्वेदना की जैसी अभिव्यक्ति हुई है वैसी शिष्ट-साहित्य में मिलना कठिन है। जब कन्या का विवाह हो जाता है तभी माता-पिता सुख की नींद सोते हैं। एक गीत

में माता कहती है कि हे पुत्री ! तुम्हारे विवाह की चिन्ता में मग्न एवं उद्विग्न-हृदय तुम्हारे पिता का संताप तभी शान्त होगा जिस दिन वे तुम्हे ससुराल के लिए विदा कर देगे ।

कन्या की यह स्थिति आर्थिक कारण से भी है क्योंकि माता-पिता के लिये पुत्र कमाता है परन्तु पुत्री उलटा खर्च करवाती है। परन्तु इस बात को लेकर यह नही कहा जा सकता कि माता-पिता स्वार्थी है। वास्तव में बात यह है कि कन्नौजी लोगों की आर्थिक-दशा इतनी अच्छी नहीं रही है कि वे दहेज के बोझ को सहन कर सकें और यही कारण है कि वे अपनी पुत्रियों को उपयुक्त पात्र को सौंपने में समर्थ नही होते जिसका मनोवैज्ञानिक परिणाम यह होता है कि वे पुत्री का हृदय से स्वागत नही कर पाते हैं। आर्थिक पहलू को छोड़कर अन्य पहलुओं मे लड़की का अत्यधिक सम्मान किया जाता है। कन्या को इतना ऊंचा पद दिया गया है कि विवाह के समय माता-पिता जिन्होंने उसको जन्म दिया है, वे ही इसके पैरों को पूजते हैं। कन्या के पैरों के पूजने को गीतों में बहुत बड़ा पुण्य माना गया है। यह बात घरवालों तक ही नही सीमित है वरन् परिवार से इतर लोग भी कन्या के पैर पूजते हैं। धर्म के क्षेत्र मे भी कन्या को बड़ा ही पवित्र माना गया है। गीतों मे जहाँ-जहाँ दान का महत्त्व बताया गया है और कहा गया है कि किन-किन लोगों को दान देना चाहिए, वहाँ यह भी स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कन्याओं को दान देना और उन्हें भोजन कराना बहुत पुण्य का कार्य है। कन्नौजी-क्षेत्र में ब्राह्मणों को भोजन कराने से भी अधिक महत्त्व कन्याओं को भोजन कराना समझा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ओर तो कन्या उपेक्षित है और दूसरी ओर उसको बहुत ही बड़ा गौरव प्रदान किया गया है।

विवाह होने पर स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी कहा गया है। जीवन-रूपी गाड़ी के स्त्री और पुरुष दो पहिये है। एक पहिये के न होने पर

गाड़ी ठीक प्रकार से नहीं चल सकती गृहिणी का इतना महत्त्व बतलाया गया है कि उसके बिना घर को घर ही नहीं कहा जा सकता[१]। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक है। इस प्रकार जीवन तभी सुचारुरूप से चल सकता है जब स्त्री को भी पुरुष की भाँति अधिकार प्राप्त हों परन्तु बात ऐसी नही है। व्यावहारिक-जीवन में स्त्री की दशा बड़ी ही दयनीय है। उसे यदि कुछ मिलता है तो वह है सब ओर से उपेक्षा-भाव, प्रवंचना, दण्ड और अनन्त-कष्ट। कनउजी लोक-गीतों में पुरुष को स्त्री के ऊपर पूर्ण स्वायत्त मिलता है। वह चाहे जितनी भी दण्डित की जाय, चाहे जितनी ताड़ित की जाय, पर उसे कुछ बोलने का भी अधिकार नहीं है। उसके लिये यही वाँछनीय है कि वह दुखों को हँस-हँस कर सहे, क्रोध को अमृत के प्याले की भाँति पी जावे और पीटी जाने पर आह भी न करे। स्त्री को सास, ननद, ससुर, जेठानी आदि जो कष्ट देती हैं उनका सोहर, सावन और जाँत के गीतों मे जो चित्रण हुआ है उसको देखकर कोई भी ऐसा सहृदय नहीं होगा जिसके अश्रुधारा न प्रवाहित हो उठे। इस वर्णन मे भवभूति और वाल्मीकि से भी अधिक करुणा फूट निकली है।

एक सावन गीत में स्त्री सास से झूला झूलने की आज्ञा मांगती है। सास अनेक बहानों द्वारा उसे रोकती है। वह कहती है कि हे बहू यदि झूला झूलने की तुम्हारी साध है तो पहले पीस कर रखे जाओ। जब बहू पीस कर रख देती है तो वह फिर कहती है कि अब गोबर पाथ कर जाना, इसी प्रकार भोजन आदि तैयार करने को कहती है। ससुराल से बहू को भांति भाति के कष्ट मिलते है। वह पीटी जाती है। स्त्री मीठी बात की कितनी लालसा रखती है, यह नीचे की पंक्तियों से स्पष्ट है:—

१—गृहिणी गृहमुच्यते। महाभारत शान्ति पर्व १४४।६६।

ससुरे मैं मिलिहैं लात अउर घूँसा
मइके मैं मीठी सी बात
ससुरे ना मैं जइहौं रे।

एक गीत में भाई बहन के यहाँ से लौट कर जाता है और अपनी माता से बहिन की दशा का वर्णन करता हुआ कहता है कि:—

बहिन तो माया मोरी ऐसे रोवै जैसे मघा के बूँद।
देंहीं तो मइया मोरी अइसी मइली जइसे दिवाल को लेस।
कपड़ा तौ मइया अइसे मइले जइसे तेली को चीकट।
पीठी तौ मइया अइसी जइसे धोबी को पाट।

पिटना ही उसके लिए दुःख नहीं है, इतना शायद वह सहन भी करले। पर उसके दुःख की तो पराकाष्ठा तब होती है जब उसकी निर्दोष माता, पिता और भाइयों को अगणित गालियाँ मिलती हैं। उससे कहा जाता है कि तुम लेकर के आई ही क्या हो? घर में जब सब लोग भोजन कर लेते है तब कहीं खाने को उसे मिलता है और उसे जूठा खाना भी खाना पड़ता है। घर में खाद्य-पदार्थों के होने पर भी उसके लिये अच्छा भोजन नही मिलता। एक गीत मे यह प्रसंग आता है कि 'छीके' पर 'रधी' मछलियाँ रखी रहती है फिर भी उसको रोटी के साथ नमक भी नही मिलता[1]।

यह तो कनउजी लोक-गीतों में स्त्री की दशा का विकृत-पक्ष हुआ। इसके विपरीत दूसरा पक्ष भी है जिसमें स्त्री सास की आँखों का तारा, पति के लिए चन्द्रज्योत्स्ना तथा ससुर के लिए सुविधाओं की खान होती है। उसे सब ओर से सम्मान प्राप्त होता है। परन्तु यह बात अवश्य है कि जिन गीतों में इस प्रकार का चित्रण है, उनकी संख्या नितान्त न्यून है। अधिकांश गीतों में तो असीम वेदना ही है। इन थोड़े से गीतों

१. रंधी मछरियाँ सींके धरीं तऊ रोटी पै नून न देय।

में जिस पक्ष का वर्णन हुआ है, वह अत्यन्त उज्ज्वल, दिव्य और स्वर्गीय है। दाम्पत्य-जीवन की सुन्दर झांकी देखने को इसमें मिलती है। जीवन रूपी नौका में बैठ कर दोनों पतवार पकड़ते हैं, आंधी आने पर उसका सामना करते हैं, दुःख के समय साथ ही साथ आँसू बहाते हैं और हर्ष के समय साथ ही साथ हंसते और आनन्द मनाते हैं। विवाह के समय ससुर और सास जिस अभिलाषा से, जिस हर्ष से बहू की प्रतीक्षा करते है, उसके प्रति जितना स्नेह रखते हैं, वह अवर्णनीय है। धार्मिक अनुष्ठानों में न्यूनाधिक स्त्री का वही स्थान आज भी है जो प्राचीन काल में था। यह तो स्त्री की स्थिति का यथार्थ-चित्रण हुआ परन्तु स्त्री के साथ व्यवहार के लिए कुछ आदर्श के भी मान-दण्ड हैं। स्त्री सदैव ही सम्माननीय है। एक लोक कवि कहता है कि :—

नारी निंद्रा ना कोइ करिऔ नारी है नर की खान।
नारी ते नर अइसे हैं उपजे धुरू पहिलाद समान॥

स्त्री की आर्थिक-पराधीनता—

पितृ-प्रधान परिवारों के कारण पिता की सम्पत्ति का अधिकारी पुत्र होता है। पुत्री को उसका कोई भी अंश नही मिलता। जब विवाह के पश्चात् स्त्री अपनी ससुराल जाती है तो वहाँ की सम्पत्ति की भी वह अधिकारिणी नहीं होती, पति ही अधिकारी होता है। इस प्रकार आर्थिक-दृष्टि से उसे पति पर निर्भर होना पड़ता है। स्त्री की समाज में ऐसी कमजोर स्थिति समझी जाती है कि इस आर्थिक पराधीनता से वह मुक्त भी होना चाहे तो नहीं हो सकती क्योंकि उसके पग-पग पर बाधा पड़ती है। खेत पर अकेले वह काम नही कर सकती। किसी घर अकेली वह रह भी नही सकती, उसे हर स्थिति में पुरुष का आश्रय आवश्यक है[1]। इसके अतिरिक्त प्रायः स्त्री अशिक्षित होती है। अतः

---

१. पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रश्चस्थविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति। मित्रलाभ

अपनी जीविका के लिए वह कर ही क्या सकती है? पति उसे जिस प्रकार रखे, उसे रहना पड़ता है। स्त्री का भार पति पर ही होता है और इसी कारण जब पति घर से कहीं बाहर चला जाता है तो उसकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। इस समय उसे ससुर, सास और देवर सभी ताने देते हैं। अनेक लोक-गीतों में पति जब विदेश जाता है तो अपनी पत्नी से कह जाता है कि वह चर्खा कातकर अपनी जीविका चलावे। चर्खा से आवश्यक खर्च की पूर्ति नहीं होती जिससे कि वियोग के कष्ट के साथ उसे आर्थिक-संकट भी सहन करना पड़ता है। कभी-कभी तो पति को गए इतना समय बीत जाता है कि चर्खा जीर्ण-शीर्ण होने लगता है और स्त्री को यह चिन्ता हो जाती है कि आय का जो एक साधन चर्खा था, उसके समाप्त हो जाने पर क्या होगा? पति की कौन जाने, वह आएगे भी कि नहीं।

अनेक लोक-गीतों में विरहिणी, स्त्री की शोचनीय आर्थिक-दशा से लम्पट पुरुषों ने लाभ उठाना चाहा है। कोई वर कहता है कि हे कामिनी, तुम्हारा पति अब वापस नहीं आयगा, तुम्हारी ओढ़नी जीर्ण-शीर्ण हो गई है घाँघरे में पैबन्द लगे हैं, चोली भी फट चुकी है। यदि तुम मेरा पत्नीत्व स्वीकार करो तो मैं तुम्हें रेशमी वस्त्रों से ढंक दूँगा, तुम्हारे लिए अच्छे भोजन का प्रबन्ध करूँगा और तुम्हें अपने नेत्र के तारे की तरह रखूँगा :—

फटि गई उढ़नि गोरी तुम्हारी लहँगा मैं पिउंदा हजार।
पौढ़ौ जो गोरी हमरी सिजिआ झाँकै तुम्है उढ़ना पटोर।
खइबे का देयं गोरी अच्छो अच्छो भुजना राखौं नयनवा की कोर।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्त्री की जो शोचनीय-दशा है, उसे भाँति-भाँति के जो अत्याचार सहने पड़ते हैं, इन सब का मूल कारण उसकी आर्थिक-पराधीनता ही है। जब तक स्त्री आर्थिक-दृष्टि से स्वतंत्र नहीं होती, उसे इसी प्रकार घुट-घुट कर मरना होगा। उसका त्राण और किसी प्रकार भी सम्भव नहीं।

वन्ध्या का कष्ट—

स्त्री के कई रूप होते हैं। उसका माता का रूप सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। उसकी माता कहलवाने की इतनी बड़ी लालसा होती है कि इसे वह किसी भी मूल्य पर प्राप्त करने की चेष्टा तथा प्रयत्न करती है। बिना सन्तान के स्त्री अपने जीवन को नितान्त व्यर्थ समझती है, भले ही उसका घर धन-धान्य तथा अन्य समृद्धियों से क्यों न आपूरित हो। स्त्री में जो बलिदान की भावना होती है उसकी अभिव्यक्ति हम सबसे अधिक मातृत्व में ही पाते है। पुत्र के लिए माता घोर से घोर कष्ट को सहन कर सकती है, अपने सुख को तिलांजलि दे सकती है, परन्तु उसका अभाव ही उसके जीवन को निःसार और व्यर्थ बना देता है। अनेक लोक-गीतों में स्त्री देवी-देवताओं से पुत्र की कामना करती है[1]। स्वयं पार्वतीजी का उल्लेख है कि वे 'छठी माता' का व्रत पुत्र-प्राप्ति के लिए रखती है। शीतला माता, विष्णु, शंकर आदि देवी देवताओं की प्रार्थना में अनेकों गीत है जिनमें स्त्री पुत्र के लिए स्त्री प्रार्थना करती हुई दिखाई पड़ती है। एक गीत में एक स्त्री गंगा जी के किनारे तपस्या करती है। पुत्र-हीनता के कारण वह गंगा जी से प्रार्थना करती है कि "हे गंगा माता! मुझे एक लहर दो जिसमें मैं डूब जाऊँ"। गंगा जी उससे पूछती है—"क्या तुम्हें सास-ससुर दुःख देते हैं अथवा तुम्हारा मायका दूर है? अथवा तुम्हारे पति परदेश चले गए है"? स्त्री उत्तर देती है कि "गंगाजी! न तो मुझे सास-ससुर दुःख देते है और न नैहर ही दूर है और न मेरे पति ही परदेश चले गए हैं। मैं कोख दुःख से डूब रही हूँ[2]"। अन्य लोक-गीतों में तो समाज और घरवाले उसे पुत्र-हीना होने के कारण दुःख देते है और इसीसे वह सन्तति की ओर भी अधिक कामना करती है। परन्तु इस गीत में तो

१—परिशिष्ट देवी के गीत।

२—परिशिष्ट सोहर।

उसे अन्य किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं, परन्तु पुत्र का अभाव उसे इतना खलता है कि वह अपने जीवन को व्यर्थ समझ कर गंगा में डूब जाना चाहती है।

ऊपर के गीत से ही मिलता-जुलता एक और भी गीत है जिसमें कुछ स्त्रियाँ यमुना में जल भरने जाती है और देखती हैं कि वहाँ एक स्त्री रो रही है। पूछने पर वह उत्तर देती है कि न तो उसे सास-ससुर का दुःख है, न उसका नैहर ही दूर है और न उसके पति ही परदेश गये है, हे बहिनों! मैं कोख के दुःख से रो रही हूँ।[१] ऐसे गीतों को सुनकर पवित्र मातृत्व-भावना की हमें सराहना करनी पड़ती है और सम्पूर्ण स्त्री-जाति के लिए हम श्रद्धापूर्वक नत-मस्तक हो जाते हैं।

यह तो रही स्त्री की पुत्र प्राप्त करने की कामना की बात। पर दूसरी ओर जिस स्त्री के सन्तान नहीं होती समाज उसकी बड़ी ही उपेक्षा करता है। ऐसी स्त्री को 'बाँझ' (बन्ध्या) कहा जाता है। हिन्दू-समाज में स्त्री के लिए 'बाँझ' होना बहुत बड़ा अभिशाप है। उसे क्या सास, क्या ससुर, क्या पति और क्या गाँव वाले, सभी से बात-बात में अपमानित होना पड़ता है। उसे किसी धार्मिक-अनुष्ठान तथा मांगलिक-कार्य में भी सम्मिलित करना लोग पसन्द नहीं करते। यदि कोई किसी बाँझ को प्रातः काल देख लेता है तो इस बात की उसे शंका रहती है कि आज न जाने क्या अनर्थ हो जावे? एक अन्तर्प्रान्तीय लोक-गीत में, जो कन्नौजी-क्षेत्र में भी कुछ थोड़े परिवर्तन के साथ पाया जाता है, बाँझ की दशा की बड़ी ही मार्मिक एवं करुण अभिव्यक्ति है। वह कहती है कि 'मेरी सास मुझे बाँझ और ननद निरवंसिन कहती हैं, जिन्होंने मुझे वरा है और मेरे साथ विवाह किया है, वे मुझे घर से निकाल रहे हैं। वहाँ से बाँझ चल दी और बाँबी के पास खड़ी हुई। बाँबी से नागिन निकल कर

---

१. परिशिष्ट-सोहर।

दु:ख पूँछ रही है। 'तुम को कौन दु:ख पड़ गया है कि बाँबी के पास खड़ी हो ?' 'सास बाँझ और ननद निरबंसिन कहती है। तुम मुझे डस लो और मेरा बाँझ नाम छूट जाय।' 'हमारे छोटे बच्चे हैं वे भी बाँझ हो जाएँगे मैं तुमको नही डंसूगी'। वहाँ से चल कर बाँझ जंगल में पहुँची। जंगल से बाघिन निकली और सुख-दुख पूँछती है। 'बहन किस दु:ख की मारी हो जो जंगल बीच खड़ी हो।' 'सास मुझे बाँझिन और ननद निरवंसिन कहती है और जिनकी मैं वरी-ब्याही हूँ, उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया है। तुम मुझको खालो जिससे मेरा बाँझिन नाम छूट जाय।' 'तुमको जो मैं खालूँगी तो मैं भी बाँझ हो जाऊँगी।' वहाँ से बाँझ चल दी और नैहर गई। भीतर से माता निकल कर दु:ख सुख पूँछती है। 'माता मुझे भीतर कर लो, अपना दु:ख-सुख बतलाऊँगी।' 'हे बेटी ! तुम मेरी बेटी हो न, तुम्ही मेरी बेटी हो।' 'सास तो मुझको बाँझ और ननद निरवंसिन कहती है और जिनकी मैं वरी-ब्याही हूं उन्होंने मुझे घर से निकाला है। इसी दु:ख के कारण मैं नैहर आई हूं' 'तुम्हारी छोटी सी भाभी है वह भी बाँझिन हो जायगी।' वहाँ से वह वापस आती है और धरती माता से प्रार्थना करती है कि धरती माता तुम्ही मुझे शरण दो जिससे मेरा बाँझिन का नाम छूट जावे।' तुमको यदि मैं शरण दूँगी तो मैं भी बाँझिन हो जाऊँगी'।[1] अवधी आदि पूर्वी भाषाओं में यह गीत यहीं समाप्त होजाता है परन्तु कनउजी में यह दु:खान्त न होकर सुखान्त हो जाता है। धरती भी जब शरण नहीं देती है तो वह गंगा के पास जाती है और गंगा उसे पुत्र का वरदान देती हैं। फलत: नौ मास पश्चात् उसके पुत्र उत्पन्न होता है और फिर तो कायापलट हो जाती है। जो जो उसका निरादर करते थे, वे उसका आन्नद करने लगते हैं और घर-भर में आनन्द का सागर उमड़ पड़ता है तथा सोहर गान आरम्भ हो जाता है।

---

१. परिशिष्ट देखिए।

बाँझ के दुःख की तब तो चरम-सीमा ही हो जाती है जब स्नेह की प्रतिमा माता भी उसे आश्रय नहीं देती। इतना ही नही धरती-माता भी उसके वंध्यापन से भयभीत है। ऐसा प्रतीत होता है मानो वंध्यापन कोई संक्रामक रोग है जो अन्य लोगों को भी लग जाता है। इसीसे वंध्या को पुत्र का सुख मिले अथवा न मिले, पर वह इतना अवश्य चाहती है कि उसका वंध्या कहलाना छूट जावे। एक लोक-गीत में वर्णन मिलता है कि राम के उत्पन्न होने पर कैकेयी ने कहा कि राम तो बन को जाएँगे। इसके फलस्वरूप दशरथ ने कोशल्या को आदेश दिया कि हे रानी धीरे-धीरे पट लुटाओ क्योंकि राम तो वन जावेंगे। कौशल्या की इस समय बड़ी ही मार्मिक उक्ति है, 'राजा तुम बावले हो। तुम्हारी मति किसने हर ली? राम भले ही बन चले जाएँगे परन्तु मेरा बाँझिन नाम तो छूट गया है।'

गंगा से तपस्या करने का गीत अवधी मे भी पाया जाता है[1]। पर कनउजी मे व्रज की भाँति यह गीत काठ के बालक के प्रसंग मे भी चलता है जब कि पूर्वी-गीत वरदान के बाद ही समाप्त हो जाता है। वरदान के पश्चात् स्त्री को नौ महीने तक धैर्य नही रहता और वह बढ़ई से बालक बनवाती है और उसको लेकर सोती है और हर समय उसीको साथ रखती है। कनउजी-गीत मे काठ के बालक का प्रसंग सुखान्त अवश्य है परपूर्वी गीत दुःखान्त होने पर भी हृदय पर एक चोट करके करुण-रस मे हमे डुबो देता है :—

> बाबुल मोरे आँगने रोइ न सुनउतेउ मै बाँझिनि कहावउं हो।
> दैव गढ़ल मैं होतेउँ तौ रोय सुनउतेउँ हो।
> रानी बढ़ई के गढ़ल होरिलवा रोवन नाही जानइ हो।

विधवा

हिन्दू धर्म के अनुसार पुरुष अनेक विवाह कर सकता है। यदि

१—कविता कौमुदी : ग्रामगीत सोहर ३

उसकी पत्नी मर जाती है तो सामान्यतया वह दूसरा विवाह कर लेता है। परन्तु पति के दिवंगत होने पर स्त्री दूसरा विवाह नहीं कर सकती। उसके लिए तो कहा गया है कि 'तिरिया के दूसरी बार तेल नहीं चढ़ता'। अर्थात् उसका दूसरी बार विवाह नहीं हो सकता। दूसरी ओर उसे उत्तराधिकार में भी कुछ नहीं मिलता। अतः वह घर के अन्य कुटुम्बियों के आश्रित रहती है। उसको भाँति-भाँति के कष्ट मिलते हैं। उसके लिए अनेकों नियम है। वह श्रृंगार नहीं करती, अच्छा भोजन नहीं करती। स्त्री के लिए तो कड़े नियमों का पालन करना पड़ता है परन्तु दूसरी ओर दुष्ट-पुरुष उसके मार्ग में बाधक बनते है। इसी कारण कनउजी में एक कहावत है कि 'रड़िआ तौ अपनो रंड़ापो काटि डारै पै जब रंड़ुआ काटन देयं'। अर्थात् विधवाएं तो अपना वैधव्य-जीवन बिता सकती है परन्तु बिधुर लोग उसको ऐसा नहीं करने देते।

वैधव्य के अभिशाप से बचने के लिए स्त्रियाँ देवी-देवताओं से अपने सुहाग को अमर बनाने की प्रार्थना करती है और ~~अपने पति की~~ विदेश जाने से रोकती हैं। लोक-गीत उस समय के भी हैं जब देश में पूर्ण शान्ति नहीं थी। मार्ग निरापद नहीं थे और पति बहुत दिन के पश्चात् लौटते थे। अतः स्त्री उन्हें घर के बाहर नहीं निकलने देती थी क्योंकि उसे यही भय रहता था कि यदि उसका पति किसी आपत्ति में फँस कर मर गया तो उसके जीवन को कौन पार लगाएगा। इसी कारण जब पति परदेश जाने को सन्नद्ध भी हो जाता था तो वह बराबर निर्देश करती थी कि अमुक दिशा को मत जाना, वहाँ प्राणों के चले जाने का भय है।

एक सावन-गीत में जब पति अपनी पत्नी को कष्ट देता है तो पत्नी का भाई अपने बहनोई को मार डालता है। इस बात को सुनकर स्त्री

अपने भाई से कहती है कि हे भाई ! तुमने अपने सगे बहनोई को मार डाला है। अब मेरी 'मड़इया' को कौन छावेगा और कौन मेरा प्रतिपाल करेगा। इसी प्रकार एक अन्य गीत में पति छद्म-वेश में अपनी पत्नी के साथ पनघट पर छेड़-छाड़ करता है। स्त्री का भाई एक-एक करके सब से हथियार माँगता है जब उसे कोई भी हथियार नहीं देता तो वह स्वयं ही लेकर अपने बहनोई (जो छद्म-वेश में था) को मार डालता है जब वह लौटता है तो बहन खून से भरी तलवार देखती है और पूछती है, भइया यह खून कहा लग गया है ? भाई पूरी कहानी बतलाता है। यह सुनकर बहन करुण-क्रन्दन करने लगती है और भाई से कहती है :—

की की पहिरौ हरी पेरी चुरियां की पै करौं सिंगार ।
कौन छवइयै रांड़ की मड़इया कौन करै पतिपाल ।
की की देहरिया लै बइठइयौ की के सहइऔ बोल ।

जनेऊ, विवाह आदि मुख्य संस्कारों में भी विधवा की उपस्थिति अमंगल समझी जाती है। विशेषरूप से विवाह में उसका होना किसी को अच्छा ही नहीं लगता। सबको यही भय रहता है कि जिस प्रकार वह विधवा है, उसी प्रकार जिसका विवाह हो रहा है, वह भी न हो जावे। जितने लोकाचार होते हैं उन्हें सधवा स्त्रियों द्वारा ही सम्पादित कराया जाता है।

विधवा की दशा पर विचार करके हम कह सकते हैं कि नारी के लिए वैधव्य से बड़ा और कोई अभिशाप नहीं हो सकता। स्त्रियाँ जब एक दूसरे से झगड़ती हैं तो विधवा होने का शाप देती हैं। वे कहती हैं कि 'तू रांड हुइ जा', 'तोरी चुरियाँ फूटि जायँ' आदि।

आदर्श सतीत्व--

हमारे देश की स्त्री अपने सतीत्व के लिए विश्वविख्यात है। उसके इतने बड़े संयम से किसी भी देश की स्त्री होड़ नहीं कर सकती। हमारे देश की स्त्रियाँ पतिव्रता होती हैं। उनकी चाहे जो भी स्थिति हो, चाहे

जितना उन्हें कष्ट क्यों न हो परन्तु अपने धर्म मे वे विचलित नही होतीं। उनका पति कुरूप और अंग-भंग ही क्यों न हो पर फिर भी कोई भी उन्हें पातिव्रत-मार्ग से डिगा नहीं सकता। कनउजी लोक-गीतों में हमारी ललनाओं का चरित्र बडा ही पवित्र शुद्ध और निर्मल दिखाया गया है। सतीत्व की रक्षा के लिए उन्होंने कष्टों को हंसते-हंसते सहा है, विविध विषम-परिस्थितियो मे पड़कर बलशाली-कामुको, आततायी मुगलों को छठी का दूध याद दिला दिया है। धन का अपार-राशि उनके सतीत्व को न खरीद सको। सतीत्व का जो आदर्श यहाँ चित्रित है, वह किसी भी देश के लोक-गीतों में दुष्प्राप्य है।

'धन्नइया' नामक प्रबन्ध-गीत में 'बकेमुर' के राजा गजोधर की पुत्री पद्मिनी का जब विवाह हो रहा था तो मंडप में ही नगमुनियाँ ने खरगलाल को डॅस लिया जिससे की उसकी मृत्यु हो गई। तब पद्मिनी धन्नइया बनाकर गंगा-मार्ग मे अपने पति के शव के साथ 'कुरू कमंछ्या' चल दी। वहाँ पर उसने अपने पति को जिला लिया। परंतु बंगाल में जादू का बड़ा प्रचार था, अतः कई दुष्टा स्त्रियों ने उसे बैल, गधा आदि बना दिया। पद्मिनी ने युक्तियों से उसे फिर मनुष्य बनाया और अन्त में वे दोनों अपने देश को लौट आए। इस स्त्री को बीच में बहुत प्रलोभन मिले, परंतु सबको उसने ठुकराया और अपने आदर्श-सतीत्व की रक्षा की।

"ऊभदेव का गौना" नामक प्रबन्ध-गीत में भी ऊभदेव की स्त्री ने बड़ी ही वीरता से शत्रुओं का सामना किया। शत्रुओं ने ऊभदेव को मारकर उससे अनुचित प्रस्ताव किया। उसने उन्हें बुरी तरह फटकारा और सती होने के लिये तैयार हो गई —

इकदिन पिया मोरो बौ हतो जब पनरस परी हती गाँठ।
इकदिन पिया मोरे बौ हतो जब लेन गउनो गए मोर।
इकदिन पिया जौ भओ जब हम जरैं तुम्हारे साथ।

जिस प्रकार पूर्वी-गीतों मे कुसुमा देवी का प्रसंग मिलता है उसी प्रकार कुछ हेर फेर के साथ कनउजी में भी। कुसुमा देवी के घर को मुगल घेर लेते हैं और उसके घरवालों को कुसुमा देवी के देने का आदेश देते हैं। मुगल इतने अधिक हैं कि प्रतिरोध करने पर कुसुमा के पिता तथा भाइयों की मृत्यु के घाट उतर जाने का सन्देह है। पिता तथा बड़े भाई लड़ने को तैयार भी हो जाते हैं, पर कुसुमा अपने बलिदान द्वारा पिता तथा भाइयों को बचा लेती है। वह मुगलों के साथ जाने को तैयार हो जाती है। चलते-चलते वह मुगलों से अनुरोध करती है कि अब तो मेरे माता-पिता का घर सदैव के लिये छूटा जाता है। अतः मुझे पिता के तालाब में एक बार पानी तो पी लेने दो। मुगल बहुत आग्रह करने पर तैयार हो जाते हैं। कुसुमा तालाब मे कूद कर अपने प्राण दे देती है। इस प्रकार वह अपने भाइयो तथा पिता की भी रक्षा कर लेती है और अपने सतीत्व को भी।

एक सावन-गीत मे स्त्री अपने नैहर जाती है। मार्ग मे नदी पड़ती है। मल्लाह को नदी की उतराई में वह अपनी अँगूठी देना चाहती है। परन्तु मल्लाह बड़ा कामुक और दुष्ट है, वह उसके यौवन की याचना करता है। इस पर वह स्त्री पहले तो समझाती है, परन्तु बाद में तैरती हुई चली जाती है और कहती है कि लौटते समय अपने भाई से कहकर तुम्हारी खाल मे भूसा भरवा दूँगी:—

मलहा खेइ नवइया उतारौ पार डोला मेरो भींजै बिरिछतर।
का जो दिऔ रनिया खिवाई ? दी है मलहा हाथ मूंदरी।
अउर गरे को हार डोला मेरो भींजै बिरिछतर।
भार न झोंकै रानी मुंदरी समुद बहामौं तेरो हार।
डोला...........
तुम्हरे तीर रानी दुइ निबुला उइ मैं ते एक चिखावौ डोला०......
निबुला तौ मोरै मलहा बिस भरे खाइ के तुम मरि जाव डोला०...

जो रानी निबुला बिस भरे तुम्हरे हरि कइसे जियँ डोला० ......
हमरे तौ हरि वारी के भउँरा कलिन कलिन रस लेयं डोला० .....
पार मैं जइयौं नदिया पइरि के सुनु मलहा रे डोला० .. ..
लउटत बिरियाँ सुनि रे मलहा भरइयों भुम तोरी खाल मे
भइया मे डोला०......

इसी प्रकार अन्य अनेक गीत हैं जिसमे स्त्रियाँ कभी राजपूतों को डाँट देती हैं कभी वह बहकाने वाले पुरुष से कहती हैं कि तुम्हारे जैसे तो मेरे नौकर हैं ? पुरुष का इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है ? एक गीत में जयसिंह लाची नामक गरीब स्त्री से अनुचित प्रस्ताव करते हैं। उसके उत्तर में लाची बड़ा खरा उत्तर देती है। वह कहती है कि तुम मुझे अपने धन और ऐश्वर्य के प्रलोभन में नही डाल सकते। सौन्दर्य में तुम मेरे पति के सम्मुख तुच्छ हो। तुम यहाँ से चले जाओ। जयसिंह अपना सा मुँह लेकर वहाँ से वापस आते हैं।

ऐसे भी गीत हैं जिनमें कि पति बारह वर्ष बाद आता है और छद्मवेश में अपनी पत्नी की परीक्षा करता है। वह कहता है कि तुम्हारा पति बहुत दिन हुए बाहर गया है, अब वह वापस नही आ सकता। तुम मेरे आश्रय में आ जाओ। मैं तुम्हें बहुत सुख दूँगा। स्त्री उसे बहुत फटकारती है और तब वह कहता है कि मैं तो तुम्हारा पति हूं।

अंग्रेजी शासन-काल में राममोहन राय के प्रयत्न से सती प्रथा को बन्द करा दिया गया। परन्तु हमारे लोक-गीतों में अब भी ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं जिनमें अनेकों स्त्रियाँ सती हो गई हैं। लोक-गीतों में समय और नामों का विशेष महत्त्व नहीं होता और न उसका स्पष्ट उल्लेख ही होता है। यही कारण है कि सावन तथा जांत के गीतों में केवल ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि जेठ ने छोटी भाभी पर मुग्ध होकर अपने छोटे भाई को मार डाला और भाभी को अपनी पत्नी बनाना चाहा। स्त्री चातुर्य से उसको चकमा देती है और कहती है कि पहले मुझे पति का दाह-संस्कार

कर लेने दो तब मैं तुम्हारा पत्नीत्व ग्रहण करूँगी। दाह-संस्कार में वह चिता मे जल जाती है और अपने सतीत्व की रक्षा करती है:—

जाव-जाव जेठा आगी लइ आवौ सामी के दाग लगइवो हम हो।
जो तुम होव सामी साँचें बिहउता अँचरा आगी जरि उठैनाहो।
अँचराभभकि उठो सती न भसम भई जेठ मीसैं दोउ हाथ ना हो॥

देवर के भी अनुचित प्रस्ताव पर स्त्री सती हो जाती है, ऐसे भी प्रसंग गीतों मे बराबर मिलते है। ऐसे भी गीत है जिनमें कि स्त्री चिता के पास खड़ी होकर कहती है कि यदि मैं सचमुच पवित्र-आचरण वाली हूं तो मेरे अंचल से अग्नि उत्पन्न हो जावे। अग्नि उत्पन्न हो जाती है। और स्त्री अपने पति के साथ चिता मे भस्म हो जाती है। थोड़े दिन हुए हैं, फर्रुखाबाद के पास इकनौरा ग्राम मे एक स्त्री सती हो गई थी, उसका भी उल्लेख आधुनिक लोक-गीतों में मिलता है।

आदर्श-सतीत्व तथा सती होने की भावना का आरोप पशुओं में भी किया गया है। सोहर-गीतों में हरिणी शिकारी से अपने पति के सीस और हड्डियों की याचना करती है, जिसके साथ उसे सती होना है।

दिव्य (किरिया)—

प्राचीन-भारत में निर्णय के लिए अनेक साधनों का प्रयोग होता था। अपराधी के निर्णय में साक्ष्य, लिखित-प्रमाण आदि साधारण साधन असफल हो जाने पर असाधारण या अलौकिक साधनों का प्रयोग किया जाता था। इन साधनों को, अलौकिक होने के कारण 'दिव्य' कहा गया है। नारद ने लिखा है कि जब किसी अभियोग में साक्षी न मिले तो भिन्न-भिन्न दिव्यों और शपथ द्वारा उसका न्याय करना चाहिए[1]। लोक-गीतों में दिव्य के लिए 'किरिया' शब्द का प्रयोग

**१. यदा साक्षी न विद्येत, विवादे वदतां नृणाम्।
तदा दिव्यैः परीक्षेत् शपथैश्च पृथग्विधैः॥**

किया गया है।[१] विष्णु धर्मसूत्र में अलौकिक प्रमाण को दैविकी क्रिया[२] कहा गया है। धीरे-धीरे क्रिया का किरिया[३] हो गया और दैविकी का लोप हो गया। कनउजी लोक-गीतों में भी 'किरिया' का प्रयोग पाया जाता है। नारद ने लिखा है कि दिव्य का प्रयोग उस समय भी किया जा सकता है जब किसी स्त्री के चरित्र पर सन्देह हो[४]। वस्तुतः दिव्य का प्रयोग लोक-गीतों में किसी अन्य अपराध के लिए नहीं वरन् स्त्रियों के सतीत्व की परीक्षा के लिए ही पाया जाता है। किसी स्त्री का पति परदेश चला जाता है। वहाँ दूसरा विवाह करके बारह वर्ष बाद लौटता है और अपनी स्त्री के चरित्र पर सन्देह प्रकट करता है। स्त्री 'किरिया' द्वारा अपने को शुद्ध चरित्रवाली प्रमाणित करती है और तब उसे पति ग्रहण करता है। लोक-गीतों में स्त्री के सम्बन्धी भाई, पिता आदि के समक्ष दिव्य का वर्णन मिलता है।

स्मृतियों में अनेक प्रकार के दिव्य पाये आते हैं, जिनमें कि तुला-दिव्य, अग्नि-दिव्य, जल-दिव्य, विष-दिव्य, कोष-दिव्य, तंडुल-दिव्य, तप्त-माष-दिव्य और धर्म-दिव्य प्रसिद्ध है[५]। परन्तु लोक-गीतों में छः प्रकार के दिव्यों के प्रसंग आते हैं :—१ अग्नि, २ आदित्य, ३ गंगाजल ४ तुलसी, ५ तेल और ६ सर्प। इनमें से आदित्य, तुलसी और सर्प-दिव्य नितान्त नवीन और मौलिक हैं। इनकी वर्णन धर्म-शास्त्रों में नहीं मिलता। गीतों का तेल-दिव्य शास्त्रों का तप्तमाष-दिव्य कहा जा सकता है। तप्तमाष-दिव्य में लोहे, ताँबे या मिट्टी के बर्तन में घी को गर्म करके किया जाता था और उसमें 'शोध्य' का हाथ डलवाया जाता था। यदि

---

१. त्रिपाठीः ग्राम गीत पृष्ठ २४३।

२. विष्णु-धर्म-सूत्र ६:१।

३. स्वरभक्ति के नियम से।

४. नारद स्मृति ४।२४२

५. See Dr. kane History of Dharma Shastra Pt· III 396-75.

शोध्य का हाथ न जला तो वह शुद्ध समझ लिया जाता था। लोक-गीतों में अधिकांशतः लोहे की कढ़ाई का वर्णन मिलता है। स्त्री कहती है कि 'हे लोहार शीघ्र ही कढ़ाई तैयार करो, मुझे किरिया देना है'। शास्त्रों में वर्णित घी के स्थान पर गीतों में तेल का उल्लेख मिलता है। एक गीत में उल्लेख मिलता है कि जब बारह वर्ष बाद पति लौटा तो स्त्री की ननद ने अपने भाई से चुगली खाई और कहा कि भाभी से 'किरिया' लो। स्त्री पिछवाड़े के रहने वाले बढ़ई और तेली से कहती है कि "धर्म के भाई बढ़ई और तेली ! मेरे लिये धर्म की कढ़ाई और धर्म का तेल तैयार कर दो। मेरे पिछवाड़े के नाई ! मेरे नैहर जाकर खबर कर दो कि उनकी पुत्री 'किरिया देगी'। आज एकादशी है कल द्वादशी और तेरस को किरिया ली जायगी। आगे घी की गगरी और पीछे-पीछे भाई चले जा रहे है। यदि बहन जीती तो नैहर लाऊँगा। हारी तो अग्नि में उसे झोंक दूँगा। आग जल गई और कढ़ाई भभक रही है, बहन 'किरिया' कर रही है। हे सूर्य। यदि मैं सती हूँ तो मेरी 'पत' रखो। जब बहन ने 'किरिया' दी तो खोलता हुआ तेल शीतल जल की भाँति हो गया। एक बार हाथ डाला, दूसरी बार डाला और तीसरी बार पार उतर गई"। यद्यपि अन्य दिव्यों का भी वर्णन लोक-गीतों में मिलता है, परन्तु सबसे प्रसिद्ध दिव्य है तेल का और तत्पश्चात् अग्नि का।

पारिवारिक-चित्रण—

संयुक्त-परिवार भारतीय-परिवारों की विशेषता होती है। अन्य देशों के लोक-गीतों में इसी कारण पारिवारिक-जीवन के वे चित्र हमारे सम्मुख नहीं आ पाते जो हमारे लोकगीतों में। हमारे परिवार में अनेक सदस्य होते हैं। विभिन्न अवसरों पर एक दूसरे के साथ सदस्यों का क्या व्यवहार होना चाहिए, इसका भी वर्णन इन गीतों में मिलता है। परिवार में सभी सदस्य परस्पर प्रेमपूर्वक सुख और दुःख में समान रूप से भाग लेते हैं। साथ-साथ रहने से कभी-कभी उनमें कुछ कलह भी

उत्पन्न होना है, जिसका कि कारण अवस्था-भेद और स्वभाव-भेद होता है। लोक-गीतों में पवित्र और पारस्परिक प्रेम का उल्लेख है, साथ ही पारस्परिक कलह और द्वेष का भी। नीचे हम एक-एक सम्बन्ध को लेकर पारिवारिक चित्रों के उपस्थित करने का प्रयत्न करेंगे।

माता और पुत्र— माता का स्नेह सबसे पवित्र और दृढ माना गया है। उसमें न स्वार्थ है और न बदले में कुछ प्राप्त करने की भावना ही। माता पुत्र से स्नेह रखती है। उसका हृदय ही ऐसा बना है कि वह पुत्र के प्रति प्रेम के अभाव में सम्भवतः जीवित भी नहीं रह सकती। माता जैसी अमूल्य-निधि मनुष्य को, संसार में कहना क्या, स्वर्ग में भी नहीं मिल सकती। गर्भाधान-संस्कार से ही पुत्र के लिए माता के कष्ट का आरम्भ हो जाता है। वह उसे नौ मास अपने उदर में रखती है, घातक प्रसव-पीड़ा सहती है और बाद में पालन-पोषण में भी अपने सुखों को त्याग कर पुत्र को अधिक से अधिक सुख देने की चिन्ता करती है। इतने सारे दुःखों के देनेवाले के लिए भी वह न जाने इतना क्यों स्नेह करती है? माता के इसी स्वर्गीय-स्नेह का वर्णन हमारे लोक-गीतों में भरा पड़ा है। सोहर, जांत और भजनों में माता और पुत्र के प्रेम के बड़े ही सुन्दर चित्र मिलते हैं। पर पिता पुत्र के प्रसंगों का गीतों में प्रायः अभाव ही है।

माता देवी-देवताओं आदि से प्रार्थना करते समय भी पुत्र-प्राप्ति को ही प्राथमिकता देती है। इसके अतिरिक्त वह दूध भी माँगती है, पर उसका उपभोग भी तो पुत्र ही करेगा। ललिता देवी के एक गीत में माता पुत्र की कामना करती है :—

काए के काजे मइया धजारे नारियर काएके काजे मइया भरि-भरि दोना।
पूत के काजे मइआ धजारे नारियर पूतके काजे मइया भरि-भरि दोना।

अनेक लोक-गीतों में माता अपने पुत्र को विदेश जाने से रोकती है। वह चाहती है कि वह उसकी आँखों के सामने ही रहे। जब कभी

भी वह बाहर जाता है तो माता अपने आँसुओं को नहीं रोक पाती। जब राम वन को जाते हैं तो कौशल्या के दुःख की अभिव्यक्ति जो गीतों में हुई है, उस स्वाभाविकता को न तो वाल्मीकि ही सुरक्षित कर सके हैं और न कालिदास ही।

माता के पुत्र के प्रति प्रेम के उत्कर्ष को दिखाने के लिए लोक-गाथा में सत्य ही कहा गया है कि पुरुष की मृत्यु के तेरह दिन बाद तक स्त्री रोती है, १३ मास तक बहिन और माता, जबतक जीती है, रोती ही रहती है। पुत्र भी माता को बहुत प्रेम करता है। उसके अभाव का तो अनुभव वह तब करता है जब माता का देहान्त हो जाता है। माता के पुत्र प्रति अपने प्रेम की अभिव्यक्ति विवाह के समय करता है जब वह कहता है कि हे माता, 'मैं अपने लिए जीवन साथी लाऊँगा और तुम्हारे लिए दासी।' हम कह सकते हैं कि लोक-गीतों में 'मातृ देवो भव' की भावना आज भी विद्यमान है।

पिता-पुत्र—पिता का भी पुत्र के प्रति अत्यधिक प्रेम होता है। अपने पुत्र के लिए सब प्रकार के बलिदान करने के लिए वह तैयार रहता है। जो भी वह कमाता है वह अपने पुत्र के लिए ही। पिता का पुत्र के प्रति जो प्रेम होता है उसका हमें विशेष रूप से उल्लेख दशरथ और राम के प्रसग में मिलता है। दशरथ राम से बहुत प्रेम करते हैं, परन्तु वचन-बद्धता के कारण उन्हें राम को वनवास देना पड़ता है। परन्तु राम मे प्रेमाधिक्य के कारण हैं कि उस वियोग-दुःख से उनका प्राण भी निकल जाता है। पुत्र पर पिता का इससे अधिक प्रेम क्या हो सकता है? इस प्रसंग को लेकर लोक-गीतों में हमें अनेकों उल्लेख मिलते हैं, जिनमें दशरथ का बड़ा मार्मिक चित्रण किया गया है। पुत्र भी पिता से बहुत प्रेम करता है और उसकी आज्ञा का पालन करता है। लोक-गीतों में आदर्श-पुत्र के प्रतीक राम हैं। राम के माध्यम द्वारा ही पुत्र की आज्ञा-कारिता की अभिव्यक्ति हुई है।

माता और पुत्री—इसमें कोई सन्देह नही कि माता का पुत्र के प्रति अगाध स्नेह होता है, पर सम्भवतः पुत्री के प्रति तो उसका प्रेम और भी अधिक होता है। कनउजी लोक-गीतों का माता और पुत्री का परस्पर प्रेम अन्यत्र दुर्लभ है। पुत्री के उपत्न्न होने से स्त्री को त्रस्त किया जाता है, पुत्री के विवाह करने के लिए उमे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है, परन्तु इन सारी बातों के होते हुए भी माता की पुत्री के प्रति स्नेह-वल्लरी मुरझाती हुई नहीं दिखलाई पड़ती। पुत्री को विश्वास होता है कि जितना उसका ध्यान माता रखती है उतना कोई नही और यही कारण है कि उसको प्रत्येक विपत्ति और दुःख में माता की याद आती है। पुत्री को माता जन्म देती है और उसका पालन-पोषण करती है, यह तो कारण है ही परन्तु स्नेह की तीव्रता का एक कारण यह भी होता है कि पुत्री उसके पास दिन-रात रहती है जब कि पुत्र का उससे अधिक सम्पर्क नही रहता। यही अधिक सम्पर्क होना ही पुत्री के प्रति अगाधस्नेह का कारण हो जाता है। पुत्री के प्रति अधिक स्नेह होने का एक कारण यह भी है कि उसके विषय में उसे बराबर यही चिन्ता रहती है कि ससुराल में वह सुख पाएगी अथवा नहीं। विदा होने के अवसर के जो गीत मिलते हैं वे बड़े ही मार्मिक हैं और उनमें माता तथा पुत्री के हृदय में जो वेदना होती है उसका बड़ा ही मार्मिक चित्रण मिलता है। विदा होते समय माता अपने दामाद से रोकर प्रार्थना करती है कि 'हे पुत्र ! मेरी पुत्री तुम्हारे ही आश्रय में है। इसे किसी प्रकार भी कष्ट मत देना। मैं आँचल पसार कर तुमसे यही भिक्षा माँगती हूँ'। कालिदास ने शकुन्तला की विदा के समय जो चित्र 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' में उपस्थित किया है उससे कहीं अधिक कारुणिक दृश्य हमें इन विदा के अवसरों पर मिलता है।

पुत्री को ससुराल में बहुत कष्ट होता है। उधर उसे अपने नैहर की याद आती है। अतः वह अपनी माता के पास समाचार भेजती है

कि वह उसे नैहर बुलाले । माता बुलाना तो चाहती है परन्तु विवश है । विवशता का समाचार अपनी पुत्री के पास भेजती है:—

बाबुलि तुम्हारे बेटी देस के राजा ओ न बमन परदेस ।
जेठो बिरन तुम्हरो धनिया को लोभी नित उठि जइऐ समुरारि ।
लहुरो बिरन बेटी निपट अनारी नदिनारे देखि डिराय ।

बहन को लाने के लिए भाई उसकी समुराल गया है । माता को आशा है कि पुत्री अवश्य आएगी । अत: वह अट्टालिका पर चढ़कर राह देखती है कि आज मेरी पुत्री आ रही है । परन्तु छूछी डोली को लेकर कहार आ रहे हैं । पुत्र से माता कहती है कि अपनी बहन का समाचार कहो । जब भाई बहन के विविध कष्टों का वर्णन करता है तो माता कह उठती है कि 'हे पुत्र तुम ! रोती हुई बहन को छोड़कर कैसे चले आए ?'

पुत्री का भी माता के प्रति अत्यधिक प्रेम होता है । पुत्री को अनेक कष्ट हैं । वह अपने भाई से कष्टों का तो स्पष्ट निवेदन करती है परन्तु साथ ही साथ यह कहना भी नहीं भूलती कि हे भाई ! मेरे इन कष्टों को माताजी से न कहना, नहीं तो वह अपने प्राण दे देगी:—

माया अँगारू जनि कहियौ बिरना पेट मारि मरि जाय ।

पुत्री को माता की ओर से अपने प्रति प्रेम का इससे अधिक विश्वास और क्या हो सकता है ? इन गीतों में माता और पुत्री का प्रगाढ़ प्रेम भरा पड़ा है । इस अविचल प्रेम में ही भारतीय-संस्कृति का सच्चा रूप निहित है ।

भाई और बहन—कनउजी लोक-गीतों मे भाई और बहन के प्रेम का चित्रण बड़ा ही पवित्र और स्वर्गीय है । भाई और बहन बाल्यावस्था में साथ खेलते हैं । सावन के एक गीत में एक प्रसंग आता है कि छोटी-छोटी बूँदों से मेघ बरसे जिससे कि आंगन में कोंच हो गया । बहन कहती हैं कि हे भाई ! आंगन में न निकलो अन्यथा तुम्हारे

पैर कीच से भर जाएगे । मैं तुम्हारे पैर के लिए चन्दन की खड़ाऊं लूंगी और हाथ के लिए छड़ी मंगाऊंगी । सर पर लगाने के लिए मखमल की टोपी लूगी और हाथ मुह पोंछने के लिए रूमाल:—

नन्ही नन्ही बुदियन मेहा बरसि गए मेहा बरसि गए
अरे आगन मे हुइ गओ कीच ।

अब जिन निकरौ अगना मैं बिरना पायं भरैं दोनो कीच ।
पायं कौ लियैं भइया चनन खड़उआ हाँथ को छड़िया मगाय ।
दाबे कौ लियैं भइया मखमल टोपी पुछिबे कौ लीहै रुमाल ।

बिदा के गीतों मे माता के समान भाई भी करुण-क्रन्दन करता है । उसका हृदय इतना भर जाता है कि वह कुछ बोल ही नही पाता । अत: अपनी बहन की डोली रोक लेता है । बहन भाई को समझाकर डोली छुड़वानी है । ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि विदा के समय रोते-रोते भाई के सारे वस्त्र भीग जाते है ।

भारतीय लोकाचार के अनुसार माता अपनी पुत्री को ससुराल नही जा सकती । अतः पुत्र ही माता और पुत्री के सन्देश-वाहन मे माध्यम का काम करता है । भाई अपनी बहन के यहाँ जाता है और उसे बुला लाता है । बहन समझती है कि भाई ही उसके दु:खों को दूर कर सकता है, वही उसका बल और सम्बल है । बहन को जब भी जिस वस्तु की आवश्यकता होती है अथवा विपत्ति पड़ती है तो भाई ही ऐसे अवसरों पर दाहिना हाथ होता है । दु:खिया के जीवन में भाई ही ऐसा ध्रुवतारा है जिसकी ओर वह टकटकी लगाकर देखा करती है । बहन विपत्तियों में भाई का आह्वान करती है उसी प्रकार भाई पर भी जब किसी प्रकार का संकट पड़ता है तो वह अपनी बहन का आश्रय ग्रहण करता है । लोक-गीतों मे ऐसे वर्णन मिलते है कि भाई पर विपत्ति पड़ी तो वह बहन के पास गया और उसका बहन ने यथोचित सत्कार किया । एक गीत में राजा गोपीचन्द जोगी हो जाते हैं और चल देते हैं । माता कहती है कि

और सब जगह जाना, परन्तु बहन के यहाँ नहीं। पर गोपीचन्द बहन के यहाँ जाते है और बहन उनका बडा ही सत्कार करती है।

भाई का आना बहन के लिए एक उत्सव से कम नही होता। उसका हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। भाई आया है। सास से बहू पूछती है कि माता भाई के लिये क्या भोजन बनाऊँ। सास कहती है कि कोदौं का भात उसके लिए बना लो। इस उत्तर को सुनकर वह उसकी उपेक्षा करती है और कहती है कि मैं अपने भाई के लिये 'मोतीछर भात' और गेहूँ की रोटी बनाऊँगी। भाई के प्रेम के आगे वह अपनी सास की उपेक्षा करती है। वास्तव मे यह बहू की उच्छृंखलता न होकर भाई के लिए प्रेम की तीव्रता ही है।

अनेक ऐसे गीत भी हैं जब भाई अपनी बहन के कष्ट को देखकर क्रुद्ध हो जाता है और अपने बहनोई को मार डालता है[1]। यद्यपि इस प्रकार वह अपनी बहन का अहित ही करता है, परन्तु फिर भी हमें इस बात को नही भूलना चाहिए कि इस कार्य में भाई का उद्देश्य बहन को कष्ट देने का नही है, बहन के दुःख के कारण उसे अपार वेदना है और उसी वेदना के प्रतिशोध के लिए वह अपने बहनोई की हत्या कर देता है। सावन में भाई आया है। बहन के हाथों में मेंहदी लगी हुई है, पैरों मे बिछुआ पहने हैं। उसके सामने यह समस्या है कि भाई को कैसे मिले। वह अपने शृंगार की परवाह नही करती और भाई से भेंट करती है :—

हांथन मेंहदी पांयन बिछिया कइसे मिलैं राजा बीर जी,
धोय डारौं मेंहदी उतारि डारौं बिछिया लिपटि मिलौं राजा बीर जी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बहन के हृदय में भाई के प्रति अगाध प्रेम होता है और भाई भी बहन से किसी प्रकार भी पीछे नहीं रहता।

---

१. इस गीत का उल्लेख विधवा के प्रसंग में किया जा चुका है।

अतः हम कह सकते हैं कि माता और पुत्री के विशुद्ध प्रेम के अनन्तर भाई और बहन के प्रेम का ही स्थान है।

सास और बहू —लोक-गीतों में हमें सास एक नितान्त ही कठोर शासिका के रूप में मिलती है। बहू को वह निरन्तर कष्ट देती है। बहू इतनी आज्ञाकारिणी और सहनशील नहीं कि वह हँसते-हंसते इन कष्टों को सहन करे। परन्तु सहन करने के अतिरिक्त और चारा ही क्या है? धर्म-शास्त्रों और काव्य-ग्रन्थों में वधू को सास की आज्ञाकारिणी कहा गया है, परन्तु लोकगीतों में कुछ ऐसी स्थिति दृष्टिगोचर नहीं होती। सास का बहू के प्रति जो शाश्वत सा विरोध दिखाई पड़ता है उसका मनोवैज्ञानिक कारण यह है माता अपने पुत्र के लिए अत्यन्त कष्ट सहती है, जब वह युवा होता है तो माता के प्रेम को बहू छीन लेती है और फलस्वरूप पुत्र से उसे उपेक्षा मिलती है। बहू कभी-कभी अपनी सास के विरुद्ध पति के कान भरती है इसी कारण से सास और बहू में झगड़ा हुआ करता है।

गीतों में सास केवल व्यंग-वाण ही नहीं मारती, परन्तु डण्डे की मार भी लगाती है, खाने को नहीं देती है :—

सास मारै डंडा ननद बोलै बोल जी।
रंधी मछरियाँ सीके धरी पै रोटी में नून देय।

सास उसके चरित्र पर भी सन्देह करती है और जब पुत्र विदेश से वापस जाता है तो 'किरिया' लेन को कहती है। एक गीत में यह भी उल्लेख आता है कि सास ने अपने छोटे पुत्र से बहू को मरवा डाला।

ऊपर तो सास और बहू के शाश्वत-विरोध का वर्णन मिलता है। परन्तु कुछ ऐसे चित्र भी है जिनमें बहू सास का आदर करती है। सोहर-गीतों में उल्लेख मिलता है कि उसने सास का आदर किया है और इसी के कारण उसे सुन्दर पुत्र मिला। विवाह के गीतों में भी सास

के हृदय में बड़ी लालसा और साध होती है कि वह अपनी बहू को देखेगी।

ननद भाभी--सास और बहू मे जिस प्रकार विरोध पाया जाना है उसमे किसी प्रकार ननद और भाभी मे भी विरोध कम नही है। इसका भी कारण है कि भाई और बहन एक ही माता-पिता की सन्तान होते है। भाभी के आने पर भाई का बहन के प्रति प्रेम कुछ कम हो जाता है और बहन सोचती है कि इसका कारण भाभी ही है। अतः उनमे वैमनस्य रहता है। उधर भाभी ननद को दो चार दिन का मेहमान समझ कर उसकी उपेक्षा करती है। भाभी को कष्ट देने मे ननद अपनी माता को भी सहायता देती है। एक गीतमे सास और ननद दोनों मिलकर बहू को चक्की पीसने के लिए भेजती है और वही उसे मरवा डालती है[1]। दूसरे गीत मे ननद-भावज पानी भरने जाती है। ननद सीता से अनुरोध करती है कि वह रावण का चित्र बनाए। सीता रावण का चित्र बनाती है। उधर राम से ननद कहती है कि हे भाई सीता तुम्हारे शत्रु का चित्र बनाती है। फल यह होता है कि राम सीता को वनवास देते हैं। ननद से भाभी भी अच्छी प्रकार बदला लेती है। उसे ससुराल से बुलाती नही और भाँति-भाँति से उसका अपमान करती है। एक गीत मे तो उल्लेख मिलता है कि सब लोग पुत्री की बिदा पर रो रहे हैं पर भाभी को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है, वह खड़ी खड़ी मुसकुरा रही है।

पुत्र के उत्पन्न होने पर जब ननद असहयोग करती है तो भाभी अपने पति से कहती है कि चिन्ता की कोई बात नहीं है। ननद का नेग मेरी छोटी बहन से करवा लो। उधर दूसरे गीत में बहन भाई से कहती है कि हे भाई मेरे दुःखो को भाभी से न कहना नही तो वह उन्हे कुछ

---

१. देखिए परिशिष्ट

२. लोकरीति की यह कल्पना मौलिक है।

और बढ़ाकर अपने नैहर में कहेगी और इस प्रकार वहाँ मेरी हँसी होगी। ननद और भाभी के सहयोग के कुछ गीत मिलते हैं परन्तु वे बहुत थोड़े ही हैं। एक उदाहरण इस प्रकार हैं :—

आवौ ननदी गुसाइंनि पाय तुहरे लागैं हो।
बइठौ मांझ मड़ौआ कलस मोरो गोंठौ हो ॥

देवर और भाभी—शास्त्रों और महाकाव्यों में देवर और भाभी के सम्बन्ध का बहुत ऊँचा आदर्श रखा गया है। भाभी और देवर का सम्बन्ध वहुत ही पवित्र माना गया है। देवर के लिये भाभी माता के तुल्य मानी गई है। राम बनवास के समय लक्ष्मण को वन जाने की अनुमति देते हुए सुमित्रा कहती है :—

रामं दशरथं विद्धि, मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यां अटवी विद्धि गच्छ तात यथा सुखम्[1] ॥

लक्ष्मण अपनी माता के उपदेश का अक्षरशः पालन करते है। माता के पैरों के प्रति पुत्र को अनुरक्ति होती है और उन्हें ही वह अच्छी तरह पहँचानता भी है। यही कारण है कि जब सीता के आभूषण मिलते हैं तो राम लक्ष्मण से उन्हें पहँचानने को कहते है। लक्ष्मण उत्तर देते है कि मै केयूर और कुण्डल को नहीं पहँचानता। मै तो उनके नूपुरों को ही पहँचानता हूँ क्योंकि मै नित्य उनके पैरों का अभिनन्दन करता था :—

केयूरं नेव जानामि नैव जानामि कुण्डले।
नूपुरानेव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

इस उच्च आदर्श को दृष्टि में रखकर जब हम लोक-गीतों को देखते हैं तो हमें बड़ी ही निराशा होती है। किसी भी लोक-गीत में इस पवित्र संबंध का चित्रण नहीं है। इनमें अधिकांश देवर-भाभी के अनुचित संबंधों का ही वर्णन मिलता है। संभवतः इस अनुचित सम्बन्ध का कारण नियोग प्रथा रही हो जिसमें पति की अनुपस्थिति मे देवर से सन्तानोत्पति करा

---

१. वाल्मीकि रामायण—बाल काण्ड।

ली जाती थी। नियोग-प्रथा उच्च वर्गों में तो अब समाप्त हो गई परन्तु पिछड़ी जातियों में यह विकृत-रूप में अब भी पाई जाती है। इन जातियों में पति के मर जाने पर देवर के साथ विधवा का विवाह हो जाता है। 'आदर्श-सतीत्व' के प्रसंग में इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि देवर ने अपने बड़े भाई को मार डाला और भाभी से अनुचित प्रस्ताव किया।

देवर भाभी के अनुचित सम्बन्ध इस सीमा तक पहुँच जाते है कि वे दोनों रात्रि को एक शय्या पर सोते हैं। एक गीत में भाभी देवर की सेज पर अपनी अँगूठी भूल आई है, वह देवर से मांग रही है क्योंकि उसे डर है किपति को यदि यह बात मालूम हो गई तो फिर बहुत अनर्थ हो जाएगा:—

मुँदरिया तुम्हरी सिजड़िया पै देउर भूली राति।
तुम्हरी सेज पै मुन्दरी भूलीं राति देवौ आंधी राति॥
हमकौ यादि सकारे आई जब धोये हते हांत।
जो मालुम परि जाय बलम कहं मारि सुजामै देहिं।

राम-कथा से सम्बन्ध रखने वाले कुछ लोक-गीत ऐसे अवश्य हैं जिनमें लक्ष्मण सीता को माता के समान मानते हैं:—

अरे भइआ भइआ तुम मोरे भइआ हौ रे।
हम जइबो खबरिया लेन हो सीता माता की हो।

जेठ और लहुरी—पति के बड़े भाई को ससुर के समान माना जाता है। जेठ के सामने छोटी भाभी बोल भी नहीं सकती। इन नियमों का समाज में कड़ाई से पालन किया जाता है परन्तु फिर भी लोक-गीतों मे इनके अनुचित सम्बन्धों का कुछ न कुछ वर्णन मिल ही जाता है। 'आदर्श सतीत्व' प्रसंग में वर्णन किया जा चुका है कि एक जेठ ने अपनी लहुरी के साथ अनुचित प्रस्ताव किया और वह किस प्रकार असफल

रहा। देवर-भाभी तथा जेठ और लहुरी के ऐसे सम्बन्ध कनउजी-समाज में पिछड़ी जातियों में ही मिलते हैं, उच्च वर्णों में नहीं।

ससुर और बहू—ससुर का बहू के साथ पुत्री का सम्बन्ध होना चाहिए। परन्तु लोक-गीतों में निरन्तर ऐसा ही वर्णन मिलता है कि ससुर बहू को पीटता है, उससे अत्यधिक काम करवाता है, उसका भाई विदा कराने के लिए आते समय पर्याप्त द्रव्य न लाए तो वह बहू की विदा भी नहीं करता है। बहू के प्रति ससुर का कठोर व्यवहार दहेज प्रथा के कारण भी है। कहीं-कहीं लोकगीतों में ससुर की बहू के प्रति कामुकता का वर्णन भी मिलता है परन्तु ऐसे प्रसंग बहुत ही थोड़े हैं। अन्य लोगों के व्यवहार को देखते हुए ससुर का बहू के प्रति व्यवहार अपेक्षाकृत अच्छा ही कहा जा सकता है।

पति-पत्नी—कनउजी लोक-जीवन मे पति-पत्नी का सम्बन्ध अटूट माना जाता है। यहां के लोक-गीतों में पति और पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध का बड़ा ही विशद-चित्रण हुआ है। पति-पत्नी सुख से घर में जीवन-यापन करते हैं और आधुनिक जीवन की विषमता का वहाँ नाम भी नहीं है। पति के वियोग को न सह सकने वाली स्त्री विदेश जाने के लिए उद्यत पति को रोकने के लिए इन्द्र से प्रार्थना करती है कि हे इन्द्र देव ! बरसो, एक पहर रहे रात्रि से ही बरसो जिससे पति के प्रस्थान करने का समय टल जाय और परिणाम-स्वरूप वह विदेश न जावें:—

बरसौ इंदर तुम दिउता पहर राति बरसौ रे।
टरैं जान केरी बिरिया पिया घर बिलमैं रे।

किसी स्त्री का कृषक-पति खेती के कार्य में इतना व्यस्त रहता है कि खेत छोड़कर घर में आने का उसे कोई अवसर ही नहीं मिलता। स्त्री बैल से प्रार्थना करती है कि तुम जुआँ तोड़कर घर चले आओ। इससे

पति के सर में चोट लगेगी और वह घर में दवा लगवाने के लि
अवश्य आवेगा तभी उससे भेंट हो जावेगी:—

> पांय परैं तुम्हरे सुरही के बछरा
> जुआ टोरि घर आबौ न हो ।
> जुआं के टूटे मूड़ जइए फूटि तौ
> दवा लगवइवे का आमै पिया घर हो ।

हिन्दी के एक कवि ने भी इसी भाव की एक बड़ी ही सुन्दर कवि
कही है:—

> आगि लागि घर जरिगा, बड़ सुख कीन ।
> पिय के बाह घइलवा भरि-भरि दीन ।।

इन गीतों मे अपने पति के लिए पत्नी सर्वस्व त्याग कर भी दु:
को झेलने के लिए तैयार दिखाई पड़ती है । उधर पति के हृदय
भी स्त्री के लिए कुछ कम प्रेम नही है । एक सोहर मे राम को सीता
बिना अपना जीवन व्यर्थ ज्ञात होता है :—

> सीता तुम्हारे बिन जग अधियार
> तौ जीवन अकारथ हो ।

इसी प्रकार अन्य और भी अनेक गीत हैं जिनमें दाम्पत्य-जी
का बड़ा ही मनोहर वर्णन मिलता है ।

इन प्रसगो के अतिरिक्त 'सौतों' के परस्पर कटु-सम्बन्ध के उल्ले
मिलते हैं उनका वर्णन बहु-विवाह प्रसंग मे किया जावेगा ।

बहु-विवाह—

प्राचीन-काल मे ही भारत में बहु-विवाह की प्रथा चली आ र
है । यद्यपि अब यह कुछ कम हो गई है परन्तु ऐसा नहीं कहा जा सक
कि इसका नितान्त अभाव हो गया है । आज भी स्त्री के बांझ होने
पुत्र के लिए दूसरी स्त्री के साथ विवाह कर लिया जाता है ।

प्रकार के विवाहों से "सौत" की समस्या खड़ी होती है। दोनों पत्नियों में झगड़ा होता है और जिसके कारण गृहकलह हो जाना स्वाभाविक ही है। लोक-गीतों में सौत का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। पुरुष कामुकता-वश सुन्दर स्त्री के होते हुए भी दूसरी स्त्री से विवाह कर लेता है. ऐसे भी उल्लेख लोक-गीतों में पाये जाते हैं। एक स्त्री के मर जाने के पश्चात् दूसरी स्त्री से विवाह करना तो साधारण सी बात है। परन्तु यदि पहली स्त्री के सन्तान हुई तो उसके लिए विमाता रूपी आपत्ति से बड़ी और कोई भी आपत्ति नही है क्योंकि विमाता उसे भाँति-भाँति के कष्ट देती है।

विषम-विवाह—

कनउजी-समाज मे दहेज-प्रथा के कारण विषम-विवाहों का प्रचलन हो गया है। पुत्री के विवाह में पिता पर्याप्त दहेज नही दे पाता और इसका परिणाम यही होता है कि उसे वृद्ध या बाल-जामाता मिलता है। वास्तव में दहेज-प्रथा कनउजी-समाज की प्रगति में व्यवधान बन रही है। यदि पिता के पास पर्याप्त धन न हो तो सुयोग्य कन्याओं को अच्छे वर नहीं मिलते। दूसरी ओर धनवान पिता अयोग्य पुत्री का भी सुयोग्य वर के साथ विवाह कर सकता है। दहेज के अतिरिक्त वृद्ध-विवाह का एक कारण यह भी है कि पिता पुत्री के विवाह में जामाता से द्रव्य प्राप्त कर लेता है और अपनी पुत्री को शीघ्र ही विधवा बना देता है।

लोक गीतों में वृद्ध के साथ विवाहिता स्त्री की करुण-दशा का हृदयद्रावक चित्रण हुआ है। वृद्ध के बाल सफेद हो गए हैं, सारे दांत टूट गए हैं, खांसी आती है, उसकी आकृति को देख कर स्त्री का हृदय कांप जाता है और वह अनुभव करती है कि उसे शीघ्र विधवा बन जाना पड़ेगा। पुत्री जो अपने पिता से बहुत प्रेम करती है वह भी खीझ कर कहने लगती है कि :—

माया के लोभी बापने बुढ़वा कौ ब्याह दीन्हों रे ।

इस एक ही पंक्ति में पिता के प्रति कितनी घृणा सिमट आई है ? बुढ्ढे के प्रति भी वह कम क्रुद्ध नहीं होती और उसे ढकेल देती है जिससे उसके प्राण निकल जाते हैं :—

हम दओ ढकेल सड़किया पै । मरिगओ बुढ़ौना ।

बाल-विवाह का भी लोक-गीतों में वर्णन आता है। स्त्री पूर्ण-युवती है और उसका पति बालक । स्त्री उससे प्रणय-निवेदन करना चाहती है, पर वह खेल खेलने के लिए कहता हैं। रात्रि में जब वह स्त्री के साथ लेटता है तो आधी रात में माता की याद आती है और वह रोकर माता के पास चला जाता है :—

छोटो सो बालमा मोरे आँगना में गुल्ली खेलै ।
जब हम कहैं बलमा सिजिया पै पौढ़ौ ।
बलमा भाजै रोय के सासू के संग पौढ़ै ।।

कनउजी-समाज में पर्दे की प्रथा पूर्ण रूप से प्रचलित है । उच्च-वर्गों की स्त्रियाँ तो घर से बाहर निकलती ही नहीं और घर के भी ससुर-जेठ और बड़ों के सामने घूँघट मारती हैं । पिछड़ी जातियों में भी पर्दा-प्रथा का प्रचलन है । घर पर वे ससुर-जेठ के सम्मुख घूँघट मारती है । खेत पर भी जब काम करने जाती हैं तो साथ-साथ निराई-रोपाई करने पर भी घूँघट मारे रहती हैं । घूँघट मारना घरवालों के लिए ही आवश्यक नही है, गाँव के अन्य बड़ों के सम्मुख भी वह 'लज्जा' करती है । विवाहगीतों में उल्लेख मिलता है कि जब कन्या की विदा होती है तो पालकी या डोली पर उघार पड़ा होता है । एक गीत में पर्दे का स्पष्ट उल्लेख मिलता है :—

परदा खोलि जब बेटी जू देखो छूटो नइहर को देस रे ।

स्त्री के लिए पर्दा-प्रथा का पालन करना अच्छे आचरण का प्रतीक माना जाता है । प्राचीन काल में यह पर्दा नहीं था । इस प्रथा का

प्रचलन यवन-शासन के परिणाम-स्वरूप हुआ जब कि स्त्रियों की स्थिति सुरक्षित नही थी ।

पत्र तथा संदेश--वाहन—

प्राचीन-भारत में आज की भाँति संदेश भेजने और मंगाने के साधन नहीं थे। संस्कारों में रुचना और विवाह का निमंत्रण नाई देने जाता था और इस प्रकार गीतों में पत्र का उल्लेख कम ही मिलता, है इससे अनुमान किया जा सकता है कि नाई मौखिक रूप से संदेश कह देता था। संस्कारों में विवाह के समय लग्न का पत्र अवश्य जाता था जिसे पीली चिट्ठी कहते थे। यह प्रथा आज भी प्रचलित है। इस चिट्ठी में विवाह के समय होनेवाले विविध मुहूर्तो का उल्लेख रहता है।

पत्रों का लोकगीतों में अधिक उल्लेख पत्नी का पति के पास भेजने का आता है। इसकी बड़ी ही प्राचीन परम्परा है। महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला 'नलिनी-पत्र' पर अपने प्रिय दुष्यन्त के लिए नख से पत्र लिखती है। इस परम्परा का निर्वाह निरन्तर रूप से लोक-गीतों में मिलता है। विरहिणी स्त्रियाँ अपने पतियों को अपने दुःख को लिखकर भेजती हैं और उन्हें उपालम्भ देते हुए लौट आने की प्रार्थना करती है। अब प्रश्न उठता है कि उन पत्रों को ले कौन जाता था ? इन पत्रों के ले जाने के लिए भी गीतों में उल्लेख मिलता है कि वे पत्रवाहक कौआ, कोयल आदि ही होते थे । लोक-गीतों में यह कोई विलक्षण कल्पना नहीं है । श्रीहर्ष ने भी हंस को नल और दमयन्ती के प्रेम का माध्यम बनाया है। एक गीत में कोयल से विरहिणी कहती है कि :—

कारी कोइलिया तुम बइठी हौ अम्बा की डार पै रे।
लै मोरी पाती सुनाव जाय निरमोहिया को रे।

एक विरहिणी की समझ में यह नहीं आता कि वह पत्र को किन साधनों से लिखे । वह कहती है :—

काए की करौं मैं स्याही काए की कागद हो ।

काए की करौं मैं कलम लिखौं जी से पाती हो ।

अन्यत्र एक गीत में यह भी उल्लेख आता है कि स्त्री पड़ोसी कायस्थ से पत्र लिखने का अनुरोध करती है :—

मोरे पड़ोसिया कयथवा तुमहि मोरे भैया हौ रे ।

मोरी चिठिया लिखौ समझाय के निरमोहिया कौ रे ।

खान-पान—

लोक-गीतों में विविध प्रकार की खाने-पीने की वस्तुओं का उल्लेख पाया जाता है । इन वस्तुओं से हम सरलता-पूर्वक अनुमान लगा सकते हैं कि लोगों की किन वस्तुओं के खाने की ओर अधिक अभिरुचि है । कनउजी लोक-गीतों के अध्ययन में हमें इस बात का पता चलता है कि हमारे जनपद के लोगों की रुचि सात्विक-भोजन में ही रही है और यही कारण है कि इस प्रदेश में अनेकानेक विचारकों का प्रादुर्भाव हुआ[1] । नीचे कुछ भोज्य पदार्थों का वर्णन किया जाता है, जिसका कि लोक-गीतों में बार-बार नाम आया है ।

दाल, भात, रोटी और घी :—लोक-गीतों के अध्ययन से पता चलता है कि कनउजी-समाज में इन्हीं चार वस्तुओं को आदर्श-भोजन समझा जाता है । जब भाई अपनी बहन के यहाँ जाता है तो वह उसे दाल-भात और रोटी और इन सबके साथ घी खिलाना चाहती है । सास भी उसे अनुमति दे देती है :—

राँधौ न बहुअरि मोरी मोतीछर भातू और गेहुँन की रोटी जी ।

राँधौ न बहुअरि मोरी दारि उड़्न की डारौ उइपै घी की धार जी ।

यह तो मेहमानों के लिए भोजन हुआ । सामान्यतया जौ, चना, ज्वार और मटर की रोटी का उल्लेख भी मिलता है । कौदौं और सवाँ

१. **विचारकों का उल्लेख "इतिहास" शीर्षक में किया जा चुका है ।**

का उल्लेख भी हुआ है जो कि गरीबों का भोजन है। दालों में अरहर, मूँग और मौठी का भी उल्लेख मिलता है। उपर्युक्त भोजन तो दैनिक-भोजन के अन्तर्गत आते हैं, परन्तु त्यौहारों के अवसर पर खीर, पूड़ी, पिटउआ आदि बनते हैं जिन्हें लोग बड़े चाव के साथ खाते हैं।

कनउजी-प्रदेश में सत्तू का भी अत्यधिक प्रचलन है। इसका उपयोग प्रातःकालीन कलेवा के रूप में किया जाता है। इतना ही नहीं, यात्रा, मेला आदि जाने के लिए यह आवश्यक भोज्य-पदार्थ है। अन्य वस्तुएँ जैसे पूड़ी आदि शीघ्र ही खराब हो जाती हैं परन्तु सत्तू महीनों तक चल सकता है। गरीबों के लिए सत्तू तो बहुत बड़ा अवलम्ब होता है। सत्तू के अतिरिक्त लड्डू का भी वर्णन मिलता है। जिन लड्डुओं का उल्लेख गीत में आता है उसका आशय उन लड्डुओं से है जो भुने हुए आटे और गुड़ से तैयार किये जाते हैं। फलों में नीबू, नारंगी,[2] अमरूद, अनार का बार-बार नाम आता है। मिठाइयों में पेड़ा, बर्फी, जलेबी आदि मुख्य हैं।

पेय-पदार्थों में दूध का उल्लेख बार-बार आता है। स्त्रियाँ देवी से प्रार्थना करती हुई दूध की याचना अवश्य ही करती हैं। दूध के महत्त्व का पता हमें तब चलता है जब हम देखते हैं कि आशीर्वाद में भी "दूधन पूतन फलौ" का उल्लेख मिलता है। मदिरा का प्रसंग भी हमें मिलता है। गीतों में स्त्रियाँ अपने पतियों को मदिरापान करने से रोकती हैं। लोक-गीतों में "छप्पन प्रकार के भोजन" का उल्लेख मिलता है, परन्तु स्पष्टरूप से उनके नाम नहीं बतलाये गये हैं। विवाह के समय जब ज्योनार होता है और ज्योनार-गीत गाये जाते हैं तो उनमें अनेक प्रकार के भोज्य-पदार्थों का वर्णन हम पाते हैं। एक ज्योनार गीत में कचौड़ी, पूड़ी, खस्ता, मालपुआ, रसगुल्ला, पेड़ा, इमिरती,

---

१. परिशिष्ट में यज्ञोपवीत गीत देखिए।

२. नौरंगिया का उल्लेख सोहर गीतों में मिलता है।

खुरचन, बालूसाही, कलाकंद, गुझिया, लड्डू, बर्फी, रबड़ी, जलेबी, नानखताई, मोतीचूर,बेसनी लड्डू, मठरी, पापड़, कचरी, मूली, जिमीकंद, टिंडा, परवल, मेथी, बथुआ, कुलफा, कमरख, चटनी, दालमोट, समोसे, आलू की टिकिया, पिस्ता, दही-बड़ा, अदरख की पकौड़ी, सोंठ, रायता, गाजर का हलवा, पेठा, गजक, नीबू, आम, मिर्च और टेंटी के अचार और अनेक प्रकार के मुरब्बों का उल्लेख मिलता है। अन्त में गीतकार कहता है कि छप्पन प्रकार के भोजन परोसे गए इनका कौन कवि वर्णन कर सकता है[1]। वास्तव में यह गीत आधुनिक-काल का है।

यह नहीं कहा जा सकता कि कन्नौजी लोग पूर्णरूपेण शाकाहारी ही हैं। मांस का भी वे भक्षण करते हैं जिनका कि उल्लेख गीतों में हुआ है। एक बहन भाई से कहती है कि सास छींके पर 'रँधी हुई मछलियों' के टँगे होने पर भी उसे रोटी पर नमक तक नहीं देती। अन्य गीतों में मल्लाह किसी स्त्री को प्रलोभन देता है कि तुमको मैं मछली का सुस्वादु मांस खिलाऊँगा। सोहर-गीतों में वर्णन मिलता है कि हरिणी कौशल्या से कहती है कि मांस तो तुम्हारी रसोई में सीझ रहा है, मुझे मेरे हरिण की खाल वापस कर दो[2]। मोर के मांस खाने का उल्लेख भी गीतों में मिलता है। मोर खाने की परम्परा तो अशोक के समय से ही चली आ रही है[3]।

भोजन के इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कन्नौजी लोग अधिकांश शाकाहारी ही हैं। मांस-भक्षण के प्रसंग बहुत ही कम हैं।

वस्त्र—

लोक-गीतों में अनेक वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। मांगलिक-कार्यों

---

१. **देखिये—परिशिष्ट भाग। 'ज्यौनार'**

२. **देखिये—परिशिष्ट। 'सोहर'**

३. **देखिये—'प्रियदर्शि-प्रशस्तयः'।**

मे पीले रंग के वस्त्र पहने जाते हैं। सन्तानोत्पत्ति के बाद छठी के दिन स्त्री पीले वस्त्र पहॅनती है। इसी प्रकार विवाह के समय पर वर पीला जामा पहना जाता है। भाई भी अपने बहनोई और बहन के लिए 'पीरी' अर्थात् पीले कपड़े लाता है। विवाह के समय वधू के लिए एक चूनरी नाम का वस्त्र दिया जाता है जो लाल, हरे और पीले रंग से रंगा जाता है। कन्नौजी-समाज में रंगीन वस्त्र सधवा स्त्रियाँ ही पहन सकती हैं। विधवाएँ सदैव सफेद वस्त्र ही पहनती हैं। शोक के अवसरों पर सभी लोग सफेद वस्त्र धारण करते हैं।

पुरुषों का मुख्य वस्त्र धोती है। अँगरखा, बंडी या कुरता शरीर के ऊपरी भाग पर धारण किया जाता है। गीतों में पगड़ी का भी उल्लेख हुआ है। पुरुष अँगौछे का भी प्रयोग करता है। पटुका का उल्लेख सावन तथा विदा-गीतों में बराबर मिलता है। स्त्री के वस्त्रों में लहँगा साड़ी, ओढ़नी, धोती, चोली अंगिया झुलइया आदि का उल्लेख मिलता है। लोक-गीतों में रेशमी वस्त्रों का भी उल्लेख मिलता है। ओढ़ने के लिए पिछौरा, रजाई और चादर का नाम आता है और बिछान के लिए दरी, गद्दा, कालीन और जाजम का।

आभूषण—

कन्नौजी लोग आभूषण-प्रिय होते हैं। पुरुषों में अंगूठी, खड़ुआ, (निम्न वर्ग के लोग पहनते हैं) कानों की बाली, गले का कंठा और जंजीर आदि लोक-प्रिय हैं। स्त्रियाँ तो स्वभाव से ही आभूषण-प्रिय होती हैं। उनकी आभूषण प्रियता से पति हैरान रहता है। जब देखो तब पत्नी किसी न किसी आभूषण के लिए पति से आग्रह करती है। स्त्रियों के आभूषणों में नथुनी, बुलाक, कान की बाली, पुंगड़िया, हार, सुतिया, टंड़िया, कंगन, कड़ा, छड़ा, अँगूठी, करधनी, पायजेब' बिछुआ, अनौटा आदि का उल्लेख मिलता है। आधुनिक लोकगीतों में आधुनिक आभूषणों का उल्लेख भी मिलता है।

प्रसाधन—

मनुष्यमात्र की शृंगार करने की प्रबल भावना सदा से रही है। जिस समय जो साधन इसके लिये उपलब्ध होते हैं उन्ही का उपयोग किया जाता है। लोक-गीत बहुत ही पुराने है, अतः तत्कालीन समाज की साज-सज्जा भी बहुत ही पुरानी है। लोक-गीतों में प्राचीन साज-सज्जा के पर्याप्त प्रसंग मिलते हैं। पान खाकर स्त्री और पुरुष के ओंठ रचने का उल्लेख अनेक गीतों मे हुआ है।

> पाना पचासी की बिरिया लगाई,
>
> रचै वाको सइयां रचावै वाकी धनियां।

गीतों में सुरमा और काजल लगाने का भी उल्लेख मिलता है। स्त्रियाँ अपने लम्बे केशों को कंघी से काढ़ती हैं और सरसों अथवा नारियल का तेल लगाती हैं। दाँतों में मिस्सी, मस्तक पर टिकुली या बेंदी और मस्तक में सिन्दूर लगाने का भी उल्लेख मिलता है। पैर में महावर और हाथ में मेंहदी लगाने का सामान्य प्रचलन है। कनउजी लोक-गीतों में आधुनिक प्रसाधनों का उल्लेख भी मिलता है।

आमोद-प्रमोद—ग्रामीण जनता के आमोद- प्रमोद के साधन मेले और खेल तमाशे हैं। आसपास होनेवाले मेलों में ग्रामीण लोग जाते है और भांति-भांति की दुकानों को देखकर अपने मन को प्रसन्न करते हैं। मेले विशेष रूप से गंगा स्नान के अवसर पर अथवा किसी देवी-देवता के स्थान पर लगते हैं। इनमें खेल-तमाशे भी आते हैं और इन्हें ग्रामीण लोग देखते हैं। मेलों में यह लोग 'जवारे' ले जाते हैं। 'जवारे का अर्थ 'जौ से है। किसी देवता के स्थान पर जौ बोये जाते हैं और नियत समय पर यह जौ उखाड़कर देवता को साथ लेकर मेले मे सिराये जाते हैं। मेला में जाते समय ग्राम की स्त्रियाँ और पुरुष इकट्ठा

होते हैं। स्त्रियाँ देवी आदि के गीत गाती हुई तथा पुरुष लाठी और तलवार को घुमाने आदि की प्रतिभा दिखाते हुए चलते हैं। इस प्रकार देवता की पूजा भी होती है और साथ ही साथ ग्रामीणों का मनोरंजन भी। खेल-तमाशेवाले ग्रामों में आकर ग्रामीणों का मनोरंजन कराते हैं। होली बहुत बड़े हर्ष का त्योहार है और इसमें ग्रामीण लोग ढोलक, झीका के साथ फाग गाते हैं। निम्नवर्ग की स्त्रियां और पुरुष ऐसे अवसर पर नृत्य भी करते हैं।

लोक-गीतों में मनोरंजन के लिए 'पसासारी' खेलने के भी प्रसग आए हैं। एक गीत में लक्ष्मणजी 'पंसासारी' खेल रहे हैं:—

लछिमन खेलैं पंसासारी राम खिलावैं रे।
सीता भउजी ठाढ़ी तीर खेल कहं देखैं रे।

शिकार खेलने का भी उल्लेख अनेक गीतों में हुआ है। एक गीत में बहन कहती है कि मेरा भाई शिकार खेलने के लिए जा रहा है और मैं उसे आशीष देती हूं:—

मोरे भइआ चले खेलन सिकार लए धनुबाना हैं रे।
भइया बहिनी है देत असीस देवी करैं रच्छा रे।

धार्मिक जीवन तथा विश्वास—

धर्म की परिभाषा करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि 'जिससे इस लोक में अभ्युदय तथा परलोक में मोक्ष प्राप्त हो वही धर्म है[1]। अन्यत्र कहा गया है कि धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध यह धर्म के दस लक्षण हैं[2]। इस तरह हम

१—यतोऽभ्युदये निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।
२—धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकम् धर्म लक्षणम् ॥

देखते हैं कि धर्म बड़ा ही व्यापक शब्द है। धर्म के इस व्यापक रूप के समझने की शक्ति सामान्य जनता मे नहीं है। वह तो देवी-देवताओं की पूजा करना, उनका स्मरण करना और व्रतों का रखना ही धर्म समझती है। धर्म के इसी रूप को देखकर कहा जा सकता है कि कन्नौजी लोगों का जीवन धर्ममय है। अपने प्रत्येक कार्य में चाहे जुताई हो या बुआई, रोपाई हो वा कटाई सभी में अपने इष्ट को वे नहीं भूलते। उन सबका ये लोग भजनों द्वारा गान किया करते है।

लोकगीतों में पंचदेवोपासना का भी उल्लेख मिलता है। किसी भी मांगलिक-कार्य में पहले पंचदेवोपासना होती है। कन्नौजी लोग बहुत ही उदारमना होते हैं। वे सभी देवताओं की वन्दना करते हैं। देवीताओं की संख्या इतनी है कि वे वेचारे उनका नाम भी नही जानते। एक गीतकार कहता है कि:—

सब कौ हम गामैं सबै मनामैं सबके न जानैं हम नायँ।

कन्नौजी क्षेत्र में वैष्णव, शैव, शाक्त, रामानन्दी, कबीरपंथी आदि सभी मतों के मानने वाले मिलते हैं। परन्तु इस क्षेत्र में सबसे अधिक राम के उपासक हैं। राम के उपासक का आशय यहाँ यह है कि अन्य देवताओं की उपासना करते हुए भी वे लोग रामचन्द्र को प्राथमिकता देते हैं। राम को वह स्रष्टा मानते हैं। एक गीत में उल्लेख आता है कि :—

पहिले हम सुमिरैं रामचन्द्र कौ जिन्ने पिंडी तौ दई है बनाय।

राम की कथा को आधार बनाकर सैकड़ों भजन मिलते हैं जिसमे पृथ्वी का उद्धार करनेवाले, पापों का नाश करने वाले, दीनों के नाथ ओर दुष्टों के दलन करने वाले रूप का ध्यान किया गया है। राम नाम के स्मरण को भी महत्त्व दिया गया है। कृष्ण को भी भगवान् के रूप में माना गया है। लोक-गीतों में कृष्ण का गोप-गोपियों के साथ क्रीड़ा करनेवाला, गोचारण करनेवाला तथा नन्दयशोदा और ग्वालों को

आनन्द देनेवाला रूप तो चित्रित है ही साथ ही साथ असुरों का संहारक महाभारत में अर्जुन के सहायक तथा उपदेशक का रूप भी मिलता है। अनेकों लोक-गीत ऐसे हैं जिनमें होली के प्रसंग में कृष्ण की विविध लीलाओं तथा क्रीड़ाओं का उल्लेख मिलता है। भजनों मे कृष्ण के महाभारत में दिए गए युद्ध-उपदेश का भी उल्लेख मिलता है।

शिव की उपासना भी की जाती है और भजनों तथा जांत के गीतो में गौरा का विवाह और असुरों के संहार आदि का उल्लेख मिलता है शिव की भी ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठा की गई है। शीतला, दुर्गा, काली, फूलमती, जहरा देवी, ज्वाला देवी आदि की भी पूजा की जाती है जिनका उल्लेख देवी के गीतों में मिलता है।[1]

ग्रामीण लोग अधिकांश अशिक्षत हैं, अतः वे लोग भूत-प्रेतों मे भी विश्वास करते हैं और इनसे भयभीत रहते हैं। उनका विश्वास है कि ये भूत-प्रेत लोगों को कष्ट देनेवाले होते हैं, अतः इनको प्रसन्न रखने से ही भला है। जखई इन भूतों का सरदार माना जाता है। इसकी पूजा बड़ी धूम-धाम से की जाती है और इसकी वन्दना में जो गीत गाये जाते है उन्हें 'जस' कहते है। मुसलमानों के साथ रहते-रहते इन लोगों पर उस सभ्यता का भी प्रभाव पड़ा है। मनुष्य पर जब संकट पड़ता है तो वह उचित-अनुचित का विवेक खो देता है और यही कारण है कि कन्नौजी लोगों पर जब कोई संकट आता है और वे बीमार होते है अथवा उन पर भूत का प्रकोप होता है तो वे सैयद और पीर की भी पूजा करते हैं। नगर या ग्राम के देवता की भी वन्दना की जाती है और उसका नाम स्मरण किया जाता है :—

एही नग्र की भुइयाँ भमानी तुम्हरे लेयं हम नाँव।

यह तो सगुण उपासना का विवेचन हुआ परन्तु कुछ ऐसे गीत भी

---

१. देखिये—परिशिष्ट।

पाये जाते है जिनमें निर्गुण की उपासना की जाती है। गीतकार सगुण-उपासना में सन्देह करता हुआ कहता है :—

भगमन कइसे तुम्है रिझामै।
नाम अपार तुम्हारे सामी किन मैं ध्यान लगामै।
व्यापक आपु फूल मूरति मैं कइसे तुम पै तुम्है चढ़ामैं।
पालन करत आप दुनियाँ को फिरि का भोग लगामैं।
कर पग सीस नही धड़ तुम्हरे अब हम चन्दन कहाँ लगामै।
रामचरन है मूढ़ मति तुम बिन किस बिध दरसन पामै।
झम्मन रटन रात-दिन तुमको निरंकार मिलिहौ केहि ठामै।

भाग्यवाद—

लोक-गीतों मे भाग्यवाद बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है। भाग्य की प्रबलता और कम की दुर्निवारता का वर्णन इन गीतों में बड़ी मार्मिक रीति से हुआ है। कर्म की रेखा अमिट है, उसके मिटाने की सामर्थ्य किसी मे नहीं है। इस भाव का वर्णन एक गीत में मिलता है। गोपी-चन्द के जन्म के अवसर पर ज्योतिषी कहता है कि यह बालक योगी हो जायगा तो माता कहती है कि हे ज्योतिषी! तुम्हारे पोथी-पत्रे में आग लग जावे। तब ज्योतिषी उत्तर देता है कि कागज को फाड़कर फेंका जा सकता है पर भाग्य को नहीं मेंटा जा सकता। ब्रह्मा ने जो लिख दिया उसे कौन मेट सकता है :—

कागद होय रानी फारि के फेकैं।
करम न मेटो जाय मोरे रामा।
लिखनवाले तो बरम्हा रानी।
उनको लिखो को मेटै मोरे रामा॥

इसी प्रकार अन्य गीतों में भी भाग्यवाद का बार-बार प्रसंग आया है।

र्थिक जीवन—

लोक-गीतों में यत्र-तत्र जनता की आर्थिक-अवस्था का भी उल्लेख ा जाता है। इन उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन ाज अत्यन्त समृद्ध था। सामान्य जनता के पास खाने-पीने के लिए ल के वरतनों तक का अभाव होता है, परन्तु गीतों में खाने के लिए ा के थाल और पीने के लिए भी सोने के गड़ुए का ही प्रयोग किया ा है :—

सोने के थारन भुजना परोसे जेमैं सिरिक्रस्न जिमामैं राधा प्यारी।
सोने के गड़ुआ गंगाजल पानी पियै सिरिक्रस्न पियामैं राधाप्यारी।

शयन करने के लिए भी चन्दन के पलग और उस पर पुष्पो की ा का ही उल्लेख मिलता है :—

फूलन बारी की सेजा बिछाई सोमै सिरिक्रस्न सुआमैं राधा प्यारी।

इन गीतों में विविध भोज्यपदार्थों का भी वर्णन होता है। बारात आने पर जिन अनेक भोज्यपदार्थों का गीतों मे उल्लेख मिलता है[1] से अनुमान किया जा सकता है कि जनता का आर्थिक-स्तर बहुत व है। यह तो रही गीतों की बात परन्तु वास्तविकता यह है कि इस श की जनता की आर्थिक-स्थिति अच्छी नही है। लोग भरपेट भोजन र पहनने के लिए मोटे कपड़े बड़ी कठिनता से पाते है।

तनीतिक-जीवन—

लोक-गीतों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि मुगलकाल का ान बड़ा ही क्रूर था। किसी की प्रतिष्ठा सुरक्षित नही थी। रास्ते चलनेवाली स्त्रियों पर मुगल लोग आक्रमण करते थे और उन्हे अपने त:पुर में ले जाते थे। गृहस्थों के घर पर आक्रमण करके भी मुगल ा कन्याओं को छीनकर उनसे विवाह कर लेते थे। स्त्रियों के साथ विहार के सम्बन्ध में अनेकों गीत मिलते हैं। एक गीत में एक ग्रण-कन्या किसी पुरुष से अपनी रक्षा की प्रार्थना करती हुई कहती

[1] देखिए परिशिष्ट

है कि मुगलों ने मेरे भाई और पिता को मार डाला है। मैं उनके डर से जंगल में छिपी हूँ। तुम मेरी रक्षा करो :—

जाति हमारी बाम्हन है यहि रन बन मैं।
दूल्हा मुगिल के डरते दुबी हौ यहि रन बन मैं।
मारि डारे भइया औ बाप तौ यहि रन बन मै।
दूल्हा मुगिल के डर ते दुबी यहि रन बन मैं।

वह वीर-पुरुष उस स्त्री को अपने घोड़े पर बिठा लेता है। परन्तु मुगलों के उत्पात के कारण कहीं भी जाना कठिन है। मार्ग में वह पचास मुगलों द्वारा घेर लिया जाता है, पर वह सबको मृत्यु के घाट उतारता है और उस अबला का उद्धार करता है :—

दूल्हा काढ़ि लई तलवार तौ यहि रन बन मैं।
ठाढ़े इक ओर मुगिल पचास तौ यहि रन बन मैं।
दूल्हा ठाढ़े इक ओर अकेले तो यहि रन बन मैं।
जूझे मुगिल पचास तौ यहि रन वन मैं।

एक दूसरे गीत में मुगलों के द्वारा किसी व्यक्ति का घर घेर कर उससे लड़ने का वर्णन मिलता है। बहन कहती है कि हे भाई ! जल्दी-जल्दी भोजन करो, क्योंकि लड़ने के लिए मुगल बाहर खड़े हैं :—

बिरना जल्दी-जल्दी जेमौं बलइयाँ लेउं वीरन।
बिरना मुगल लड़ाई कौ ठाढ़े बलइयां लेउं वीरन॥

आल्हा-गीत में भी राजनीतिक-स्थिति का चित्रण हुआ है। उस समय एक राजपूत की कन्या का दूसरे राजपूत द्वारा अपहरण साधारण सी बात थी। एक राजा का दूसरे सामन्तों तथा छोटे राजाओं से कर लेने का उल्लेख भी इसमें मिलता है। आल्हा में विवाह तथा कर के विषय को लेकर ही विविध युद्ध होते थे।

पंचम अध्याय

'कनउजी लोक-गीतों का साहित्यिक मूल्यांकन'

'कनउजी लोक-गीतों का साहित्यिक मूल्यांकन'

गीतों के साहित्यिक मूल्यांकन करने के पूर्व हमें पहले यह स्थापना करनी है कि लोक-गीत साहित्य की कोटि मे आते हैं अथवा नही। इसकी यहाँ इसलिए आवश्यकता है क्योंकि अब तक लोक-गीत बहुत ही उपेक्षित रहे है और उन्हे गंवारू-गीत ही समझा जाता रहा है। इधर कुछ वर्षों से लोगों का ध्यान इनकी ओर अवश्य गया है। अब भी लोग शिष्ट-काव्य को ही महत्त्वपूर्ण समझते हैं, लोक-गीतों को नहीं। पर लोक-गीतों में साहित्यिक गीतों के समान ही उच्च कोटि की भावनाएँ मिलती है।

साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ ने रचनात्मक वाक्य को काव्य[1] की संज्ञा दी है। इस परिभाषा से लोक-गीत काव्य की कसौटी पर खरे उतरते हैं, क्योंकि गीत कभी न छीजनेवाले रस के सोते होते है। पाश्चात्य कवि वर्ड्सवर्थ कविता की परिभाषा करते हुए कहते है कि 'कविता बल-पूर्ण भावों की अपने आप उमड़ने वाली उमग है'[2]। वस्तुतः देखा जाय तो वर्ड्सवर्थ की परिभाषा लोक-गीतों के लिए ही उपयुक्त हो सकती है। शिष्ट-काव्य में अपने आप उमड़ने वाली उमंग कहाँ मिल सकती है? लोक-गीतों में स्वाभाविकता सबसे बड़ा गुण होता है, अतः वह उच्चकोटि की कविता की श्रेणी मे आ जाते है। शिष्टकाव्य मे आनन्द और रस को प्राप्त कर कुछ शिक्षित लोग ही प्राप्त कर सकते हैं पर

---

१. **वाक्यं रसात्मकं काव्यम्—साहित्य-दर्पण।**

२. Poetry is the spontaneous overflow of powerful emotions. 'Wordsworth.'

लोक-गीतों का रस और आनन्द शिक्षित और अशिक्षित दोनों के लिए सुलभ होता है ।

गीतों के मूल्यांकन करते समय दो दृष्टिकोणों से विचार किया जाता है । पहला दृष्टिकोण है भाव-पक्ष का और दूसरा कलापक्ष का । कनउजी लोक-गीतों पर भी इसी क्रम मे विचार किया जावेगा ।

कनउजी लोक-गीतों में भाव-पक्ष

वास्तव मे कविता मे भावपक्ष ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है । इस भावपक्ष के अन्तर्गत रसपरिपक और भाव-सौन्दर्य आता है । आगे इसी क्रम मे विचार किया जाता है ।

रस-परिपाक :—

कनउजी लोक-गीतों मे शृंगार और करुण-रस की प्रधानता है । वीर तथा वात्सल्य के भी उदाहरण मिलते है परन्तु वीभत्स, रौद्र और भयानक रसों का नितान्त अभाव है । जब स्थायी भाव विभाव, अनुभाव और संचारी-भाव के संयोग[1] से परिपक्वावस्था को प्राप्त होता है तो उसे रस कहते है । गीतों में रस परिपाक' पर इसी दृष्टि से विचार किया जायगा ।

शृंगार-रस—

शृंगार के दो प्रकार होते है—संयोग और विप्रलम्भ । गीतों मे दोनों का वर्णन मिलता है । शृंगार के वियोग-पक्ष की अभिव्यक्ति मे अधिकांश कवियों ने अपने को रमा दिया है । लोक-गीतों में भी विरह का सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा हृदय-ग्राही वर्णन प्रचुरता से मिलता है । बारहमासा का विषय केवल विरह-वर्णन ही होता है । प्रत्येक मास मे विरहिणी की दशा का

---

१. विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः—नाट्य शास्त्र ।

दिग्दर्शन इनमें कराया जाता है। इन विरह वर्णनों में सुपरिचित उद्दीपन लिये गये हैं। विप्रलम्भ का एक उदाहरण देखिए—

फागुन मास ऋतु लागी री सजनी सब सखि होरी खेलैं।
हमरे तौ कस्न विदेस में छाये हम होरी कइसे खैलैं ॥

सखियां होली खेल रही हैं, यह देखकर उसे पति की याद आ जाती है। इसमे नायिका पति के साथ होली खेलना चाहती है, अतः यही 'रति' स्थायीभाव हुआ। नायक आलम्बन और नायिका आश्रय हुई। सखियों का होली खेलना और फागुन का महीना ये उद्दीपन हुए। पति को याद करना स्मृति संचारी हुआ। यह कहना कि 'हम होली कैसे खेलें' अनुभाव हुआ। अतः यहाँ रस की पूर्ण निष्पत्ति हो गई।

वियोग पक्ष का एक और उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है:—

की हो दुलहा रामा अमवा लुभाने की गए रहा भुलाय।
कब से रसुइया लए हम बइठी हेरौं में इकटक राह।
दुलहिन रनिआं न अमवा लुभाने ना गए रहा भुलाय।
बाबा की बगिआ कोयल इक बोलै कोयल सबद सुनैं ठाड़े।
चिठिआ लिखि इक पठई दुलहिन दीजौ कोयलिआ के हाँथ।
थोरी देर बोल न बोलौ मेरी कोयल प्रभु मोर जीमन कौ ठाड़े।
चिठिआ एक लिखि पठई कोयलिआ दीजौ दुलहिन के हाँथ।
मोरी अइसी बोली बोलौ कोयल लेव न दूल्हा बिलमाय।

नायक अन्यमनस्क होकर घर से बाग में चला जाता है और कोयल की कूक सुनकर वही रम जाता है। नायक के लिए नायिका भोजन लिए एकटक राह देख रही है। उसे मालूम होता है कि कोयल ने उसके पति को 'बिलमा' लिया है। कोयल के बाल को अपने और नायक के बीच की बाधा समझकर कोयल से वह प्रार्थना करती है कि कुछ देर के लिए वह न बोले। इस गीत में नायिका की आकुल-प्रतीक्षा 'रति' स्थायी

भाव है। नायक आलम्बन और नायिका आश्रय है। आने में विलम्ब उद्दीपन और एकटक राह देखना अनुभाव है। कोयल की बोली से नायक बिलम जाता है अतः उसे आशंका जनित चिन्ता होती है। यह चिन्ता संचारी भाव हुआ। अतः यहाँ शृंगार रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई।

गीतों में विरह का बड़ा ही विशद वर्णन हुआ है पर यदि सब गीतों में रस-निष्पत्ति के सहायक सभी अंगों को देखा जावे तो हमें प्रायः निराश ही होना पड़ता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि शास्त्रीय-दृष्टि से ये गीत चाहे बहुत खरे न उतरें पर श्रोता को तो ये रस से सराबोर कर ही देते हैं। इन गीतों मे विहारी के समान ऊहात्मक वर्णन नहीं मिलते [1] पर स्वाभाविकता का सर्वत्र ही साम्राज्य रहता है।

करुण-रस—

कनउजी गीतों में करुणा की धारा सतत प्रवाहित होती है। स्त्रियों के गीतों में तो करुणा का सागर ही उँडेल दिया गया है। करुण-रस के गीतों के अतिरिक्त शृंगार, वात्सल्य और वीर आदि रसों के गीतों मे भी करुणा किसी न किसी रूप में अवश्य मिलती है। इससे भवभूति की प्रसद्धि उक्ति, एक करुण-रस ही निमित्त भेद से पृथक्-पृथक् परिवर्तित रूपों में आश्रय लेता है,[2] पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। करुण-रस का एक अत्यन्त प्रसिद्ध अन्तर्प्रान्तीय गीत है। इसमें उल्लेख आता है कि रानी कौशल्या राम की खंजड़ी की खाल के लिए हिरन को मरवाती हैं। हिरनी रानी से प्रार्थना करती है कि उसे खाल दे दी

---

१. इत आवत चलि जात उत, चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासन साथ॥
'विहारी सतसई'

२. एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्-भवभूति : 'उत्तररामचरित'।

जावे जिसे कि पेड़ पर टाग कर वह देखे और मन को समझावे कि हिरन अभी जीवित है। अन्त में खाल की खंजड़ी बजती है और उसके बजने पर हिरनी के मर्म पर आघात होता है। वह बेचारी अन्दर ही अन्दर तड़पती है :—

जब जब बाजै खंजड़िआ सबद सुनि सनकै हो।
हिरनी दउरि ढकुलिआ के तरे हिरना कौ बिसूरै हो।

यहाँ हिरन आलम्बन और हिरनी आश्रय है। खंजड़ी का शब्द उद्दीपन और विसूरना अनुभाव है। पति का याद आना 'स्मृति' संचारी है। अतः यहाँ करुण-रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई। इस गीत का स्थायी-भाव शोक वियोग-जन्य न होकर इष्टनाश-जन्य है।

एक गीत में स्त्री का पति मर गया है, न तो मायके में और न ससुराल में ही कोई आश्रय देनेवाला है। अतः वह अपने दुःख की अभिव्यक्ति करती है :—

बिगरी प्रभु नाथ तुम्हारे बिन हमरी।
नइहर मैं जो बिरना होते उनहूँ की करती आस।
ससुरे मैं जो दिउरा होते उनहूँ की करती आस॥

इस गीत में प्रिय की मृत्यु के कारण 'शोक' स्थायी-भाव है। 'मृतक-पति' आलम्बन तथा 'विधवा' आश्रय है। 'आश्रयहीनता' उद्दीपन तथा दुःख की अभिव्यक्ति करना अनुभाव है। इस अवस्था में अपने दाम्पत्य-जीवन की याद आना 'स्मृति' संचारी है। अतः यहाँ करुणरस की पूर्ण निष्पत्ति हुई।

वीर-रस—

स्त्रियों के गीतों में वीर-रस का अभाव है। वास्तव में उनका हृदय बड़ा ही कोमल तथा स्निग्ध होता है। अतः उनसे वीर-रस-युक्त भावों की अभिव्यक्ति कैसे हो सकती है? दूसरी ओर पुरुषों के अनेक गीत हैं जिनमें वीर-रस की अपूर्व छटा देखने को मिलती है। वीर-रस से युक्त

गीतों में आल्हा सर्वप्रमुख है। आल्हा वीर-रस से सराबोर होता है। इसकी एक-एक पंक्ति कायरों के हृदय में भी उत्साह भर देती है। कभी कभी तो ऐसा तक सुना गया है कि आल्हा के युद्ध को सुनते-सुनते ग्रामीणों में इतना उत्साह उत्पन्न हो जाता है कि वे एक दूसरे से लड़ाई कर बैठते है। इस कथन की सत्यता मे सन्देह है परन्तु इससे यह तो अर्थ निकाला ही जा सकता है कि आल्हा में वीर-रस की बहुत ही अधिकता होती है। आल्हा-गीत का कुछ अश यहाँ दिया जाता है :—

जइसे भिड़हा भेंड़न पइठै, जइसे सिंह बिड़ारै गाय।
तइसेइ रुपना है दंगल मैं, धमकी धौंस दिखाउत जाय।
बहुत तौ छत्री अइसे भाजे, झपटि के खिड़की मैं कढ़े जाय।
खलबल परि गओ है दंगल मे, ऐसी गवड़ी दई मचाय।

इस गीत मे 'शत्रुओं के मारने का 'उत्साह' स्थायी-भाव है। 'शत्रु' आलम्बन तथा 'रुपना' आश्रय है। 'सजे-धजे शत्रु तथा रण-क्षेत्र' उद्दीपन है। 'तलवार चलाना और धमकी देना अनुभाव है। 'शत्रुओं के मारने मे हर्ष और गर्व का' अनुभव करना' संचारी है अतः यहाँ वीररस की पूर्ण निष्पत्ति हुई है।

आल्हा गीतो के अतिरिक्त रामायण और महाभारत आदि के कथानकों को लेकर रचे हुए गीतों में भी वीर-रस मिलता है। नीचे महाभारत का एक गीत दिया जाता है :—

ताल बजाय भिम्मा दहलानो।
ताल बजाय भिम्मा दहलानो बादर सो घहरानो।
फूलो अंग भओ अब दूनो तब कीचक मन में घबड़ानो।
भिम्मा जोधा यों उठि बोलो भेद ना तुमने जानो।
दोनो लड़त मस्त जइसे हाँथी भुज गहि भिम्मा तानो।
अइसी पटकि मारो धरनी मैं कढ़त प्रान कीचक ठहनानो।

इस गीत में 'भीम का कीचक को मारने का उत्साह' स्थायी-भाव, कीचक' आलम्वन तथा 'भीम' आश्रय है। 'रणक्षेत्र' तथा 'कीचक को देखना' उद्दीपन हैं। 'ताल ठोंकना', 'भुजाओं मे उठा लेना' और यह कहना कि 'तेरा काल निकट आगया है, अनुभाव हैं। 'मारने से हर्ष और गर्व का होना' संचारी है। अतः इसमें भी वीर-रस की पूर्ण-निष्पत्ति हुई है।

शान्त-रस –

वृद्ध और वृद्धाएं कुछ ऐसे भी गीत गाती है जिनमें संसार की निःसारता और अनित्यता का उल्लेख होता है। प्राणी की मृत्यु का विषय लेकर भी शान्तरस की धारा बहाई जाती है। मृत्यु ऐसी घटना है जो शोक करने का विषय होने के साथ ही मनुष्य को एक ऐसा अवसर देती है जिससे वह जीवन की क्षणभंगुरता समझ कर भगवान् में अपना मन अनुरक्त करे। इसी आशय का गीत देखिए :—

अब तुम जइऔ कउन बाना प्रानी।
पांच जने मिलि लैके चले हैं ऊपर चद्दर तानी।
बीनि लकड़िआं फूँकि दओ है जरन लगी जइसे होरी।
हाड़ जरैं जइसे चन्दन लकड़ी बार जरैं जइसे घास।
देह जरत है कंचन अइसी आउत बास कुबास।

इस गीत में 'मृत्यु के कारण' निर्वेद स्थायी भाव है। मृत्यु से संसार की अनित्यता का ज्ञान होना आलम्बन तथा देखनेवाला 'आश्रय' है। 'लकड़ियों, बालों और मांस का जलना' उद्दीपन तथा निर्वेद[1] और मति आदि संचारी हैं। अतः इसमें शान्त-रस की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। देवी के गीतों में भी शान्त-रस मिलता है।

उपर्युक्त रसों के अतिरिक्त वात्सल्य और हास्य-रस के भी कुछ

१. **निर्वेद स्थायीभाव होता है और साथ ही संचारी भी।**

स्थल मिलते हैं। बिदाई के गीतों में वात्सल्य और करुण का मणि-कांचन संयोग हुआ है।

भाव-सौन्दर्य—

अशिक्षित ग्रामीण जनता सरल स्वभाव की होती है। उनके हृदय में छल-छद्म पास भी नहीं फटकता। जिस प्रकार ग्रामीण लोग व्यवहार में छल-छद्म रहित हैं उसी प्रकार अपनी वाणी की संगीत-मय-अभिव्यक्ति में भी। इन गीतों में न तो अलंकार का चमत्कार होता है और न उक्ति-वैचित्र्य ही। पर हाँ, उनमे एक ऐसी वस्तु होती है जो शिष्ट-काव्य में भी दुर्लभ होती है, वह है उत्कृष्ट भावों की सहज अभिव्यक्ति। ये गीत भाव-सौन्दर्य के विशाल-भण्डार हैं। गीत की एक-एक पंक्ति और एक-एक शब्द में भावों की अनुपम छटा देखने को मिलती है। इनमें रस-व्यंजना करनेवाले अनेकों भाव भरे पड़े हैं। यहाँ पर कुछ भावात्मक स्थलों के उदाहरण दिए जायेंगे।

एक स्त्री का पति परदेश चला गया है। वह उसके विरह से अत्यन्त व्याकुल है और उसका दिन-रात स्मरण करती है तथा उसके पास संदेश भेजना चाहती है, पर कोई संदेशवाहक नही मिलता। वर्षाऋतु के आने पर काले मेघ छा गए हैं। मेघों को देखकर वियोग उद्दीप्त होता और वह मेघों से कहती है.—

अरे अरे कारी बदरिआ तुमहिं मोरी बदरी हो।
बदरी जाय बरसौ उइ देस जहाँ पिया छाये हैं हो।

स्त्री अब सन्देश भेजना अनावश्यक समझती है। उसे विश्वास है कि जिस प्रकार मेघों को देखकर मुझे पति की स्मृति आ गई है और विरह उद्दीप्त हो गया है उसी प्रकार मेघों को बरसते हुए देखकर पति को भी मेरी स्मृति हो जाएगी और वह वहाँ से मुझसे मिलने के लिए चल देगा। 'बरसने' से दूसरा भाव यह भी हो सकता है कि बूँदों के

बरसने से पति को नायिका के विरह मे गिरते हुए आँसुओं का भी स्मरण हो आयेगा। इन पक्तियों का घनानंद की दो पंक्तियों से भाव-साम्य दर्शनीय है:—

घन आनन्द जीवनदायक है कछू मेरियौ पीर हिये परसौ ॥
कबहूं व बिसासी सुजान के आगन मो अंसुवान कौ लै बरसौ ॥

ऊपर के गीत मे 'अरे' शब्द के दुहराने से हृदय की व्याकुलता और 'तुमहि मोरि बदरी' कहने से नायिका की असहायता प्रकट होती है। उसकी बात सुनने को यदि कोई है तो केवल 'बदरी' ही। स्त्री के विश्वास के अनुसार पति को 'बदरी' के देखने से स्मरण हो आता है और यह मिलन के लिए आतुर होकर घर आता है। स्त्री द्वार बन्द किए हुए सो रही है। पति ने द्वार खटखटाया। स्त्री ने पूछा कि तुम कुत्ते हो या बिल्ली अथवा ससुर के पहरेदार ? पति उत्तर देता है:—

ना हम कुत्ता बिलइआ ना ससुर पहरुआ हो।
धनि हम ओइ तुम्हरे सजनवाँ बदरी बुलाये हो।

'बदरी बुलाये हो' कैसा सुन्दर भाव है। कालिदास ने भी वर्णन किया है कि मेघ, परदेशी लोगों को, जो अपनी पत्नियों की वेणी खोलने के लिए उत्सुक है, घर जाने की प्रेरणा देता है[२]। इस गीत में स्वाभाविकता के साथ बड़ी ही प्रभावोत्पादक बात कह दी गई है।

घिरी घटाओं को देखकर एक विरहिणी को अपने पति की याद आ जाती है और वह वियोग-दुःख से दुःखी होकर आँसुओं को रोकने में

---

१. इसी भाव का गीत त्रिपाठी जी के संग्रह में भी है, लेखक ने अपने प्रदेश के गीतों के निजी संग्रह से यहां उद्धरण दिया है।

२. यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानाम्।
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥ मेघदूत।

असमर्थ हो जाती है। घूंघट के अन्दर ही उसके आँसू ढुलक पड़ते हैं। इसी भाव का एक गीत इस प्रकार है :—

कउन बदरिआ उनई रसिआ
कउन बरसि गए मेंह
घुंघट बदरिआ उनई रसिआ
गालन बरसि गए मेंह।

जिस प्रकार घटाओं के घिरने पर वर्षा होती है उसी प्रकार वधू के घूँघट निकाल लेने पर स्मृतिजन्य आँसू बरस पड़ते हैं। इसमें यह भाव भी छिपा है कि लज्जाशीला वधू अपने दुख को किसी पर प्रकट भी नहीं होने देना चाहती। जब आँसू छलछला आते हैं तो उन्हें छिपाने के हेतु वह घूंघट डाल लेती है, जिससे कि आँसुओं का गिरना कोई न जान सके। शिष्ट-काव्य में कवियों का ध्यान स्त्री की शोभा के वर्णन में अवगुंठन तक गया तो है पर वे यह नहीं जान सके कि स्त्री का अवगुंठन केवल लज्जा और शोभा की वस्तु ही नहीं होता, वह दुःख में उसकी वेदना के लिए आश्रय भी होता है। अवगुंठन में सौन्दर्य का छिपना तो सभी जानते है, पर उसमें कितनी वेदना भी छिपी रह सकती है, इसे गीतों की स्त्रियाँ ही समझ पाई हैं।[1]

एक स्त्री का पति परदेश जाने को तैयार है। पत्नी रोक रही है, पर वह नहीं मानता। वह पति से वियुक्त रहने की कल्पना भी नहीं कर पाती। उसकी समझ में नहीं आता कि विरह के दिन कैसे कटेंगे। पति जब किसी प्रकार नहीं मानता तो वह कहती है :—

जुगित बताए जाव कउन विध रहिऐं।
जो कहुँ सजन बहुत दिनन मैं अइऔ।
अपनी सुधि मोरी बहिआँ पै लिखाए जइऔ।

और अन्त में वह कहती है कि :—

---

१. रामकिशोरी श्रीवास्तव—हिन्दी लोक-गीत, पृष्ठ ४४।

जो कहुँ सजन बहुत दिनन मैं अइऔ ।
बहिआँ पकरि हमैं गंगा मै धकिआए जइऔ ।

वियोग-दुःख उसे इतना असह्य जान पड़ता है कि अपने पति द्वारा गंगा में डुबोई जाकर प्राण दे देना उसे स्वीकार है, परन्तु वियुक्ता होकर रहने को वह तैयार नहीं। ठीक ही है, जीवित रहकर तो उसे वियोग का कष्ट सहना पड़ेगा, पर मरकर वह सारे कष्टों से छुटकारा पा जावेगी। कवियों ने वियोगिनियों के आँसुओं से नदियों में बाढ़ आ जाने की जो बात लिखी है वह अलंकार और उक्तिवैचित्र्य की दृष्टि से भले ही चमत्कारपूर्ण हो पर श्रोताओं के हृदय पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पर इस गीत मे 'धकिआए' शब्द में बड़ी प्रभावोत्पादक व्यंजना छिपी है।

किसी स्त्री का पति परदेश चला गया है। वह वियोग मे दुःखी होकर कह रही है कि हे सजन, तुम परदेश चले गए हो। न जाने कब लौटोगे। तुम्हारे आने के दिन गिनते-गिनते मेरी अँगुलियाँ घिस गई, पर तुम न आए। तुम्हारी प्रतीक्षा में आँसू की धारा बह रही है। मैं तुम्हे ढूँढ़ने को एक वन में गई, दूसरे में गई और तीसरे वन में एक गाय चरानेवाला मिला। मैंने उससे पूछा कि गाय चरानेवाले भइया, तुमने मेरे पति को कहीं देखा है ? :—

गए सजन परदेश लउटिऔ कितने दिन मैं ।
हम तकैं तुम्हारी राह सजन कितने दिन मैं ।
गिनत-गिनत दिन अँगुरीं घिसि गई हो सजना ।
ढुरैं नैनन अँसुआ हेरत रहिआ ।
इक बन नागी दुसर बन नागी पहुँचि तिसर बन मैं ।
मिलो है गाय चरइआ हो सजन तिसरे बन मैं ।
गोरू चरइआ तुम मोरे भइआ ।
देखो तौ नाई सजनवा मेरो एई बन मैं ।

पति से वियुक्ता स्त्री के दिन किस प्रकार कटते हैं और बाद में वह पति के खोजने के लिए किस प्रकार घर से निकल पड़ती है, इसका बड़ा सुन्दर चित्रण ऊपर के गीत मे किया गया है ।

विरह के बड़े ही मनोरम चित्र बारहमासों मे मिलते है । वर्ष के हर महीने मे लोग आनन्द और उल्लास-पूर्वक रहते है पर वियोगिनी को सदैव दुःख ही दुःखहै । एक बारहमासे मे विरहिणी को पति के वियोग के कारण विभिन्न ऋतुओं और महीनों में बड़ा ही क्षोभ होता है । वह उद्धव को सबेरे ही मथुरा भेज देना चाहती है जिससे वे कन्हैया को ले आवें । वह असाढ़ मास मे भेज रही है । अतः यह मास तो मथुरा जाने मे ही बीत जावेगा । अन्य महीनो का एक-एक करके वर्णन नीचे किया जाता है :—

इक तौ मोरी बारी बयसिया दूजे बलम परदेस ।
तीजे मेघ झिमाझिम बरसै साउन अधिक अंदेस ।।

पहली बात तो यह है कि इस स्त्री की 'बारी बयसिया' अर्थात् नव यौवनावस्था है । दूसरे पति परदेश मे है । इस वियोग को कैसे सहन किया जावे । इतना ही नही मेघ झमाझम बरस कर उद्दीपन का काम करते है । इसी कारण उसको सावन मास मे असीम विरह वेदना होती है ।

भादौं पमन भयानक सजनी बीतै नित अंधियरिया रात ।
दामिन दमकै कौधा लपकै सिजिया मैं जियरा घबराय ।।

भादौ की अँधेरी रात बड़ी भयावनी होती है और फिर विशेषकर स्त्रियों के लिए, जो स्वभाव से ही भीरु होती है । इस अँधेरी के भय मे जब पति घर होता है तो अंधेरी के इस भयंकरता से उसकी गोद मे छिपकर वे रक्षित होती है । पर वियोगिनी का पति परदेश गया है अब उसकी रातें कैसे बीतें । अंधेरी के अतिरिक्त जब बिजली दमकती है और कौधा लपकता है तब तो सेज पर अकेली स्त्री का हृदय और भी अधिक घबरा जाता है ।

क्वाँर मास मोहि अधिक लागि रहो पिया न आए मोर ।
जो घर होते बारे कन्हइआ रखती मैं हिरदै लगाय ।।

क्वाँर मास स्त्री को बहुत बड़ा लग रहा है अर्थात् काटे नहीं कटता ।[१] यदि उसका युवा-पति घर पर होता तो उसे वह सदैव अपने पास रखती जिससे यह भी न प्रतीत होता कि दिन कैसे व्यतीत हो गए।

कातिक की पूरनमासी कौ सखि गंग हनान कौ जायं ।
हाथ जोरि के बुड़की मारै जलम सुफल हुइ जाय ।।

कार्तिक मास की पूर्णिमा को सब सखियाँ गंगा स्नान को जाती हैं और हाथ जोड़कर डुबकी लगाती है जिससे जन्म सफल हो जाता है । परन्तु विरहिणी का पति घर पर नहीं है । वह गंगा स्नान करने कैसे जावे और अपना जन्म कैसे सफल बनावे ?

अगहन गोरी ठाड़ी अंगनवाँ घर-घर उपजै धान ।
चकई चकवा केहिल करत हैं जल सागर मंझधार ।।

अगहन मास में गोरी अकेली आंगन में खड़ी है । घर-घर में धान पैदा हुआ है । उसका पति बाहर है । अतः उसके घर में कैसे धान पैदा होना । इस प्रकार उसे खाने-पीने का भी अभाव है । आर्थिक-उत्तर-दायित्व पति का होता है पर पति से स्त्री वियुक्त है । चकई और चकवे मिलकर केलि करते हैं अतः केलि देखकर विरहिणी के भाव उद्दीप्त हो जाते है और इस समय अपने पति का अभाव उसे बहुत ही खटकता है ।

पूस मास पुसवलियाँ फूलीं सुअना बाली काटैं ।
जो घर होते बारे कन्हइआ सुअना कौ डरते मारि ।।

पूस मास में पुसवलियों को सुए काट रहे हैं और खेती को हानि पहुँचा रहे हैं । यदि पति होता तो सुओं को मारकर खेती की रक्षा करता क्योंकि किसानों की खेती ही तो सम्पत्ति है ।

---

१. अणोरणीयान् महतोमहीयान् योगे वियोगे दिवसोऽगनाया: ।

महा मास में जाड़ो परत है हम पै रहो न जाय।
जाय कहौ बारे बलमा ते तुम बिन जाड़ो न जाय ।।

माघ मास में सबसे अधिक जाड़ा होता है। इस जाड़े में विरहिणी को पति का अभाव खटकता है। यदि पति होता तो उसके साथ शयन करके जाड़ा मिटाया जा सकता था।

फागुन मास में उड़त अबीरा सब सखि होरी खिलन कौ जाय।
जो घर होते बारे कन्हइआ डरती मैं अतर गुलाब।

फागन मास बड़ा ही मादक होता है। इसमें प्रकृति उद्दीपन का काम करती है। पुष्प, लताएं, वृक्ष, वायु सभी उन्मादकारी प्रतीत होते है और मनुष्य मत्त होकर होली खेलते है। इस वातावरण में भला विरहिणी को पति की याद क्यों न सताए ? सब सखियों को होली खेलते देख कर उसकी लालसा जाग्रत हो जाती है। वह कहने लगती है कि मेरे भी प्रियतम यदि घर होते तो उनके साथ अतर और गुलाब से होली खेलती। ध्यान देने की यह बात है कि सब सखियाँ तो रंग और अबीर से ही खेलती हैं परन्तु वह इन वस्तुओं से होली न खेल कर अतर और गुलाब जैसे बहुमूल्य पदार्थों का प्रयोग करती। पति का होना उसके लिए बड़ा ही हर्ष का अवसर होता फिर अतर-गुलाब को उस पर डालने की भावना में आश्चर्य की क्या बात है।

चैत मास में फूली चमेली भउंरा रहे लुभाय।
आबौ न भउंरा लोटौ पोटौ जिय की तपन बुझाय।

चैत मास में चमेली की मादक सुगन्ध पर भ्रमर लुब्ध हो रहे हैं। विरहिणी भी भ्रमर से कहती है कि वह आकर उसके हृदय की तपन बुझावे। वास्तव में भ्रमर यहाँ पति का प्रतीक है। यौवन से युक्त स्त्री चमेली के समान है और यौवन पर मंडराने वाले भ्रमर के समान पति के आगमन की वह कामना करती है। यदि पति आगया तो

उसके आलिंगन-पाश में बद्ध होकर वह अपने हृदय की विरहाग्नि को ठंडा कर लेगी।

बैसाख मास में बँसवा कटउती बँसवा कटाय के बँगला छबौती।
बँगला छवाय के खिरकी कटउती झुकुअन आवै बयार।

बैसाख मास में गाँवों में छप्पर छाये जाते है। कुछ दिनों बाद वर्षा-ऋतु आ जाती है। स्त्री को भी अपने बंगले के छवाने की चिन्ता है। उसका पति बाहर है, नही तो वह बाँस कटवाकर बँगला छवाती और उसमें खिड़कियाँ भी कटवाती। इन खिड़कियों से जो सुन्दर समीर आता उससे वह दोनों आनन्द मनाते। बेचारी पति के बिना यह सब सोच सोच कर ही रह जाती है।

जेठ मास की खरी दुपहरी हमपै चलो न जाय।
जाय कहौ उन बारे बलमा ते बहिआँ पकरि लै जायं॥

वह पति के वियोग से इतनी दुःखी है कि अन्त में स्वयं पति के पास जाने को सन्नद्ध हो जाती है। पर जेठ मास में बहुत कड़ी धूप होती है और भूतल तवा सा जलता है। ऐसी स्थिति में वह कोमलांगी पति तक किस प्रकार पहुँचे, उसका जाना असंभव सा ही है। अतः वह कहती है कि हे उद्धव! पति से जाकर कहना कि कड़ी दुपहरी में तुम्हारी स्त्री से चला नही जाता। तुम स्वयं उसका हाथ पकड़कर उसे सहारा देकर ले जाओ।

इसी प्रकार अन्य बारह मासों में विरहिणी की दशा का मार्मिक और हृदय-द्रावक चित्रण हुआ है। इनमें दाम्पत्य-जीवन का बड़ा ही सूक्ष्म-निरीक्षण मिलता है।

संयोग-शृंगार के भी इन गीतों मे बडे मनोरम चित्र मिल जाते है। एक पति अपनी स्त्री से बहुत अधिक प्रेम करता है। स्त्री को इस बात का गर्व है कि उसका पति उससे बहुत प्रेम करता है। इसी प्रेमाधिक्य

के कारण वह स्त्री को हरएक काम करने से रोकता है । स्त्री कहती है:—

दिउरा कहै भउजी पानी भरि लावौ सइआँ कहै गिरि परिऔ दुलारी ।
दिउरा कहै भउजी रोटी बनाय देव सइयाँ कहै जरि जइऔ दुलारी ।
दिउरा कहैं भउजी बीरा लगाय देव सइआँ कहै गड़ि जइऐ सुपारी ।

बेचारा पति इससे भी अधिक अपनी स्त्री की चिन्ता और क्या करे ? एक गीत में उल्लेख आता है कि पति परदेश चला गया है और उसकी पत्नी को सास-सनद नाना प्रकार के कष्ट देती है। एक दिन जब वह झूला झूलने जाती है तो देवर मार डालता है । पति परदेश से लौट कर आता है और पत्नी के विषय में पूछता है। पहले तो उससे अनेक बहाने किए जाते हैं कि वह झूला झूलने गई, चक्की पीसने गई, मायके गई, पर अन्त में वास्तविक बात ज्ञात हो जाती है । पति भोजन नहीं करता और तब माता कहती है कि पुत्र ! शोक किस बात का है ? तुम्हारा दूसरा विवाह करवा दूंगी । इस पर वह बड़ा सी मार्मिक उत्तर देता है—'चन्द्र-सूर्योपम मेरी सहधर्मिणी छूट गई है तथा राजाओं जैसी ससुराल । हे माता ! जोगियों के कपड़े लाओ मैं अपनी प्रिया के वियोग से जोगी हो जाऊंगा' । गीत की अन्तिम पंक्तियाँ इसप्रकार हैं:—

माया जो आई बहिनियाँ आई 'करौ पूता जिउनार ।
काहे कौ पूता मोरे अनमन धनमन दुसरौ मै रचिहौं बियाह ।'
'चन्दा सुरिज अइसी धनियाँ जो छूटी रजन छूटि ससुरार ।
लावौ न माया मोरी जुगिआ के कपड़ा हम जुगिया हुइ जायँ ।'

हिरनी के करुण-गीत का उल्लेख 'रस-परिपाक' के प्रसंग में हो चुका है । ऐसे ही हृदय-द्रावक चित्र सीता के प्रसंग में मिलते है । वन-वास में उन्हे बहुत दुःख हुआ और साथ ही साथ उनका इतना अपमान हुआ कि लोक-गीतकार राम के प्रति मर्यादा का उल्लंघन कर गए हैं । शिष्ट-काव्य के कवियों की भांति वे आदर्शवादी भी तो नहीं हैं । वे

यथार्थ का चित्रण करते हैं। एक गीत में उल्लेख आता है कि राम ने सीता के पास 'पाती'[1] भेजी कि हृदय का क्रोध छोड़कर अब लौट आओ। सीता ने इसके उत्तर में कहा कि 'यदि मर कर भी तुम दूसरा अवतार लोगे तो भी मैं अयोध्या न लौटूंगी।' सीता का यह क्रोध अस्वाभाविक नहीं है, क्योंकि उन जैसी सती का अविश्वास करके 'अग्नि-परीक्षा' लेना घोर अपमान है। इतना ही नहीं, गर्भावस्था में उन्हे घर से निकालकर वनवास दे देने से भी अधिक क्या कोई क्रूर-कार्य हो सकता है? लोक कवि की वाणी यथार्थ की अभिव्यक्ति करती है। भव-भूति जैसे आदर्शवादी कवि की भाँति वह सीता से यह नहीं कहलाता कि अपने ही पूर्व जन्मों के पापों के परिणाम से यह कष्ट मुझे भोगना पड़ा है।[2] दूसरे गीत में वशिष्ठ सीता से लौट चलने के लिए कहते हैं। तब सीता उत्तर देती हैं कि "राम ने अविश्वास करके मेरी अग्नि-परीक्षा ली और इतने से ही वे सन्तुष्ट न हुए, उन्होंने गर्भावस्था में भी मुझे भयंकर वन में छोड़वा दिया। मेरे हृदय को कैसे सन्तोष हो सकता है?" एक अन्य गीत में लव-कुश आकर माता को संदेश देते हैं:—

खोलौ न माता चनन किवरियाँ आए हैं पुरिख तुम्हार।

यह समाचार पाकर सीता को बड़ा ही क्लेश होता है। वह आत्म-ग्लानि, लज्जा और क्रोध के कारण राम को देखना भी नहीं चाहती, क्योंकि अविश्वास आर दुःख देने की एक सीमा भी होती है। राम ने उसका उल्लंघन कर दिया। इसी कारण सीता के लिए पृथ्वी ही एक मात्र आश्रय होती है:—

---

१. एहो सीता ने पाती लिखि पठई राम जी बाँचैं।
एहो मरि के धरौ औतार अजुध्या नहिं आमैं।

२. ममैव जन्मान्तर पातकानां विपाक विस्फूर्जथुर प्रसह्य:—
उत्तररामचरित

फाटौ न धरती हम समियामैं जियत दए बनबास ।
फाटी है धरती सीता समियानी धरती मैं केस भए कुस कांस ।।

वन्ध्या स्त्रियों के प्रसंग को लेकर गीतों में करुणा को कूट-कूट कर भरा गया है। बेचारी वन्ध्या ने कोई अपराध नहीं किया है। उस का कष्ट और अपमान एक गीत में श्रोता को रुला देता है। वन्ध्या से सास 'बाँझ और ननद 'निरबंसिन' कहती हैं। जिसकी वह परिणीता है, उसने घर से बाहर निकाल दिया। इस अपमान से दुःखी होकर वह नागिन के बिल के पास जाती है। नागिन निकलकर सुख-दुःख पूछती है। स्त्री जाति से उसे सहानुभूति होनी ही चाहिए। वन्ध्या को भी इसकी आशा थी नहीं तो वह नाग के बिल के पास जाती। पर नागिन की सहानुभूति उसी समय तक रहती है जब तक उसे यह नहीं ज्ञात होता कि यह स्त्री वन्ध्या है। जैसे ही वह इस तथ्य को जानती है, तुरन्त कह देती है कि 'हमारे तो छोटे-छोटे बच्चे है वह भी बाँझ हो जावेंगे। अतः हम नही डँस सकती।' बेचारी वन्ध्या निराश होकर बाघिन के पास भी जाती है और उसी प्रकार निराश होती है। स्त्री को मायके से बड़ी-बड़ी आशाएं होती है और विशेष रूप से माता से और भी अधिक। परन्तु जब वह माता के पास आश्रय के लिए जाती है तो माता, जो स्नेह और वात्सल्य की अवतार होती है, वह भी यह कहकर कि उसकी बहू बांझिन हो जाएगी, लौटा देती है। इस प्रकार वन्ध्या होना एक अभिशाप है, इसको लेकर गीतकार ने करुणा को उँडेल दिया है।

विधवा की स्थिति के भी गीतों मे पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं। एक गीत मे भाई ने बहनोई को मार डाला। निराश्रित बहन वन्ध्यात्व के अभिशाप से कंप जाती है। उसका सुहाग सिन्दूर पुंछ जाता है और बिलखती हुई वह कहती है कि 'मैं हरी और पीली चूड़ियाँ किसके लिए पहनूँ और किस पर श्रृंगार करूँ। मेरी 'मड़इया' को कौन छावेगा

तथा मेरे जीवन का निर्वाह कैसे होगा।[1] इन दो ही पंक्तियों में विधवा की दीन तथा असहाय अवस्था का चित्रण हो जाता है।

बहन-भाई के स्नेह के भी अनेकों चित्र गीतों में उपलब्ध हैं। बहन भाई का स्नेह बड़ा ही दिव्य होता है और विशेषकर भारत में तो यह सर्वोच्च स्थान रखता है। भाई इतना अधिक प्रेम करता है कि उसकी बहन को कोई थोड़ा भी कष्ट दे तो उसे असह्य हो जाता है। कुछ गीतों में तो बहन के कष्ट को देखकर वह बहनोई तक का बध करने को तैयार हो जाता है। इस प्रेमाधिक्य से बहन को अप्रत्यक्ष रूप से हानि ही होती है, पर भाई को इसके लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यदि वह अपने बहनोई को आवेश में आकर मार भी डालता है तो इसका कारण तो उसका बहन के प्रति अतिशय प्रेम ही है। बिदा के समय भी भाई पालकी का डंडा पकड़ लेता है और बहन को जाने से रोकता है।

बहन को भी भाई से किसी भी प्रकार कम प्रेम नहीं है। उसे जब भी कोई कष्ट होता है तो अपने भाई के आने की राह देखती है अथवा बुला ले जाने का सन्देश भेजती है। अपने दुःख का निवेदन सदा वह भाई से ही करती है। बहन के यहाँ भाई आता है और उसकी दशा को देखकर उसका हृदय द्रवित हो जाता है। माता से जाकर वह बहन की दुर्दशा बतलाता है :—

बहिनी को हाल ना पूँछौ माया बहिनी को हाल सुनि छतियाफटै जी।
बहिनी के कपड़ा अइसे बने हैं जइसे चौका को पूतना जी।
बहिनी के केस माया अइसे बने है जइसे कुकुर की पूँछ जी।
बहिनी के अंसुआ अइसे गिरत हैं जइसे मघा के बूँद जी।
माता सुनकर कहती है :—
अइसे दुःख पूता तुम्हरी बहिनी कौ रोउत बहिन कइसे ढीली जी

---

१. गीत परिशिष्ट में देखिये।

विदा के गीतों में सबसे अधिक हृदय-द्रावक भाव मिलते हैं। जिस पुत्री को माता-पिता ने जन्म दिया, पाल-पोस कर बड़ा किया, वही पराई हो जाती है। ऐसे अवसर पर हृदय का वात्सल्य और करुणा की चरम सीमा तक पहुँचना स्वाभाविक ही है। विदा के अवसर पर कहीं माता रोती है तो कहीं पिता आँसू बहाता है। गीतों में ऐसा भी उल्लेख आता है कि इस समय भाभी को कुछ भी दुःख नहीं होता :—

माया के रोए छतिया फटत है ददुली के रोए सागर पार।
भइआ के रोए पटुका भिजत है भउजी ठाड़ी मुसक्याँय।

एक गीत में कन्या की जन्म से लेकर विदा तक की करुण-कथा का वर्णन मिलता है। कन्या बेचारी के भाग्य में ही विदेश लिखा है :—

हमकौ लिखो है बिदेस रे सुनु बाबुल मोरे।
जा दिन भइआ तुम्हरो जलम भओ है भईहै सोने केरी राति रे। सुनु०
आजिहु बेसैं भाइउ बेसैं ददुलि बेसैं चौपार रे। सुनु०
जा दिन भइआ मेरो जलम भओ है भई है बजुर केरी राति रे। सुनु०
आजिउ रोमैं बाबुलि रोमैं अजुलि रोमैं चौपार रे। सुनु०
तुम को तौ बीरन मोर दादुलि चौपरिआ हमको तौ लिखो है विदेस रे। सुनु.
हम तौ ददुलि मोरे गगरी घैलना डुबत डुबत डुबि जायँ रे। सुनु०
हम तौ ददुलि मोरे सार की गइयाँ जहाँ बाँधौ तहँ जाँयं रे। सुनु०
हम तौ ददुलि मारे अंगन चिरइयाँ चुनत बिनत उड़ि जायँ रे सुनु०
बगिआ के ओरे निकसी पलकिआ कोयल एक सुनाय रे। सुनु०
अब का बोलौ सौति कोइलिआ छूटो बबुल को देस रे। सुनु०
लहुरे बिरन मोरी पकरी पलकिआ हमरी बहिनि कहँ जाय रे। सुनु०
धिया पठै बाबुल घर कौ लौटे घरु देखो अँधियार रे। सुनु०
घर मेरो बासौ अंगन तिबासो गुबर सुखै मेरो सार रे। सुनु०

कुछ गीतों में मनुष्य का बीमार होना, लोगों का देखने आना,

मृत्यु, दाह आदि प्रसंगों को लेकर निर्वेद-भाव का सुंदर वर्णन उपलब्ध होता है । नीचे एक गीत देखिए :—

नगरी अजुध्या आज भई सूनी ।
कोटे ऊपर कोट उठाय दए किला उठाय असमानी ।
सीस महल से गोला छूटो छूटि गई बाकी नौ-नौ नारी ।
घर बाहर के सबै बुलाय देव अउर बाप महतारी ।
जेठो भइआ हाल बुलाय देव बैद दिखावैं मोरी नारी ।
घर बाहर के आय गए सब आए बाप महतारी ॥
जेठो भइआ हाल आय गओ लै आओ बैद दिखाई मोरी नारी ।
हुक्कावाले हुक्का पी गए वैद छोंड़ि गए नारी ।
हंसा मैं ते प्रान निकरि गए सूखि गई फुलवारी ।
हाँथ पकरि बाकी तिरिया रोवै जा करतब मोरी राम ने बिगारी ।
चारि जने मिलि खाट उठाई ऊपर चादर तानी ।
गंगा किनारे खाट उतारी फूँकि दआं जैसे होरी जराई ।
हाड़ जरैं जइसे चन्दन लकड़ी बार जरैं जइसे घास ।
बारि जारि कि पैकरमा कीन्हीं औघट घाट हनाई ।
चलौ राम तिरिए समझइए अबका रोवौ तिरिया विचारी ।
अबका रोऔ तिरिया बावरी जिन जोरी तिन तोरी ।

इस गीत में यह भाव दर्शाया गया है कि जब मृत्यु हो आती है तो परिवारवाले, व्यवहारी, वैद्य, कोई भी उसे रोक नहीं पाता । यह देह जिसको बड़े मोह से रक्षित किया जाता है, चन्दन की लकड़ी के समान भस्म हो जाती है । इससे व्यंजित होता है कि प्रभु से ध्यान लगाना मनुष्य के लिए आवश्यक है । वही अन्तिम गति है । इसमे निर्वेद-भाव का बड़ा प्रभावोत्पादक चित्रण है ।

ऊपर अनेक प्रसंगों को लेकर जो विवेचन किया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि कनउजी लोक-गीतों में भाव-सौन्दर्य पर्याप्त मात्रा में

पाया जाता है। इनका रसास्वादन वही कर सकता है जो अपने को भी उन भावों में डुबा दे :—

तंत्री नाद कवित्त रस सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे जे बूड़े सब अंग [1]॥

कला-पक्ष

कनउजी लोक-गीतों के कला-पक्ष का अगले पृष्ठों में विवेचन किया जाएगा। इसके अन्तर्गत हम अलंकार, प्रकृति-चित्रण, तुक, लय, छन्द-विधान और भाषा पर क्रमशः विचार करेंगे।

अलंकार—

काव्य की शोभा बढ़ानेवाले धर्मों को अलंकार कहते हैं।[2] जिस प्रकार नायिका को आभूषण पहना देने से उसका सौन्दर्य बढ़ जाता है उसी प्रकार अलंकारों से विभूषित काव्य भी अधिक सुन्दर हो जाता है। अलंकारों का प्रयोग जैसा कि ऊपर कहा गया है, सौन्दर्य की वृद्धि के लिए किया जाता है परन्तु शिष्ट-काव्य में अलंकार-सम्प्रदाय के प्रभाव से कुछ कवि अलंकार के पीछे पड़ गए और उन्होंने अलंकार के बिना कविता के अस्तित्व में ही सन्देह प्रकट किया[3]। पर कनउजी लोक-गीतों में अलंकार का प्रयोग बड़ी ही स्वाभाविकता के साथ हुआ है। उससे सौन्दर्य की वृद्धि हुई है। इन गीतों में अलंकार अर्थ-बोध कराने और भाव-गाम्भीर्य में सहायक सिद्ध हुए हैं।

---

१. बिहारी : बिहारी सतसई.

२. काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते—काव्यादर्श।

३. अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती॥ 'जयदेव'

लोक-गीतों में अलंकार का प्राय: अभाव ही रहता है। त्रिपाठी जी ने तो कहा है कि इनमें अलंकार नही, केवल रस है। इसका आशय यह है कि गीतों में अलकार लाने का प्रयत्न नहीं किया जाता। परन्तु हमारे साधारण वार्तालाप मे भी कभी-कभी किसी अलंकार का प्रयोग हो जाता है तो गीतों में कही कुछ अलकार आ भी जावें तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ?

कनउजी लोकगीतों मे अलंकारों का विशेष विधान नही पाया जाता, परन्तु कही-कही भावो के स्पष्टीकरण के लिए कुछ शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही आ गए है। शब्दालंकारों में अनुप्रास को ही अधिकता है और अर्थालंकारों मे उपमा की। कही-कही रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार भी मिल जाते है।

अनुप्रास—इन गीतों मे छेकानुप्रास और वृत्यनुप्रास ही पाये जाते है। नीचे कुछ प्रस्तुत उदाहरण दिए जाते हैं:—

काहे की सिल को सिलौटा तौ काहे कौ लोढ़ा ललना।

... ...

कहा चढ़ि राजा रामचन्द्र आए कहा चढ़ि लछिमन भाई।

... ...

पानी पियत राजा हिरना मारौ हिरनी दए असराफ

प्रथम पंक्ति में स और ल; द्वितीय पक्ति मे र और तृतीय पंक्ति में प की समानता केवल एक बार हुई है। अत: इन तीनों में छेकानुप्रास[1] हुआ। दूसरा उदाहरण देखिए:—

बिनरे बाप की बेटी न कहावै को ढूढ़ै बर को तिलका चढ़ावै।

... ...

फूल को बेला सबाव सेर सतुआ ऊपर गुड़ की बटी

... ...

---

१. वर्न अनेक कि एक की जहं सरि एकै बार।

माया अँगारू जनि कहिऔ भइआ पेट मारि-मरि जायँ ।

प्रथम पंक्ति में ब, द्वितीय में स और तृतीय में म की समानता दो बार हुई है । अतः तीनों में वृत्यनुप्राम[1] हुआ ।

उपमा—लोक-गीतों में प्रयुक्त उपमा की विशेषता यह है कि इसमें एक विचित्र प्रकार की सादगी है, नवीनता और मौलिकता है, जो कृत्रिम कविताओं मे देखने को नहीं मिलती ।[2] शिष्ट-काव्य में अधिकांश उपमाएँ परम्परा-युक्त होने के कारण बासी भी प्रतीत होती है, परन्तु इन गीतों की उपमाएँ नवीनता लिए हुए हैं ।

एक गीत में भाई बहन की दीन-अवस्था को देखकर आया है और माता से कह रहा है :—

बहिनी के कपड़ा अइसे बने हैं जइसे चौका को पूतना जी ।
बहिनी के केस अइसे बने हैं जैसे कुकुर की पूछ जी ।
बहिनी के अँसुआ अइसे गिरत हैं जइसे मघा के बूंद जी ।
बहिनी की पीठो माया अइसी बनी है जइसे धोबो को पाट जी ।

बहन के कपड़ों की चौके के 'पुतने' से उपमा दी है । इसमे यह अर्थ व्यंजित होता है कि उसके पास एक ही धोती है जिसे वह लगातार पहनती है और इसी कारण 'पुतने' के समान मैली हो गई है । केशों की उपमा कुत्ते की पूँछ से दी गई है जिससे प्रतीत होता है कि केशों में न तो तेल पड़ता है और न तो वे काढ़े ही जाते है । आँसुओं की मघा के बूंदों से उपमा दी गई है क्योंकि उसे घोर-कष्ट है और उस कष्ट के कारण बहुत अधिक रोने से बड़े-बड़े आँसुओं का गिरना स्वाभाविक ही है । पीठ की उपमा धोबी के पाटे से यह अभिप्राय है कि

१. वर्न अनेक कि एक की जहं सरि कह्यो बार ।
२. डा० कृष्णदेव उपाध्याय-भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन पृष्ठ ४०४ ।

उसको बहुत ही अधिक पीटा जाता है। यह सारे 'अप्रस्तुत' ग्राम के सुपरिचित जीवन से लिए गए हैं। उपमा की सहायता से स्त्री के दुःख की पूर्ण व्यंजना कर दी गई है। यदि अलंकारों का प्रयोग न होता तो सम्भवतः इतना मार्मिक चित्रण न हो पाता। इसके अतिरिक्त ये उपमाएँ बड़ी ही अपूर्व, अनूठी और मौलिक हैं।

उत्प्रेक्षा——कुछ उत्प्रक्षाएँ भी गीतों में मिल जाती हैं :—

राम के माथे झलरिआ बहुत नीकी लागै।
मानौ कमल को फूल भँवर गुन-गुन करै॥

इसमें राम की अलकों का वर्णन किया गया है। राम के मस्तक पर अलकें ऐसी सुन्दर लगती है मानों कमल के फूल पर भ्रमर गुंजार करता हो। यहाँ उक्त विषया-वस्तूत्प्रेक्षा हुई।

रूपक——कनउजी लोग-गीतों में रूपक अलंकार भी पाया जाता है। कहीं-कहीं सांग रूपक के उदाहरण भी मिल जाते हैं :—

सांच सुकीरति गगरी पिरेम की रसरी हो।
सजना पनियाँ भरौं झकझोरि माँग भरि सेंदुर हो।

स्त्री कहती है कि सत्य और सुकीर्तिरूपी घड़ा है। प्रेम-रूपी रस्सी से मांग में सिंदूर लगाकर पानी भरूँगी। अतः यहाँ सांग रूपक हुआ।

श्लेष——सीधी-सादी ग्रामीण जनता सामान्यतया दो अर्थों के शब्दों का प्रयोग नहीं करती और इसीलिए लोक-गीतों में श्लेष का अभाव रहता है। परन्तु साधु-सन्तों के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर ईश्वर सम्बन्धी भावना की अभिव्यक्ति जहाँ पर हुई है वहाँ पर कहीं-कहीं श्लेष का प्रयोग हुआ है। कबीरपंथी चमारों के गीतों में श्लेष अलंकार मिलता है।

अलंकार-विधान के इस विवेचन से हमे ज्ञात होता है कि कनउजी गीतों मे उपमा के बड़े सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। अन्य अलंकारो का बहुत कम प्रयोग हुआ है।

प्रकृति-चित्रण

साहित्य में प्रकृति का वर्णन दो रूपों मे मिलता है :—

१—आलम्ब-विभाव के रूप में।

२—उद्दीपन-विभाव के रूप में।

संस्कृत-साहित्य मे तो प्रकृति का आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपो मे वर्णन किया गया है पर हिन्दी कवियों ने विशेषकर प्रकृति को नायक और नायिका के भावों को उद्दीप्त करते हुए दिखाया है। पति के वियोग में पत्नी को चन्द्रिका मे उष्णता और कोयल की मधुर वाणी में कटुता प्रतीत होती है। कनउजी लोक-गीतों में भी प्रकति का उद्दीपन रूप ही मिलता है। एक विरहिणी को रात्रि मे पपीहे की पी-पी सुनकर अपने पति की याद आ जाती है जिसके कारण वह सो नही पाती। वह क्रुद्ध होकर कहती है कि:—

जाय डारौ पपिहरे मारि मो जाने मोरी नींदा हरी।
बागा में बोलो बगीचा मैं बोलो मालिनियाँ पै बौलो है बोल
सो जाने मोरी नीदा हरी।

लोक का शरीर और मन ग्रामो मे बसता है। ये लोग हरे-भरे खेतों मे काम करते है। आम और नीम के बृक्षों के नीचे बैठकर खेत की रखवाली करते है। तेल के लिए महुआ के गुलैंदें इकट्ठे करते है। घर के आँगन में बोई गई जम्हिरिया का लहराना उन्हें आनन्द देता है। कहीं आधी रात को फूलने वाला बेला का फूल आँगन के वातावरण को मादक बनाता है तो कहीं महुआ, चमेली, गुलाब आदि के फूल देवताओं पर चढ़ाने के लिए खिले दिखाई पड़ते हैं। तुलसी का पौदा तो ग्रामीणों का चिर-साथी ही है। इन वनस्पतियों के अतिरिक्त पक्षी भी अपने कलरव से ग्रामीणों का कुछ कम मनोरंजन नहीं करते। मोर सावन के बादलों को देखकर नाच उठते हैं तो कोयल कुहू-कुहू का मधुर शब्द करती है। कही मुँडेर पर बैठा कौआ काँव-काँव करता हुआ प्रिय के आगमन की

सूचना देता है। अतः हम देखते है कि लोक-गीतों में प्रकृति-वर्णन इसी रूप में हुआ है। इनमें किसी प्राकृतिक-दृश्य का सांगोपांग वर्णन नही मिलता, अपितु साधारण उल्लेखमात्र ही होता है। भिन्न भिन्न प्रसंगों में विभिन्न पुष्पों, फलों, वृक्षों, पक्षियों, नदियों तथा ऋतुओं का नामोल्लेख मात्र हुआ है, विस्तृत वर्णन का तो नितान्त ही अभाव है।

कनउजी-गीतों में न तो बर्फ से लदी हुई पर्वतों की चोटियाँ और न गिरिगुहा से निकलती हुई नदी के ही दृश्य दिखाई पड़ते हैं। इसका कारण इस प्रदेश मे पर्वतो का अभाव होना ही है। जो ग्रामीण अपने क्षेत्र को छोड़कर कभी बाहर नहीं जाता वह पर्वत और उसके दृश्यों का वर्णन करे भी कैसे ? अतः एक महान् विभूति पवन-वर्णन का इन गीतों में अभाव है। फिर भी वृक्ष, पक्षी, पुष्प, वायु आदि का लोक-कवि के प्रकृति-प्रेम का पर्याप्त प्रमाण है।

इन गीतों में कही तो किसी आम, नीम या महुआ के नीचे खड़ी कोई स्त्री पति की प्रतीक्षा करती है, कही थका हुआ किसान किसी पेड़ की छाया में सोता है, कही आम का बौरना और महुओं का टपकना विरहिणी के लिए उद्दीपन का काम करता है और कहीं उसका हृदय पीपल के पत्ते की तरह काँपता है। कही पर वर्णन मिलता है कि नदी के किनारे सुन्दर फुलवारी लगी है। वहाँ कृष्णजी अपनी गायों को चरा रहे हैं। राधा कृष्ण को रोकती है कि तुम अपनी गायों को यहाँ से हटा ले जाओ नही तो वे गायें आम, अमरूद और जामुन के पेड़ खा डालेंगी। लोक-गीतों के संसार में लवंग का बगीचा भी घरके पास लगाया जाता है और स्त्रियाँ अपने पिता से प्रार्थना करती हैं कि वे लौंग के वृक्ष को कटवा कर पलँग बनवा दें जिससे कि वे अपने स्वामी के साथ उस सुगंधित पलंग पर सो सकें।

पुष्पों के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि बिना कमल के तालाब की शोभा नही होती। बेले के फूल के गजरे[1] को किसके गले में डाला

१. बेला फूला आधीरात मैं गजरा कांक गरे डारौं।

जाय ? एक स्त्री को इसकी बड़ी चिन्ता है। चमेली, नौरंगिया, कचनार, दुपहरिया, कड़ैल आदि पुष्पों के नाम भी किसी न किसी प्रसंग में आए हैं।

किसी गीत में कोयल कुहू-कुहू करके विरहाग्नि प्रज्ज्वलित करती है, किसी में कौआ पति के आगमन का मदेश देता है और पति के लिए विरहिणी का पत्र भी ले जाता है। कोई स्त्री परदेश जाते हुए पति को वन की कोयल बनकर सन्देश सुनाने का वचन देती है। मोर, हंस, सारस, मैना और तोते के भी प्रसग आए है।

गीतों में 'पुरवइया' हवा का भी प्रचुर-मात्रा में वर्णन मिलता है। 'पुरवइया' के बहने से स्त्री सो जाती है और बेचारी को पति छोड़कर चला जाता है।

सावन और बारहमासों मे प्रकृति का बड़ा ही सुन्दर वर्णन मिलता है। इन गीतों मे प्रकृति के उपादानों का केवल नामोल्लेख ही हुआ है। अत: उद्धरण देने की आवश्यकता नही समझी गई। इसमें वर्णित वस्तुओं को परिशिष्ट मे देखा जा सकता है।

कनउजी लोक-गीतों में तुक और लय—

तुक के प्रयोग से कविता के स्मरण रखने में सहायता मिलती है और वह श्रुति-सुखद भी हो जाती है। इसलिए प्राचीन हिन्दी कवियों ने तुकान्त कविता ही लिखी है। तुक कविता का आवश्यक अंग बन गया है और इसके होने से कविता में सौन्दर्य-वृद्धि अवश्य हो जाती है। आधुनिक कविता अतुकांत रूप में भी हुई है, किन्तु मुख्य प्रवृत्ति तुकांत कविता की ओर अब भी है।

कनउजी लोग-गीत तुकान्त होते है परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उनमे तुक के नियमों का पूर्णरूप से निर्वाह किया जाता है। कभी-कभी एक ही गीत के कुछ स्थलों में तो तुक रहती है और कुछ में उसका अभाव होता है निम्नांकित गीत अतुकान्त रूप का उदाहरण है:—

जो तुम माया मेरी धरम की हुइऔ साउन 'बीरन पठइऔ' ।
'बाप तुम्हारे बेटी देस के राजा ओऊ न बसत परदेस ।
जेठो बिरन बेटी धनिआँ को लोभी नित उठि जइए ससुरारि ।
लहुरो बिरन बेटी निपट अनारी नदि नारे देखि डिराय' ।

ऊपर चारों पंक्तियों में तुक नही है, परन्तु इसी गीत में आगे कर तुक का निर्वाह भी किया गया है :—

माया अंगारू जनि कहिऔ बिरना पेट मारि मरि जायं ।
भउजी अंगारू जनि कहिऔ बिरना ओऊ नइहर कहैं जाँय ।।
बहिनी अंगारू जनि कहिऔ बिरना ओऊ ससुरे नहि जायँ ।

इन तीनों पक्तियों में केवल तुक ही नही मिलता, वरन् उसी शब्द को दुहरा दिया गया है । बारहमासों मे तुक का अच्छा निर्वाह है । बारहमासा के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है जिसमे तुक की देखने को मिलती है :—

इक तौ मोरी बारी उमिरिया दूजे बलम परदेस ।
तीजे मेघ झिमझिम बरसैं साउन अधिक अंदेस ।।
....

चैत मास मैं फूली चमेली भँउरा रहे लुभाय ।
आबौ न भँउरा लोटौ पौटौ जिअरा की तपन बुझाय ।।

कनउजी-गीतों में प्रायः 'हो रामा' है रे, जी हो, रे आदि प्रायः क पंक्ति के अन्त मे पाये जाते हैं । ये टेक पद हैं जो तुक का काम है । इनका गीतों के अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं रहता । कही कही री पंक्ति ही दोहरा दी जाती है :—

ऊँचो चउतरा चौखुटौ हो जहाँ बेटी खेलन जायँ ।
हो राधा भामिन बनवारी की ।
खेलत-खेलत भोर भओ है बाबुल के दरबार ।
हो राधा भामिन बनवारी की ।

ये तुक नितांत स्वाभाविक हैं। इनके जुटाने के लिए किसी प्रकार का प्रयास नही किया गया है।

वस्तुतः लय ही इन गीतों का मोहक गुण हैं। जब स्त्रियाँ सामूहिक रूप मे किसी गीत को लय-पूर्वक गाने लगती हैं तो वे लय के अनुसार ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व कर लेती हैं। जहाँ किसी पंक्ति मे कुछ अक्षर कम होते हैं वहाँ कुछ अक्षरों को जोड़कर पूरा कर लेती है। उनके मधुर कंठों से गीतों का लय-युक्त उच्चारण उस गीत में रस-संचार कर देता है। शुष्क से शुष्क गीतों में लय के द्वारा स्त्रियाँ रस की गागर उँडेल देती है। यहाँ तो केवल इतना ही बतलाया जा सकता है कि गीतों मैं लय का बहुत अधिक महत्व है। लय को अनुभूति तो सुनने पर ही हो सकती है। गीतों में लय की विशेषता के कारण ही पं० रामनरेश त्रिपाठी ने कहा है कि—'इनमें छन्द नहीं केवल लय है'[1]।

कनउजी लोक-गीतों में छन्द-विधान—

लोक-गीतों की चर्चा करते हुए पं० रामनरेश त्रिपाठी ने कहा है कि इनमें छन्द नहीं केवल लय है। उनके इस वाक्य का यह अर्थ नही लगाया जा सकता कि लोक-गीतों में छन्दों का नितान्त अभाव होता है। वस्तुतः बात यह है कि लोक-गीतों की रचना अशिक्षित तथा छन्द-शास्त्र से अनभिज्ञ लोगों के द्वारा होती है और इसीकारण इनमें मात्रा और गणों के नियमों का कड़ाई से पालन नहीं किया जाता। त्रिपाठी जी के कथन का केवल यही आशय है कि लोक-गीतों में छन्दों पर आग्रह नहीं किया जाता। छन्द होता अवश्य है पर उसकी कमी को लय पूरा कर देती है।

'सोहर' का पीछे वर्णन किया जा चुका है। यह भी लोक-गीतों का एक छन्द है। साहित्यिक सोहरों की तुलसी आदि कवियों ने रचना की

---

१. पं० रामनरेश त्रिपाठी-कविताकौमुदी (ग्राम-गीत) पृष्ठ ६६।

है और उनमें तुक मिलाकर प्रत्येक पद में मात्राएँ भी बराबर रखी गई हैं। इस प्रकार यह 'सोहर' पिंगल-शास्त्र के नियमों से बधे हुए हैं। परन्तु लोक-गीतों के सोहरों में मात्राओं और तुक के नियमों की लोक-कवि ने अवहेलना कर दी है।

दूसरा छन्द 'बिरहा' है। डा० ग्रियर्सन ने 'बिरहा' का छन्द विधान बतलाते हुए कहा है कि पढ़ते समय ये बिरहे शायद ही मिलें जब तक हम यह याद न रखें कि बहुत से दीर्घ स्वर पढ़ते समय लघु कर लिए जायँ। इनमें कभी-कभी कुछ ऐसे भी व्यर्थ के शब्द होते हैं जो छन्द के अंगीभूत नहीं होते [१]।

सभी लोक-गीतों के विषय में कहा जा सकता है कि उनमें कोई न कोई छन्द अवश्य होता है। छन्द का अर्थ होता है बंधन। बिना बंधन के कविता (लोक-गीत भी कविता ही है) की रचना हो ही नहीं सकती। डा० ग्रियर्सन का विचार है कि इन लोक-गीतों की विशेषता है कि पिंगल शास्त्र के नियम इनमें बड़े शिथिल हैं।[२] इन उल्लेखों से स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि लोक-गीतों में छन्द होते अवश्य हैं परन्तु इनमें पिंगल के नियमों के पालन में बड़ी ही शिथिलता होती है और यही कारण है कि लोक-गीतों को पढ़ते समय जान पड़ता है कि इनमें यति-भंग, गति-भंग, न्यून-पदत्व और अधिकपदत्व आदि अनेकों दोष हैं। पर गाने से लय के द्वारा इन सारे दोषों का परिहार हो जाता है।

लोग-गीतों में भावव्यंजना और छन्द विधान का सामंजस्य—

संस्कृत और हिन्दी साहित्य में विभिन्न भावों की व्यंजना के लिए विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। प्रवास के वर्णन के लिए मंदा-

---

१. जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसइटी १८८२।

२. जर्नल आफ रायल एसियाटिक सोसाइटी १८८२

क्रान्ता उपयुक्त छन्द कहा गया है।[1] इसी प्रकार विप्रलम्भ-शृंगार के लिए सवैया छन्द समुचित माना गया है। पर जब हम लोक-गीतों का अवलोकन करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि सामान्यतया भावों के अनुसार ही छन्द प्रयुक्त नहीं होते। सोहर-छन्द को ही ले लीजिए इसमें करुण, उत्साह, रति आदि सभी भावों को अभिव्यक्ति की गई है। परन्तु कुछ ऐसे छन्द भी है जिनमें भाव-व्यंजना और छन्द-विधान का सामंजस्य अवश्य है।

जहाँ जीवन की आनन्दात्मक अनुभूति जैसे हर्ष, उत्साह और संभोग का वर्णन होता है वहाँ 'नकटा' और 'झूमर' छद का प्रयोग होता है। झूमर का प्रत्येक चरण छोटा होता है और उसकी लय इतनी सुन्दर होती है कि उसके गाने से ही आनन्द की अनुभूति होने लगती है। इस छन्द में एक स्त्री की उक्ति सुनिए :—

टोपी की झलक दिखाव रे।
टोपी वाले समरिया।
हमरे ससुर को कागज को बंगला
हवा चलै उड़ि जाय रे।
टोपी वाले समरिया।
हमरे सजन को सोने को बँगला।
झपकी तो लेय लुटि जाय रे,
टोपी वाले समरिया।

मार्मिक भावों को अभिव्यक्ति के लिए लम्बे-लम्बे छन्दों की आवश्यकता होती है। अत: विप्रलम्भ और करुण रस के वर्णन के लिए चक्की और निरवाही के लम्बे गीत प्रयुक्त हुए हैं।

जहाँ वीरता और साहस के कार्यों का वर्णन करना होता है वहाँ आल्हा-छन्द का प्रयोग किया जाता है। इस छन्द में गाने का स्वर

१. प्रावृट् प्रवास कथने मंदाक्रान्ता विशिष्यते—क्षेमेन्द्र।

उच्च और ओजपूर्ण होता है कि वीर-रस इसमें चुवा सा
। एक उदाहरण देखिए :—

दगी सलामी दोनौ दलमै । धुँअना रहो मरग मंड़राय ।
तोपै छुटि गई दोनौ दल मैं । रनमै होन लगे घमसान ।।
अरर अरर अर गोला छूटै । कड़-कड करै अगिनियाँ बान ।।
रिमझिम रिमझिम गोली बरसै । सर सर परै तीर की मार ।।

विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि कनउजी लोक-
छन्द और भावों के सामजस्य का भी लोक-कवियों ने ध्यान
।

। लोक-गीतों की भाषा—

क गीतों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए पीछे कहा जा चुका है कि
ाषा की दृष्टि से भी बहुत महत्व होता है। कनउजी लोक-गीतों के
बात पूर्णरूप से लागू होती है। ऐसे अनेक शब्द गीतों में
जिनसे आज की पारिभाषिक शब्दावली के लिये सहायता ली
ो है। इनके अतिरिक्त इन गीतों में ऐसे अनेक शब्द हैं जिनका
बन्ध वैदिक-सस्कृति से है। ऐसे शब्द भाषा-विज्ञान के अध्ययन
बहुत ही महत्वपूर्ण है। कुछ शब्दों के उदाहरण दिये जाते हैं:—

ओस भरी पाय की पनहिया रकत भरी तरवारि ।

पंक्ति के 'पनहिया' शब्द का संस्कृत के 'उपानह' शब्द से विकास
दूसरा शब्द 'रकत' है। संस्कृत के रक्त शब्द से स्वर-भक्ति
त से कनउजी में 'रकत' हो गया है। खड़ी-बोली में न तो
और न 'रकत' शब्द मिलता है। इनके लिये या तो संस्कृत
शब्दों का प्रयोग किया जाता है या विदेशी शब्दों का सहारा
ना है। एक और पंक्ति देखिये:—

एक तौ मोरी बारी बयसिया दूजे बलम परदेस ।

इसमें 'बयसिया' शब्द संस्कृत के 'वयस' शब्द का विकसित रूप है। साहित्यिक-हिन्दी में वय का प्रयोग होता है अथवा विदेशी शब्द उम्र का। पर कनउजी ने मूल शब्द से अब तक सम्बन्ध नहीं छोड़ा है। यहाँ उदाहरण के लिये थोड़े से ही शब्द दिये गये हैं। वस्तुतः कनउजी लोक-गीतों में ऐसे शब्दों की अशेष राशि है जिनका उपयोग शिष्ट साहित्यिक हिन्दी की एक बहुत बड़ी कमी को पूरा कर सकता है।

संस्कृत के तद्भव रूपों के अतिरिक्त इन गीतों में विदेशी भाषाओं के शब्द भी मिल जाते है। इसका कारण यह है कि सैकड़ों वर्षों तक विदेशी लोगों का हमारे देश पर शासन रहा और साथ ही हम पर विदेशी भाषा भी लादी गई। १० वर्ष के पहले तक कन्नौज मे अदालती भाषा उर्दू रही जिसमें कि अधिकांश शब्द फारसी के होते थे। यहाँ के गीतों में जो फारसी-अरबी शब्द आ गये हैं उनको कुछ उदाहरण दिये जाते हैं:—

१. मोरी मइआ बड़ी दिलदार कदम ते उतरि परी।
२. दगाबाज तोरी बतियाँ ना मानौ रे।
३. जब ते कलम धरी कागत पै दस के बीस करे।

अंग्रेजी शब्दों के भी कुछ प्रयोग हमें देखने को मिल जाते हैं परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है नीचे एक उदाहरण दिया जाता है:—

कहाँ ते आए डिपटी कलट्टर कहाँ ते आई बड़ी मेम

कनउजी लोक-गीतों की भाषा के शब्दसमूह पर विचार करने के उपरान्त हम भाषा की भावभिव्यंजना-शक्ति पर भी विचार करेंगे। इन गीतों मे सजीव और मार्मिक शब्दावली पाई जाती है। भावों के अनुकूल ही शब्दों का प्रयोग होता है। जहाँ-वीर-रस का वर्णन होता है वहाँ भाषा अपेक्षाकृत कुछ ओजमयी तथा संयुक्त शब्दों वाली होती है। ट, ड, ढ, घ आदि महाप्राण ध्वनियों का प्राधॉन्य हो जाता है। इस दृष्टि से एक गीत की भाषा देखिये:—

कड़ कड़ कड़ कड़ तेगा बाजैं जूझैं बीर महोबे क्यार ।
कायर भाजे समर भुम्मि तें अपने छोंड़ि छोंड़ि हंथियार ॥

करुणा-भाव को व्यक्त करने के लिये तदनुकूल शब्दों का प्रयोग किया गया है । इनमें महाप्राण ध्वनियों का सर्वथा अभाव रहता है । अनुस्वार युक्त शब्दों के कारण बड़ा ही लालित्य आ जाता है । एक गीत मे कामल तथा अनुस्वार-युक्त वर्णो की छटा देखिये:—

नानी नानी बुँदियन मेह बरसि मेंह बरसि गए,
अंगना मैं हुइ गओ कीच ।
अब जिन निकरौ अंगना मैं बिरना पांय भरैं दोनौ कीच ।
पाय कौ लियैं बिरना चनन खड़ाऊँ हाँथ कौ छड़िया मगाय ।

न, म, प, र तथा अनुस्वार-युक्त वर्णो के कारण भाषा बड़ी ही ललित एवं मधुर हो गई है । लोक गीत-कार ने चन्दन का चनन करके कोमलता की सृष्टि कर दी है ।

युद्ध के गीतों में अरर अरर अर, कड़ कड़ कड़ कड़, तड़ तड तड आदि शब्दों के प्रयोग में भाषा की अनुरणनात्मक शैली व्यवहार मे लाई जाती है ।

कुछ विशिष्ट शब्द—गीतों मे कुछ ऐसे शब्द भी आए है जिनमे भाव तथा अर्थ घनीभूत हो जाते है । 'डाहत' शब्द का प्रयोग देखिए:—

गए पिया परदेस हमैं काए 'डाहत' हौ

अर्थात् परदेश में जाकर हे प्रियतम मुझे तुम क्यों दुःख दे रहे हो ? साहित्यिक हिन्दी में 'डाहना' के लिए जलाना, दुःख देना आदि का प्रयोग होता है परन्तु 'डाहना' का भाव जलाने और दुःख देने से कहीं अधिक व्यापक और गम्भीर है । जलाने में नीरसता प्रकट होती है परन्तु डाहना में क्रोध, प्रतिवाद और विक्षोभ के साथ उलाहने का भी भाव है । एक दूसरा शब्द बिसूरना है । इसमें बड़ी ही भाव-व्यंजना

होती है। पीछे मोहर गीतों मे हिरनी की करुणा वाले गीत में इस शब्द का प्रयोग हुआ हैं:—

तेहि तर ठाड़ी हिरनी 'बिसूरइ' हो

खंजड़ी के शब्द को सुनकर हिरनी को अपने पति की स्मृति हो आती है और पलाश-वृक्ष के नीचे खड़ी-खड़ी वह बिसूरती है। इस एक शब्द 'विसूरना' में चिन्ता, दुःख और करुणा तीनों भाव भरे है। इसी प्रकार अनेक शब्द हैं जिनमें भावों की सरिता उमड पड़ती है। कलेवर बढ़जाने के भय से अब और शब्द नही दिए जा रहे है।

भाषा में भावाभिध्यजन के लिए मुहावरे तथा प्रतीक उपकरण का काम करते है अत: इनका भी यहा उल्लेख किया गया है।

मुहावरे—भाषा में लक्षणा और व्यंजना लाने के लिए मुहावरे भी बहुत महत्व रखते हैं। यह लोक-अनुभव के निचोड होते हैं। इनमे न केवल अर्थ-गौरव ही आता है वरन् अनुपम सौन्दर्य भी आ जाता है। कनउजी लोक-गीतों में प्रयुक्त कुछ मुहावरों को यहाँ दिया जाता है। शिष्ट हिन्दी में 'सर माथे रखना' मुहावरा सम्मान के अर्थ में प्रयुक्त होता है। कनउजी में इसी अर्थ के लिए 'पगडी की पेंच में रखना' मुहावरे का प्रयोग हुआ है। :—

रानी रखिबो पगड़िया की पेंच नैनवाँ के भीतर हो

पगड़ी की पच मे रखने का लाक्षणिक अर्थ सम्मान करना हुआ। इस गीत का प्रसंग यह है कि एक प्रेमी प्रेमिका से प्रेम-याचना करता है और उसके सम्मान का भी आश्वासन देता है। अन्यत्र एक मुहावरा "चुल्लू भर पानी में डूब मरना' का प्रयोग हुआ हैं:—

जो तुम्हैं लाज होय भइया बहिन की
चुरुआ भरि पानी मैं बूड़ि मरि जाव।

चुल्लू भर पानी में डूब मरने का लाक्षणिक अर्थ हुआ लज्जा से दुःख

और पश्चात्ताप प्रकट करने का। ऐसे ही अनेक मुहावरों का कनउजी लोक-गीतों में प्रयोग हुआ है।

प्रतीक—प्रत्येक साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग होता है। कबीर, सूर, तुलसी, प्रसाद, और निराला ने भी प्रतीको को अपने काव्य में स्थान दिया है। इस दृष्टि से कनउजी लोक-गीत-कार भी किसी से पीछे नहीं हैं। उन्होंने अपने गीतों में अनेक प्रतीकों को स्थान दिया है। कनउजी गीतों में आत्मा के लिए 'पछी' तथा शरीर के लिए 'पिजड़ा' प्रतीक प्रयुक्त हुआ है:—

बड़ोई जतन करि 'पिजरा' बनाओ
तामैं घने-घने तार लगाए जी
तुला के कागन पै पिजरा मढाय दओ
मेरो 'पछी' ना कहूँ उड़ि जाय जी।

अर्थात् बड़ा ही यत्न करके शरीर रूपी पिजड़ा बनाया, जिससे पछी रूपी आत्मा कहीं उड न जावे।

जीव के लिए हंस का भी व्यापक प्रयोग है:—

उड़ि जाय हंस अकेला ह्रिय जगदरसन को मेला

मृत्यु होने पर जीव रूपी हंस संसार को छोड़कर अपरलोक को चला जाता है।

प्रेमी के लिए भ्रमर प्रतीक भी आता है:—

भूलो फिरै भँमर बाग नहि पावै।

एक प्रेमी अपनी प्रेमिका की खोज कर रहा है पर उसे कहीं पाता नही है। प्रेमी के लिए भ्रमर प्रतीक के कारण प्रेमिका के घर को बाग का प्रतीक बना दिया गया है क्योंकि भ्रमर को जैसे उद्यान में आनन्द प्राप्त होता है वैसे ही प्रेमी को अपनी प्रेमिका के मिलन पर। इस प्रकार हम देखते है कि प्रतीकों द्वारा लोक-गीतों में कवित्व भरने का सफल प्रयास किया गया है।

लोक-गीतों में समान भाव-धारा

प्रत्येक देश के काव्य-शास्त्रियों ने अपने-अपने देश के काव्य व नियमों और रूढ़ियों में बाँधने का प्रयत्न किया है और किर सीमा नक वे सफल भी हुए है। इसी कारण जब हम भावों की दृि से एक देश के साहित्य को दूसरे मे मिलाते है तो उनमें पर्याप्त मा मे हमें अन्तर दिखाई देता है। किन्तु लोक-गीतों के लिए यह बात घटि नही होती। चूकि मानव-हृदय सर्वत्र एक ही है और लोक-गीतों में उ की स्वाभाविक भावभिव्यक्ति के लिए स्वतंत्रता होती है। अतः उन यदि समान भाव-धारा हो तो आश्चर्य ही क्या है ?

विवाह ऐसा संस्कार है जिसका महत्त्व सब देशों में माना जात है। अतः इसी संस्कार के गीतों को लेकर हम उनकी तुलना कु विदेशी लोक-गीतों से करेंगे। विवाह गीतों मे कन्या की स्वतन्त्रता व उल्लेख होता है। एक कनउजी लोक-गीत मे माता-पिता आए हु काले वर को लौटा देना चाहते है परन्तु कन्या आग्रह करती है कि उसी वर से विवाह करूँगी नही तो विषपान कर लूँगी:—

छज्जा ऊपर लाड़ो बोली खाय जहर मरि जायं
भउँरी डारैं येही वर से।

इस गीत में कन्या को वर पसन्द आ गया है तभी तो वह इत आग्रह कर रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कन्या को वर चुन की स्वतन्त्रता थी। एक ग्रीक लोक-गीत मे पिता कहता है कि ' बेटी ! इस व्यक्ति से विवाह कर लो, देखो यह हैट पहँनता है।" बे कहती है-"मुझे तो स्वतन्त्र विचारों वाला पति चाहिए। हैट के लि मै इससे विवाह नहीं कर सकती।" पिता कहता है—बेटी ! इसके सा विवाह करलो। इसके पास बहुत धन है।" बेटी उत्तर देती है "मूँछ वा

के अतिरिक्त मैं और किसी को अपना पति नहीं बना सकती"।[१] इस गीत में कन्या अपने वर के चुनाव के लिए पूर्ण स्वतन्त्र दिखलाई गई है। एक राजस्थानी गीत में भी कन्या अपने पिता से कहती है कि मेरे लिए वर ढूंढ़ने के लिए इन बातों का ध्यान रखना :—

बाबाजी देस देता परदेस दीजो
म्हांरी जोड़ी को वर हेर जो
हँस खेल ये बाबाजी री प्यारी बनड़ी
हेर्‌यो ये फूल गुलबि कौ
कालो मत हेरो बाबा जी अंगपसीजै
लामो मत हेरो बाबा जी सांगर चूटे
ओछो मत हेरो बाबा वन्यू वतावे
ऐसे वर हेरो
कासी को वासी[२]

इस राजस्थानी-गीत से अनुमान लगाया जा सकता है कि कन्या इन तमाम शर्तों को इस लिए लगाती है क्योंकि किसी पुरुष से उसका प्रेम है और अप्रत्यक्ष रूप से उसी के बारे में वह पिता से कहती है। यदि

---

१. **ग्रीक गीत का अंग्रेजी पद्यानुवाद:—**

"Take him my daughter,
For he bears a hat"
"I, a frank husband won't
Marry for that"
"Take him my daughter,
His plenty of cash,"
"I wont have a husband,
Without a moustach."

२. **पारीक : राजस्थानी लोकगीत भाग १ पृष्ठ १६०-६१।**

यह बात न होती तो वर के खोजने के लिए जाते पिता से वर कैसा हो, इसका इतना सूक्ष्म-विश्लेषण न करती। फ्रान्स के एक गीत में भी कन्या की विवाह के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता का उल्लेख मिलता है। यह बात अवश्य है कि फ्रांसीसी कन्या अधिक स्पष्टरूप से कह देती है कि वह अपने प्रेमी से ही विवाह करेगी। गीत का भाव इस प्रकार है— पिता नित्य मुझसे कहते हैं कि बेटी विवाह कर लो। मैं उत्तर देती हूँ पिता जी नहीं, नहीं, मैं दूसरे से प्रेम नहीं कर सकती क्योंकि मेरे हृदय का देवता सेना में है।[1] इस प्रकार हम देखते है कन्या के वर चुनने की भावना सभी देशों के लोक-गीतों में एक सी ही पाई जाती है।

समान भाव-धारा की दृष्टि से जब हम भारत के विविध प्रान्तों के गीतों का तुलनात्मक अध्ययन करते है तो जान पड़ता है कि एक ही आत्मा भिन्न भिन्न भाषाओं में बोल रही है। यह सारे गीत एक ही चित्र-मंजूषा के विभिन्न पुष्प है और वे एक ही सूत्र में पिरोये गए हैं। समय बदलता रहा है, शासन बदलते रहे हैं परन्तु गीतों की एकता में कभी परिवर्तन नहीं हुआ। इन असंख्य लोक-गीतों की आत्मा अभिन्न है। भाषा का भेद होते हुए भी गीतों में व्याप्त मानव-हृदय उसके दुःख-सुख की अनुभूति, उसकी आशा और निराशा एक ही जैसी है। शब्दों की दृष्टि से स्थान-स्थान के गीत अलग-अलग होने पर भी सब में समान अर्थ का धागा पिरोया गया है। अर्थ की एकता

---

1. **Mon per me dit tonjours,**
   Marie toi, ma filla
   Non, non, mon, Pere,
   Je ne veux plus aimer
   Cor man amant est a I' armee.

गीतमय भारत को एकता प्रदान करती है।[1] समस्त प्रान्तो मे एक प्रकार के ही गीत मिलते है। अतः प्रान्तो के गीतो का यह आपसदारो भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की एकता का ज्वलन्त उदाहरण है। अनेकता मे एकता के दर्शन हमें यही होते है।

कनउजी-माता जिस प्रेम के साथ लोरी गाकर अपने पुत्र का मनोरंजन करती है, सुदूर स्थित गुजराती माता उसी प्रेम के साथ 'होलरड़ा' गाती हुई दिखाई देती है। राजस्थानी पुत्री अपने विवाह के लिये जिस प्रकार पिता से निवेदन करती है लगभग उसी प्रकार के अर्थ की शब्दावली का प्रयोग कन्नौज की कन्या भी करती है। विदा के गीतों मे जैसे मर्म-स्पर्शी-भाव कनउजी मे है वैसे ही और कही-कहीं उससे भी अधिक मर्मस्पर्शी भाव ब्रज, अवधी, बुन्देली, छत्तीसगढ़ी, तामिल, तेलुगु, कन्नड़, गुजराती, मराठी, राजस्थानी, पजाबी और कश्मीरी में भी है।

स्त्रियों में सतीत्व के आदर्श की झाकी हमें समस्त प्रान्तों के गीतों मे समान रूप से मिलती है। यह बात अवश्य है कि कही कुसुमा देवी की कथा को लेकर कहानी चलती है और कही किसी अन्य के नाम से। प्रेम-गाथाएँ भी प्रत्येक प्रान्त में मिलती है और उनके आदर्श एक ही प्रकार के होते हैं। कनउजी में ढोला, नल आदि की प्रेम की गाथाएँ हैं तो पंजाबी में हरि- रांझा की और राजस्थान में ढोला-मारू की। परन्तु प्रेम का मूलसूत्र जो मानव हृदय मे प्रम अकुरित करता है सब मे एक ही है।

लोरियो मे चन्द्रमा शब्द का किसी न किसी रूप में सभी गीतो में व्यवहार हुआ है। आन्ध्र-देश मे 'लोरी' का पर्यायवाची शब्द 'जौल-पाटा' है। शिशु चन्द्रमा को पकड़ना चाहता है। तेलगु माता कहती है :—

---

१. देवेन्द्र सत्यार्थी: धीरे बहो गंगा—आमुख —(वासुदेवशरण अग्रवाल) पृष्ठ १।

चन्दा मामा रावे
जा बिल्ली राभे
कण्ड् कि रावे
कोटि पुलू तेवे
वंडि मीदा रावे
वन्नि पुलू ते वे

अर्थात् हे चाँद मामा आओ, गाड़ी पर चढ़ कर आओ, फूल तोड़ कर लाओ और पीले पीले फूल देकर चले जाओ।

उड़िया में लोरियों का विल्लाखेला गीत कहते हैं। एक गीत में चन्द्रमा का उपहास किया गया है:—

जन्हां मामू रे! जन्हां मामू
मों कथा ही सुनो
विल-र-माछ चील खाई गला
खईची खंडिए वुणो।

अर्थात् हे चाँद मामा! मेरी बात सुनो। दंत की मछली को चील खा गई तुम जाल तैयार करो।

बंगाली-माता शिशु को सुलाती हुई कहती है:—

सकले देवतार आपु रे धन
नित्य कालेर तुई पुरातन
सबार छिली अमारहोली कैमोने।

अर्थात् तू सब देवताओं का प्यारा धन है नित्य काल की सबसे पुरानी वस्तु तू ही है। तू जो सबका था केवल मेरा ही कैसे बन गया?

उधर तेलगु माता कहती है कि:—

इन्तन्तादीपम्मु इल्लल्ला वेलगु
ईस्वरड़ी चन्द मामा जेगमल्ला वेलगु

माड़त्ता दीपम्मु जेगमल्ला वेलगु
इन्तन्ता मा अव्वाई माकड़ला वेगु

अर्थात् छोटा सा दीपक सारे घर को प्रकाशित कर देता है। चन्दा मामा सारे जगत को प्रकाशित कर देता है, छोटा सा दीपक सारे राज-महल को प्रकाशित कर देता है। छोटा सा मेरा बच्चा मेरी आँखों को प्रकाशित कर देता है।

एक कनउजी गीत में कन्या अपने पिता से कहती है कि:—
बाबुल हम तौ तुम्हारी चिरई चुनत-बिनत उड़ि जाय।
इसी से मिलती हुई पंजाबी गीत की एक पंक्ति देखिये:—
साड्डा चिड़ियाँ दाचम्बा वै, वावल असी उड़ जाना।

एक पंजाबी स्त्री को बहुत गर्व है कि उसके भाई की लाठी काले रंग की है। यह जहाँ पर भी चोट करती है, बादल की तरह गरजती है :—

जित्थै वज्जदी वछला वांगू गज्जदी
काली डाँग मरे वीर दी

इसी प्रकार कनउजी बहन का शूर भाई मुगल से लड़ने को जारहा है और वह उसे भोजन करा रही है :—

धीरे धीरे जेमौं मेरो बीरना वलइयां लेयं।
वीरना मुगिल लड़इया मैं ठाड़े।
बलइयाँ लेयं बीर की।

ऊपर तो सुख दुःख हर्ष और विषाद के गीतों में समानता दिखाई गई है। परन्तु उसके साथ ही साथ हम देखते हैं कि प्रकृति-वर्णन में भी गीतों में समानता मिलती है। उदाहरण के लिए वेला का फूल लिया जाता है। वेला का फूल जनता का परम प्रिय पुष्प है अतः इबका वर्णन सभी स्थानों के गीतों में मिलता है। कनउजी गीत में एक स्त्री

के लिए यह एक बड़ी समस्या है कि वह बेला के फूल का ग किस के गले मे डाले ? यदि वह पति के गले मे डालती है तो अप्रसन्न हो जावेगी :—

बेला फूलो आधीरात मैं गजरा की के गरे डारौं।
जो गजरा मैं सहिबा गरे डारौ सौतिनियाँ कौ दुःख होय
मैं गजरा की के गरे डारौं।

दूसरी ओर हम देखते है कि मैथिली स्त्री को इस बात का है कि उसके आँगन में बेले की बहार है :—

मोरा अंगनइया माँ बेला की बहार बा।

गीतो को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर हम इस निष्कर्ष पहुँचते है कि सभी लोक गीतो में समानाभावधारा प्रवाहित है। प्रदेश के कुछ गीत दूसरे प्रदेश से ऐसे मिलते है कि कभी कभी यह आश्चर्य मे डाल देते है और ऐसा जान पड़ता है कि ये ऐ एक दूसरे अनुवाद हैं।

परिशिष्ट (क)

कनउजी लोक-गीतों का अब तक कोई भी संग्रह प्रकाशित नही हुआ है। अतः इस अभाव की पूर्ति के लिए यहाँ कुछ चुने हुए कनउजी लोक-गीत दिए जा रहे हैं।

'सोहर'

१

अरि गंगा किनारे इक तिरिया सो ठाड़ी अरज करैं हो।
'गंगा एक लहरि हमैं देव सो जी मैं बूड़ि मरौं हो'।
'की दुख री तुमैं सास ससुर को की सजना परदेस हो।
की दुख है तुमैं माया बाप को की सगे जाये बीर हो'।
'ना दुख री हमैं माया बाप को ना सगे जाये बीर हो।
सासू तौ मोरी बहू ना कहै ना कहै ननदी भउजाइ हो।
मोरे सजना बांझ कहि टेरैं सो ई दुख डुबिएं हो'।
'ई दुख डुबिऔ जो ई दुख डुबिऔ।
तौ लौटि के रनियाँ घर जाव ललन तुम्हरे हुइहैं हो'।
अरि आई धना बढ़ई के तीर औ सबद सुनावै हो।
'बढ़ई तुम मेरे देउर जेठ कहो मेरो करि देव रे।
काठ को पूत गढ़ि देव तौ उइ का खिलइऐं हो।'
अरि नहाय धोय के ठाड़ी औ सुर्ज मनावै हो।
'सुर्ज ! काठ पूत जिउ डारो तौ एइ कौ खिलामैं हो।'
अरि बीते जौ नौ दस मास तो होरिल सबद सुनामैं हो।

अब तौ सास बहू कहि बोलैं ननद कहै भउजी हो।
अरि सजना जच्चा कहि बोले तौ छतियाँ सिराइ गईं हो।
बाजन लागे बाजे उठन लागे सोहर हो।
धनि-धनि गंगा तुम्है हो मेरे मान बढ़ाय दए हो।

७

चनन चौक बिन आँगन सूनो कोयल बिन अम्बाडार।
कोयल बिन अम्बाडार अहो जिया
गाय बछरा बिना सार सूनी बारे लाल बिन गोद सूनी।
राम लखन बिन सूनी अजुध्या संतन बिन चौपार अहो जिया।
सीता बिन मेरी सूनी रसुइयाँ राम बिना जिउनार सुनौ जिया।
राम लखन दोनों निकरे सिकारै कौन कौन खेलैं सिकार सुनौ जिया।
छइले बिरछ पर खेलै लरकवा खैचत राम दुआए अहो जिया।
झपटि के लछिमन गोद उठाय लए भरि आए नैनन नीर सुनौ जिया।
चलौ लरिकवौ बा बन चलिएँ जहाँ है मात तुम्हारी सुनौ जिया।
ऐसे पुरिख को मुखौ न देखैं जियत दए बनवास सुनौ जिया।
इक बन नागी दुसर बन नागी तिजे बन पहुँचे जाय सुनौ जिया।
खोलौ री माता चनन किवरियाँ आए हैं पुरिख तुम्हारे अहो जिया।
किन के हौ नाती लागत हौ कौन के लगत भतीजे सुनौ जिया।
राजा जशरथ के नाती लगत है लछिमन लगत भतीजे सुनौ जिया।
फाटौ न धरती हम समियामैं जियत दए बनवास अहो जिया।
फाटी है धरती सीता समियानी लछिमन गहि लए केस अहो जिया।
केस उखारि धरनि पै पटके बेई भए कुस डाभ सुनौ जिया।
फाटी हौ तौ अब ना फटिऔ हम सो दुखित संसार अहो जिया।
पहिलो मिलन राजा जनक को फेरि धरे अवतार सुनौ जिया
दूसरो मिलना आम डरइया कोयल सबद सुनाय सुनौ जिया।

३

; तौ कहै बँझिनियाँ ननद निरबंसिन एहो ननद निरबंसिन रे।
की बारी बिआही उइ घर से निखारैं रे।
ा से चली रे बँझिनियाँ बाँबी लगे ठाढ़ी रे।
ो से निकरी नगिनियाँ तौ दुख-सुख बूझै रे।
न दुख तुम्हें परिगए बांबी लगे ठाढ़ी हो रे '।
; कहे बंझिनियाँ ननद निरबंसिन रे
की बारी बिआही उइ घर ते निकारो है रे'।
: हैं छोटे से बच्चा बाँझ हुइ जइहैं हम नहिं डंसिहैं रे '।
ा से चलि भई बंझिनियाँ जंगल बिच पहुँची है रे।
ा से निकसी बघिनियाँ हो सो दुख-सुख बूझै रे।
नी कउन दुख की मारी जंगल बिच ठाढ़ी हौ रे।'
ा कहै बंझिनियाँ ननद निरबंसिन रे।
की बारी बिआही उइ घर से निकारो रे।
ौ जो डसि तुम खाव बंझिनियाँ नांव छूटे रे।
हैं छोटे से बच्चा बाँझ हुई जइहैं
हम नाहिं खइहैं रे
ा से चलि भई बंझिनियाँ नइहर बिच पहुँची है रे।
ीरते निखरी है माया सो दुख-सुख बूझो है रे।
ा हमका भितर कर लेव सो दुख-सुख बतामैं रे'।
:या न हो तुम बिटिया तुमहीं मेरी बिटिया हौरे।'
ा सासु तो कहैं बंझिनियाँ ननद निरबंसिन रे।
की बारी बिआही उइ घर ते निकारैं रे।
' हो माया तुम होरी माया-माया दुख-सुख को
ड़ा सो तुम हमसे पूछौ रे।'
:री है छोटी सी भउजी बाँझिनि हुइ जइहैं सो हिअन से जावौ रे'।
ा से चलि भई बँझिनियाँ गंगाजी पै पहुँची है रे।

'गंगा एक दायँ लेव लहरिया डुबन हम आई हैं रे।
बंझिनियाँ नांव टूटे रे'।
'हम नाही लीहैं लहरिया तौ पापिन कहइऔ रे।
बिटिया करौ न गंगा असनान पुत्र तुम्हरे हुइहैं रे।
बंझिनियाँ नाव मिट जइहैं रे'।

४

जेठ बैसाख की दुपहरी राम बन काढ़ो है।
पूना तो भये हैं बिपतिया बहुत संकट मैरे -
कुस को है उढ़ना बिछौना औ बन फल भोजन रे।
हकरो नगर के नौआ नगर के बरिया रे।
एहो रंगि रंगि बटै हरदिया रुचन दै आवौ हो।
इक बन नागी दुसर बन नागौ तिसरे बिआवन रे।
सब सखियाँ मिलि पूछन लागी केहि के रे
भये नंदलाल रुचन लै आए हो।
बन के नउआ बनै के बरिया सीता के भये नंदलाल।
रूचन हम लाये हैं रे।
पहिलो रुचन राजा दसरथ दुसरो कौसिल्या रानी रे।
एहो तिसरो रूचन लछिमन दिउरा रमइया न बतायो रे।
जसरथ लुटाए हैं पट ना कौसिल्या रानी अभरन रे।
एहो सिर की पगड़िया लछिमन दिउरा नउआ बिदा करि दओ रे।
भोर होत पै फाटे राम निखरे हैं जो भइया
दगर मगर माथो होय रूचन कहाँ पाओ है रे।
भइया न हो मेरे भइया भइया ! भौजी के भए नंदलाल रूचन हम पाये रे।
भइया न हो मेरे भइया तुमाहि मेरे भइया हौरे उइ अपराधिन की
नउआ हमऊँ कौ बतौते हमऊँ कछु देते रे।
राम ने पाती लिखि भेजी सितलदेव बाँचैं, एहो छाँड़ौ दिल

को किरोध लौटि घर आवौ रे।
एहो सीता ने पाती लिखि पठई राम जी बांचै एहो मरि के धरौ
औतार अजुध्या नहिं आमैं है रे।

५

घूम घुमारो इउ जुगिया अंगन मेरे ठाड़ो दुआरे मेरे ठाड़ो।
जुगिया पूँछन लागो घर को भेद घरइया तोरे कहाँ गए रे।
सासु हमारी नइहर गई ननद सजन घर रे
जिनकी मैं बारे बिआही' तेऊ बनिज गए रे।
इतने वचन सुनि जुगिया पलँग चढ़ि बइठे
तौ जुगिया गढ़न लगे अनगढ़ सोनो तौ पहिनौ मेरी धना रे।
इक बहुँ भरि के दुसरी अधखंडी जुगिया बहौ बहाँ भरि देव
तौ हुइहैं तुम्हाई गोरी धना रें।
पहिरि ओढ़ि जब ठाड़ी भईं तौ बाजन लगी घोड़ा की टाप है रें।
तो जुगिया भजिबै होय तौ भाजौ घरइया मेरे आय गये रे।
रनियाँ हौ मेरी रानियाँ तुमही मेरी रनियाँ ना तोरे छिड़ियाँ मकुलियाँ
जहाँ हुई भाजै रे।
रनियाँ ना तोरे बारे गदेला जिन्हैं लइ बइठै रे।
जुगिया बारे तौ मोरे बहुत हैं पलना झुलन गए
जुगिया धरि लेव बनियाँ कौ भेस सोंठि गुर बेंचौ रे।
देसन देसन हम फिरि आए हमैं काऊ ना छलि पाओ
बारा बरस की जच्चा रानी बतियन हमैं छलि लीनो रे।

६

चनन चौक बिन आँगन सूनो कोयल बिन अम्बा-डार
कोयल बिन अम्बाडार अहो जिया।
गाय बछरा बिन सार सूनी बारे लाल बिन गोद सूनी।

राम लखन बिन सूनी अजुध्या संतन बिन चौपार अहो जिया ।
सीता बिन मोरी सूनी रसुइयाँ राम बिना जिउनार सुनौ जिया ।
रामलखन दोनौं निकरे सिकारै कउन कउन खेलै सिकार सुनौ जिया ।
झरुले बिरिछ खेलैं लरकवा खैंचत राम दुआर सुनौ जिया ।
झपटि के लछिमन गोद उठाय लए भरि आए नैनन नीर सुनौ जिया ।
चलौ लरकवौ बा बन चलिएँ जहाँ हैं मातु तुम्हारी अहो जिया ।
इक बन नागी दुसरो बन नागो तीजे बन पहुँचे जाय सुनौ जिया ।
खोलौ माता चनन किवरियाँ आए है पुरिख तुम्हार अहो जिया ।
किन के हौ तुम नाती लगत हौ कौन के लगत भतीजे सुनौ जिया ।
राजा जसरथ के नाती लगत है लछिमन लगैं भतीजे अहो जिया ।
फाटौ न धरती हम समियामैं जियत दए बनवास अहो जिया ।
फाटी है धरती सीता समियानी लछिमन गहिलए केस अहो जिया ।
केस उखारि धरनि मैं पटके बेइ भए कुस डाभ अहो जिया ।
फाटी हौ तौ अबना फटिऔ हमसो दुखित संसार सुनौ जिया ।
पहिलो मिलना राजा जनक को फेरि धरैं अउतार सुनौ जिया ।
दुसरो मिलना आम डरइया कोयल सब्द सुनाय अहो जिया ।

७

छापक पेंड़े छिउलिया पतउआ घने घने हो ।
अरे रामा तीके तरे ठाड़ी हिरनियाँ तौ मन मैं उनमनी हो ।
चरतैं चरत हिरनवाँ तौ हिरनी ते पूछइ हो ।
हिरनी की तुम्हारी चरही सुखानी की पानी बिन मुरझी हो ।
हिरना आज राजा की छठी तुम्हैं मारि डरिहै हो ।
मचिया बइठी कौसिल्या रानी हिरनी अरज करै हो ।
रानी मांस तौ सीझै रसुइआ खलरिआ हमैं देतीं हो ।
पेंड़े पै टांगि खलरिआ तौ हेरि फेरि दिखती हो ।
रानी देखि देखि मन समझउती कि हिरना जियतै हो ।

जाव हिरनियां घर अपने खलरिया नहिं दीऐं हो।
जब जब बाजे खंजड़िया सवद सुनि सनकै हो।
हिरनी दउरि ढकुलिआ के तरे हिरना कौ विसूरै हो।

८

दोहद—

रनियाँ कौन फलन मन लागौ कौन फल लामैं ·
सकल चीज मेरे घर में एकौ नहिं भावै है रे।
नौरंगिया की साध नौरंगिया लै आबौ रे।
राजन घोड़े भये असवार नौरंगिया लेन गये है रे।
एक नौरंगिया जब टोरि नौरंगिया पेड़ बांधो है रे।
की केरे तुम बेटा कौन केरे नाती हौ रे।
कौन छैल बिजनारि नौरंगिया लेने आये हौ रे।
अपने दादुल के बेटा अजुलि के नाती हैं रे।
अपनी धना बिजनार नौरंगिया लेने आये हैं रे।
सासु हमारी बोले बोल जो बोलै है रे।
बहुअरि ऐसे फलन मन लागो कि पूता बंधाये हौ रे।
जिठानी हमारी बोलै बोल जो बोले है रे।
भोर जो भओ पौ फाटी चिरैयाँ बोली हैं रे।
जल्दी से खोलो चनन किवरियां हाथ मुँह धोबौ
, नौरंगिया कौ चीखौ हो रे।
पहिले चिखाबौ अपनी मैया सगी बहिनियाँ कौ रे।
राजा तिनकी जुठन हम खामै संचत मुख देखै रे।

९

गर्भिणी की अवस्था—

सैंया लगाई नौरंगिया रसै रस डोलै।

जब नौरंगिया मे दुइ दुइ पतौआ ।
काए धना उबकानी रसै रस डोलै ।
जब नौरंगिया में चार चार पतौआ ।
काहे धना मुरझानी रमै रस डोलै ।
जब नौरंगिया मै छः छः पतौआ
काए धना अनमानी रसै रस डोलै
जब नौरंगिया मै आठ आठ पतौआ
काए धना पियरानी रसै रस डोलै ।
जब नौरंगिया में नौ नौ पतौआ ।
काए धना पियरानी .... ।
दिल्ली सहर से वैदा बुलैबो धना नवज दिखवैबो ।
दूरि रहौ हमे जनि छुइओ सामी तौ हैं बौराने ।
रमै रस डोले ।

(१०)

—

अलबेली जम्हिरिया फूलि रही सो मेरी आली ।
सो मेरी आली सीतल छाँह दोनौं जने बइठि रहे ।
सो मेरी आली कीनी पूरी पकवान दोनों जने जेंइ रहे ।
सो मेरी आली गड़ुअन गंगा पानी दोनों जने पीय रहे ।
सो मेरी आली पाना पचासी की बिरिया दोनों जने रचिय रहे ।
सो मेरी आली खाई ना भांग धतूरे दोनौं जने मस्त रहे ।
सो मेरे राजा आइ गई गहिरी पीर धना गोरी उचकि रही ।
सो मेरे राजा भोर भओ पौ फाटी होरिलवा रोय रहे ।
सो मेरी आली घर-घर फिरत बयनवां जसोदा के लाल भये ।
सो मेरी आली दुआरे तौ बाजैं बधाई भितर सखि गाय रहीं ।

११

प्रसव-पीड़ा तथा पुत्र-जन्म—

कैसी अनमनी हौ आज नारि तुम काए अनमनी।
चोली चीर अरगनी टांगो केस लए छिटुकाए सुनौ जिया।
खन आंगन खन भीतर डोलै आवै पहारु पीर सुनौ जिया।
भोर होत पौ फाटन लागो केस्न लियो अवतार सुनौ जिया
काए की छुरियन नार छिनाओ काए के खपर हनवाओ सुनौ जिया।
सोने छुरन सो नार छिनाओ रूपै खपर हनवाओ सुनौ जिया।
गैया के गुबरन आंगन लिपाओ तिलने चौक पुराओ सुनौ जिया।
कौन जियाए कौन खिलाए कीके रे लाल कहाए सुनौ जिया।
ननदा ने जिआए देवकी खिलाए जसुदा के लाल कहाए सुनौ जिया।

१२

प्रसव-पीड़ा—

मै मरोरी दरद की मारी
पहली पीर जब आई मैंने अगना में बैठि बुझाई सुमिरि भगवान पीर की मारी।
दुसरी पीर जब आई मैंने सासु की गोद बुझाई मीचि के आँखी सुमिरि भगवान पीर की मारी।
तिसरी पीर आई मैंने जिठनी की गोद बुझाई सुमिरि भगवान पीर की मारी।
चौथी पीर जब आई मैंने दिउरा की गोद बुझाई बांधिलई मूठी सुमिरि भगवान पीर की मारी।
पचई पीर जब आई मैंने सजना की गोद बुझाई लगाय लाओ गरे मैं सुमिरि भगवान पीर की मारी।
गरे लगाओ सजन ने होरिलवा ने सबद सुनाई जुड़ाय गओ जियरा सुमिरि भगवान पीर की मारी।

बधाई— १३

बधइया राजा बीर की बधइया राजा बीर की ।
उठौ उठौ धना कुलतारनी बधइया राजा बीर की ।
मेरी बहिनी के चरन छुइलेव बधइया राजा बीर की ।
मेरी बहिनी कौ बिरिया लगाबौ बधइया राजा बीर की ।
मेरी ताल पुखरिया सूखि गई बधइया राजा बीर की ।
मेरे कुँअना मैं परि गओ रेत बधइया राजा बीर की ।
जाव जाव बहिनि घर अपने बधइया राजा बीर की ।
बइठौ बइठौ बिरन घर अपने बधइया राजा बीर की ।
तुम जोड़ के असिल गुलाम बधइया राजा बीर की ।

१४

धिआ ना जलमीं जलमे हीरा लाल ।
मेरी दाई बड़ी जू कै कै रूठना लेव ।
मेरे मैके की चुनरी सो ओढ़ि घर जाव ।
मेरी अम्मा बड़ी जू कै कै रूठना लेव ।
मेरे मैके को कंगना सो पंहिरि घर जाव ।
जिठनी बड़ी जू कै कै रूठना लेव ।
मेरे मैके को कंगना पंहिरि मो जाव ।
ननद बड़ी जू कै कै रूठना लेव ।
मेरे मैके की तिलरी सो पंहिरि घर जाव ।
मेरी देउरानी जू कै कै रूठना लेव ।
मेरे मैके की पहुँची सो पंहिरि घर जाव ।

१५

नेग—

ऐसी दाई हरजाई लाल को नारा न छीनै ।
नारा छिनाई अजुध्या माँगै मथुरा माँगै हनवाई । लाल०

द्वारे से ससुरा हँथिया पठाओ हंथिऔ न लेय वह दाई लाल०
द्वारे से जेठा उंटिला पठाओ उंटिलौ न लेय वह दाई लाल०
द्वारे से दिउरा घुड़िला पठाओ घुड़िलौ न लेय वह दाई लाल०
द्वारे से सइयाँ मोहरैं पठाई मोहरौं न लेय वह दाई लाल०

१६

नेग—

हम तौ अकेली सइयाँ सब ना लुटाय दीजौ ।
सास जो आवैं सइयाँ द्वारे ते लौटाय दीजौ ।
सास को नेग मेरी अम्मा ते कराय लीजौ ।
जिठनी जो आमैं सइयाँ द्वारे ते लौटाय दीजौ ।
जिठनी को नेग मेरी भउजी से कराय लीजौ ।
ननदी जो आमैं सइयाँ द्वारे ते लौटाय दीजौ ।
ननदी को नेग मोरी बहिनी ते कराय लीजौ ।
दिउरा जो आमैं सइयाँ द्वारे ते लौटाय दीजौ ।
दिउरा को नेग मोरे भइया से कराय लीजौ ।

१७

सन्तति स्नान—

जनदा बधाई री आज मोरे ।
जब गउआ को गोबर मँगाओ अँगना लिपाओ री माई ।
जब गोबर अँगना लिपाओ चौक पुराव री माई ।
जब मुतियन चौक पुराई कलस धराव री माई ।
जब सोने को कलस धराओ दिअना जराव री माई ।
जब मानिक दिअना जराओ पटुलि धराव री माई ।
जब चंदन पटुलि धराई जसुदा बुलाव री आली ।

१८

जच्चा का नखरा—

अरे आली अँगना मैं बवैंयों मैं सोंठ धनौची पिपरी ललना।
काहे सिल को सिलौटा काहे लोढ़ा ललना हो।
सोने को सिल को सिलौटा रूपे को लोढ़ा ललना
बाहर से आये ससुर राजा अरज बहुत करैं रे।
पिऔ बहुअरि रानी पीपर होरिल दूध पियैं रे।
पीपर करुई कसैली बहुत बकठैली ललना।
गेहुँआ बरन मोरी देहीं जरद हुइ जैये।
कपुर बरन मोरी जिभिया जरद हुइ जैये।
बाहर से आये जेठ राजा अरज बहुत करैं रे।
पियौ बहुरानी पीपर होरिल दूध पियैं रे।
बाहर से आये दिउरा राजा अरज बहुत करैं रे।
पियो न भउजी पीपर होरिल दूध पियैंरे।
बाहर से आये साहब राजा हाथ चाबुक लए है।
पियौ हरामजादी पीपर होरिल दूध पियैं रे।
एक कटुरवा का पीमैं दस भरि लाबौ जो रे।

१९

मुण्डन—

झड़ले हैं आम अमिलिया अरे अउर जम्हिरिया अउर जउन के खेत।
झलरिया मोरी पाउनि रे।
अथइयाँ बइठे आजा उनके मुन्नाराम
एहो आजा अँगे लुटनी पसारे।
मुड़ाबौ आजा झालरि रे।
अथइयाँ बइठी आजी उनकी मुन्नाराम

एहो आजी आँगे लुटनी पसारे।
मुड़ाबौ आजी झालरि रे।
अथइयाँ बइठे दादा उनके मुन्नाराम
एहो दादा आगे लुटनी पसारे।
मुड़ाबौ दादा झालरि रे।
अम्मा उनकी जाँग बइठारे झालरि मुड़ामैं
दादा उनको खरचैं दाम झालरि मेरी पाउनि रे।
(इसी प्रकार अन्य सम्बन्धी भी)

यज्ञोपवीत के गीत

२०

कासी बेद पढ़ि आये नरायन बरुआ।
किन जा दई है पीरी लँगुटिया
किन इउ जनओ कराओ
आजा मेरे दई है पियरी लँगुटिया आजी ने जनओ कराओ
बाबू ने दई है पियरी लँगुटिया माया ने जनओ कराओ।
चाचा मेरे दई है पियरी लँगुटिया चाची ने जनओ कराओ।
भइया मेरे दई है पियरी लँगुटिया भौजी ने जनओ कराओ।

२१

को मेरे मुजबन जैऐ मुंजिया कटैऐ।
को लै आबै मूँज मूंज को जनओ चहिए।
आजा मेरे मुंजबन जैएं मुजिया कटैएं।
बेई लै आमै आली मूँज मूँज के जनेऊ चहिए।
पहिलो जनेऊ मूँज को दूसरो हिरनवां की खाल
तिसरो जनेऊ सूत को रंगो है हरददिया की गाँठ।

२२

लावौ न आजी मोरी सतुआ औ दुइ लड़ुआ ।
जइऐं हम कासी बनारस वेद पढ़ि अइऐं ।
कहाँ ते लामैं मेरे लाल सतुआ औ लड़ुआ ।
धरई अजूबी तोरी बिदिया वेद पढ़ि लेव ।
लावौ न माया मेरी सतुआ औ दुइ लड़ुआ ।
जइऐं हम कासी बनारस बेद पढ़ि अइऐं ।
कहाँ ते लामैं मेरे लाल सतुआ औ लड़ुआ ।
धरई अजूबी तोरी बिदिया बेद पढ़ि लेव ।
(इसी प्रकार अन्य लोगों से भी)

विवाह के गीत

२३

फूल को बेला सबाव सेर सतुआ ऊपर गुर की बटी ।
भतैयन बहुत संकोच करी ।
भात मांगन आई लली जू बीरन की बखरी भतैयन०
भैया रोबैं बहिनियाँ भेंटैं भौजी कौ रपट परी भतैयन०
आधी फुलरिया डेढ़ मिथौरी खूंटा पै जेमैं लली भतैयन०
अब छोटी भौजी डविया खोली उमें एक तनी भतैयन०
जैसी छिनरिया हमकौ रपटी तैसी झमकि चलौ भतैयन०
एक बन नागी दूजे बन पहुँची तिसरे लुटितौ गई भतैयन०
काऊ लओ लहंगा काऊ लओ लुगरा चोली पे लूटि परी भतैयन०
सेर सेर गुड़ बांटों बहिनी धरम सेवचै भतैयन०

२४

राम लखन दोऊ निकरे अहिरिया कौन बन खेलैं सिकार ।
राम ने मारी डेड़ सौ हिरनी लछिमन मिरग पचास ।

मारि हिरनियाँ कजरी बन डारी राम कौ लगी पियास
है कोई ऐसो अवध नगरिया राम कौ जल अंचवाय
नाम न जानै तेरो गोत न जाने कैसे जल अंचवाय
राजा जनक की कन्या सितलदे राम कौ जल अंचवाय
राम ने अँचओ लछिमन अँचओ अँचओ सब परवार।
धम धम वाजै बरायत सोर भई चहुँओर।
नाचत जाय साजन की पुतरैं घुमड़त आमैं निसान।

२५

संइयाँ साँझ के निकरे आए हैं भोर भए
कौने बिलमाये कौने के बस में परे
लौंगन बिलमाए जैफर बस मैं परे
लौंगन कटबैहौं जैफर कलम करे
महलन ऊपै रनियाँ रूप सरूप करे
महलन गिरिवैयैं खिरकी से किरच धरैं
रनियाँ मरवैयौं बलमा बस मैं करैं।
पतिया लिखि भेंजैं नइहर खबरि करैं।
भैया चढ़ि आमैं संइयाँ पै मार परै।
थोरो-थोरो मरियौ जोनि की बैस बुरी
बहिनी परपंचिनि जिन परपंच करे
पहिले मरवावै पीछे कौ दरद करै।
संइयाँ साँझ के निकरे आए हैं भोर भये।

२६

कि एजी माँझ-माँझ रूखवा इक ठाड़ो इक महुआ इक आम।
,, उहितर ठाढ़े दुइ परदेसिया एक लछिमन इक राम

कि एजी सिव का पूजन निकरी सिलददे सब सखियन केरे संग
,, की तुम हौ कोई बाट बटोही की रे विदेसी लोग
,, ना हम हैं कोई बाट बटोही नारे बिदेसी लोग
,, हम तौ हैं दोनों राम लछिमन राजा जसरथ जू के पूत
,, नौ मन मुनवां जनिक मंगवाओ धनिस धरो बनवाय
,, जो कोई धनिस की टोरि दिखावै सीता कौ व्याहि लै जाय
,, धनिस टोरन कौ राम जी चले हैं लछिमन ठाड़े मुसक्यायँ ।
,, कोमल गात उमिरि भइया थोरी बहियाँ मुरुकि ना जाय
,, बहियाँ रे बहिया जिनि करौ लछिमन फिरि पाछे पछिताव
,, धनिस टोरि नौ खण्ड करे हैं सीता कौ व्याहे लए जाँय ।
,, सीता कौ व्याहि अवधपुर लै गये घर-घर बजत बधाई
,, माँझ-माँझ इक रुखवा है ठाढ़ो इक महुआ इक आम

ज्योनार— २७

हरि जेंउत हैं जिउनार गामैं सजनी सारी ।
कुण्डन पुर की सोभा आली हमते कही न जाय ।
छार-छार लछिमी जहँ जलमी वरनै को कवि आय ।
थकित उपमा सारी ।
चन्दन की चौकी बिछवाई सोने से मढ़वाय ।
मनि मानिक पायन मैं लगि रहे नजर नाहिं ठहराय ।
जगमगाय रही सारी ।
मखमल के जहँ बिछे गलीचा मसनद दये दबाय ।
पमन देव ठाढ़े करि डुलामैं सीतल पमन चलाय ।
खुसी तन बढ़ै भारी ।
कंचन थार कटोरी कंचन कंचन गिलास मँगवाय ।
कंचन धरी सुराही सब इतर दओ छिड़काय ।
आवै खसबोय भारी ।

पुरी अउर कचउरी खस्ता बिढ़ई दई सिकाय
माल पुआ रसगुल्ला परसे पेड़ा परसे आय
इमिरती हैं प्यारी ।

खुरचन पेड़ा बालूसाही कलाकंद ढबदार
गुझियाँ बरफी लड्डू रबड़ी जलेबी नानखताई त्यार
धरीं आगे सारी

मोती चूर बेसनी लड्डू रबड़ी खोयादार
मठरी पापर कचरी परसी फली दई परसाय
मूली और जिमीकंद टिंडी परमल मेथी लाय
बनी हैं प्यारी सारी ।

पालक बथुआ कुलफा कमरख सबै दए परसाय
कैंत की चटनी करी चटपटी सुन्दर सुघर बनाय
बनाय सवादिल सारी ।

दालमोंठ समोसा पिस्ता मिरचौनी निमकीन
दारि चना की बड़ी कुरकुरी खस्ता है बड़ो रसीलो
टीकिया आलू की ।

दही बड़ा और पकौड़ी मै अदरख दई डरवाय ।
सोंठ अउ रउते सब परसा के कहं लौं देयँ गिनाय ।
सीखरन परसि दई ।

मोहन थार गजर को हलुआ पेठा है रसदार
गजक बढ़िया प्यारी ।

२८

विदा—

हम कौ लिखौ है बिदेस रे सुन बाबुल मेरे ।
जा दिन भइआ तुम्हरो जलम भओ है भइ है सोने की रातिरे ।

आजिहु बेसैं माइउ बेसैं ददुलि बेसैं चौपारि रे ।
जा दिन भइआ मेरो जलम भओ है भई है बजुर की राति रे ।
आजिउ रोमैं बाबुलि रोमैं अजुलि रोमैं चौपारि रे ।
तुम कौ तौ बिरन मोरे दादुलि चौपरिआ हम कौ तौ लिखो है बिदेस रे ।
हम तौ ददुलि मोरे गगरी घैलना डुबत-डुबत डुबि जाँय रे ।
हम तौ ददुलि मोरे सार की गइआँ जहँ बाँधौ तहँ जाँय रे ।
बगिया के ज्यौंरे ज्यौंरे निकसी पलकिआ कोयल सब्द सुनाय रे ।
अब का बोलौ सउति कोयलिआ छूटो बबुलि को देस रे ।
लहुरे बिरन मोरी पकरी पलकिआ हमरो बहिन कहँ जाय रे ।
धिआ पठै बाबुलि घर को लउटे घर देखो अंधियार रे ।
घर मेरो बासो अँगन तिबासो गुबर सुखै मेरी सार रे ।

२९

बिदा—

आम नीम तरे ठाढ़ी रे बेटी माया कलेवा लय ठाड़ि रे ।
खाय न लेव मोरो बेटो परदेसिन तुमरो कलेवा बड़ि दूरि है रे ।
सोउत बेटो की डुलिया फँदामौ सोउत करी असवार है रे ।
इक बन नागो दुसरो बन नागो तिसरे मैं पहुँची जाय है रे ।
परदा खोलि जब बेटो जू देखो छूटो नैहर को देस है रे ।
तौ मइके को कोई नाही बाप को कोई नाही ।
ये हो मारि कटारि मरि जाउँ तौ मइके को कोई नाहीं है रे ।
घोड़ा चढ़ेते सिरिवर उतरे बहुत करी विनती
काहे हूलि कटारि मरि जाव तौ हम तुम रे
ये ही करिहैं अजुध्या को राज दोनों जने रहिबे रे ।

३०

बन्ना—

दिल्ली मैं सोर भओ भारी बन्ना मेरो गान्धी भओ है ।
आजा उइको चरखा चलाबै आजी बिनै गजी गाढ़ा बन्ना•

दादा उइको चरखा चलावै माया बिनै गजी गाढ़ा बन्ना०
चाचा उइको चरखा चलावै चाची बिनै गजी गाढ़ा बन्ना०.
भइया उइको चरखा चलावै भउजी बिनै गजी गाढ़ा बन्ना०
नाना उइको चरखा चलावै नानी बिनै गजी गाढ़ा बन्ना०
(इसी प्रकार अन्य लोग भी)

३१

बन्ना—

रघुनन्दन फूले न समाँय लगुन मेरी हरे-हरे
लगुन मेरी आय गई।
सिर सोहै झालरि को मउरा कलंगी अजब बहार लगुन०
माथे उनके तिलक बिराजै सिर सोने की खउर लगु०
नैनन सोहै बरेली को सुरमा रेखैं अजब बहार लगुन०
कान सोहैं सूरति के मोती चुन्नी अजब बहार लगुन०
अंग सोहै अतलस को जामा फेंटा अजब बहार लगुन०
पाँव बने रैदासी बूटा मोजा अजब बहार लगुन०
संग सोहै भइयन की जोड़ी सोभा अजब बहार लगुन०

३२

बन्नी—

नदिया किनारे एक सारस बोलै इक महुआ इक आम रे।
नग्र अजुध्या मैं दुइ बर सुन्दर इक लछिमन इक राम रे।
लीपौ औ पोतौ छिड़को धनुस धरो उठकाय रे।
जो यह धनुस उठामैं रघुनन्दन सीता ब्याहि लै जायँ रे।
न्हाय धोय सीता सुरज मनामैं सुरज बिनती हमारि रे।
भारी धनुस पतरे रघुनन्दन बहियाँ मुरि नहिं जायँ रे।
काए कौ सीता तुम सुरज मनावौ काए को बिनती तुम्हार रे।

धनुस तोरि मैं खण्ड बनामौं ब्याहि तुम्हैं लै जायँ रे ।
इतनी सुनि सीता मगन भई हैं सीता के जियरा अनन्द रे ।
अब हम जैयँ राजा दसरथ घर करिहै अजुध्या को राज रे ।

३३

नकटा

बेला फूलो आधी रात गजरा मैं की के गरे डारैं ।
जो गजरा ससुर गरे डारौं तौ सासुइ दुख होय
जो गजरा जेठ गरे डारौं जिठनी का दुख होय
जो गजरा दिवर गरे डारौं दिउरनियाँ का दुख होय
जो गजरा संइब गरे डारौं सौतिनियाँ का दुख होय ।

३४

नकटा

रोवै मेरो लाल जसोदा लै लेव कनियाँ ।
धरती घूमैं प्रथिमी घूमैं घूमैं सारी दुनियाँ ।
अपने महल में ऐसी घूमैं जैसे नाक नथुनियाँ ।
चौका करियौ बरतन करियौ गोबर लैयौ पनियाँ ।
जबहि काम से निरचू हुइहैं तब लय लीहैं कनियाँ ।
पानी माँगि के देखै लाला कढ़त हैं
कहौ लाल हम दही खवामैं स्याम मथी है मथनियाँ ।

पियरी ३५

तुम्हरो मड़ओ न पिया हमैं न सुहाय हमरे बिरन नहि आयें ।
लावौ न रनियां मोरी कलम दवायत चिठिया लिखौ तुमरे वीर कौ ।
रानी के बिरन चले आमैं ।
उहि रे देस राजा गंगा बहत है हमरे बिरन कैसे आमैं ।
उहि रे देस राजा ठगवा लगत है हमरे बिरन कैसे आमैं ।

उहि रे देस राजा धूपा बहुत है हमरे बिरन कइसे आमैं ।
केवट बुलाय रानी नइया चलावौ रानी के बिरन चले आमैं रे ।
बढ़ई बुलाय रानी ढखवा कटावौ रानी के बिरन चले आमैं रे ।
मलिया बुलाय रानी बगिया लगावौ रानी के विरन चले आमैं रे ।
भइया जी पूछैं अपनी बहिन ते कितनों खर्च तोरे माड़ये रे ।
सासु का चहियै राजा लहर पटोरा ननदी अवध रंग चूनरी ।
भैनें का चहिये राजा पांचौ कपड़ा हमका तौ पियरी धोति रे ।
बहनोई का भइया आसिल घोड़ा इत्तो खर्च मोरे माड़ये रे ।
जेहि के न होय बहिनी इतनो खरच हाँथ पियरि करि आवई ।
सासु की चोरी ननद की चोरी खरच चलावौ राजा वीर को ।
लइके बचुका भइया मड़ये बइठे जानौ बजाज के पूत हैं ।
लइके थइली भइया मड़ये जो बइठे जानौ सराफ के पूत हैं ।
लइके डब्बा भइया मड़ये जो बइठे जानौ सुनार के पूत हैं ।

३६

निकरौसी—

लड़इते मोरे रचियौं मैं बारे वियाह ।
अम्बा बउरन देव महुआ कुंचन देव लड़इते लगन देव बइसाखं ।
अमवा बउरि रहे महुआ कूँचि रहे अजुलि मोरे लागि गए बइसाख ।
अम्बा की डार एक बोलै कोइलिया बोलत बचन सुहावै ।
जो जनते हम नतिया मोरे व्याहन जइहैं
लड़इते डगमग बगिया लगउते नाती मोरे ।
(इसी प्रकार अन्य सम्बन्धी भी)

३७

होरी—

कौन रंग बिहारी बन बासुरी बजामैं ।
जमुन जल भरन गईं सब ब्रजनारी ।

अपनो मंडिल भूली गलियन ठाड़ीं ।
बन में बन मोर नाचैं मोहैं मोहैं बनचारी ।
गोकुल में कान्ह नाचैं मोहैं राधा प्यारी ।
वेद पढ़त ब्रम्हाँ भूले-भूले बिरमचारी ।
मुनियन के ध्यान छूटे बोलैं जै जै कारी । कौन रंग.........

फाग

३८

किन्ने मारे बालम मेरे रनमे-किन्ने मारे......हरे ।
सोने सिंघासन बैठी सुलोचन सोच करैं अति मन मैं ।
देखन लगी भुजा कौ रानी खाइके पछाड़ ऐसी गिरी है धरन मैं-कि
करि अति क्रोध सुलोचन रोवैं बहुत नीर नैनन मैं ।
ऐसो बीर कौन दुनिया मैं काटि भुजा जाने फेंकी धरन मैं । किन्नै
धरती जीति पिरथिमी जीती वासुकि जीते हैं छिन मैं ।
सात दाँय इन्दर को जीतो जाने का मारो मेरे पिया के भुजन मैं ..
हम जानी अम्मर मेरी चुरियाँ तब पहिनी हतीं कर मैं ।
बाबू रामचरन पद हरि के जाने कहा लिखी है करमन मैं......कि

फाग

३९

ताल बजाय भिम्म दहलानो-तालाब जाय...।...हो ।
ताल बजाय भिम्म दहलानो बादर सो घहरानो ।
फूलो अंग भओ जब दूनो तब कीचक मन मैं घबरानो.......
भिम्मा जोधा यों उठि बोले भेद न तुमने जानो ।
लड़ि ले आज अधम अभिमानी तेरो काल आय नियरानो....
दोनों लड़त मस्त जैसे हाथी भुज गहि भिम्मा तानो
ऐसी पटक मारि धरनी में कढ़त प्रान कीचक ठहनानो......
नौबतराय कहैं कर जोरी भेद न केऊ जानो ।
बाहर गाँव लहास लइ डारी भिम्मा बदलो भेस जनानो........

सावन के गीत

४०

ननद भौजी दोनों पनियाँ कौ निकसीं एकु छैल बोले बोल ।
कौन रंगन बहिनी ऊरे छैलवा कौन रंगन देखे सिर पाग ।
गेहुआ रंगन भैया ऊरे छयलवा कुसुम रंगन बाँधे पाग ।
लाबौ जो माया मैया पाँय की पनहिआँ और नँगि तरवार ।
हम तौ पूता मोरे चरखा कातति हैं भौजी से लै लेव जाय ।
लावौ जो भौजी मोरी पाँय की पनहिआँ और नगिन तरवार ।
हम तौ दिउरा मेरे रसोई खँचति हैं बहिनी से लै लेव जाय ।
लाबौ न बहिनी पाँय की पनहिआँ और नगिन तरवार ।
हम तौ भइया मोरी गुड़िया खिलत हैं भौजी से लेव जाय ।
लावौ न धनियाँ मोरी पायं पनहिआँ अउर नगिन तरवार ।
हम तौ सामी मोरे ललन खिलौती खुटिया धरी तरवार ।
सामी मोरे झपट के लै लेव जाय ।
एक बन नागी दुसर बन नागी तिसरे में डारो है मारि ।
भइया मोरे तिसरे में डारो है मारि
काहे भरी है भइया पाँय की पनहियाँ काहे भरी तरवारि ।
ओस भरी पाँय की पनहियाँ रकत भरी तरवार ।
मारो तो बीरना मोरे मारि न जानो मारो सगो बहनोई ।
तुमही बहिनी मोरी चेत चिताए तुमही दये बनबास ।
काहे की पहिरौं हरी पेरी चुरिया की पै करौं सिंगार ।
को रे छवैंये राँड़ की मड़ैया कौन करै पतिपाल ।
केहिकी देहरिया लै बैठइयौ केहिके सहइऔ बोल ।
अपनी देहरिया हम लै बैठैहै हमहि सहैं हैं बोल ।
हमारी तौ पहिरौ बहिनी हरी पेरी चुरियाँ हमही पै करौ सिंगार ।

४१

साउन भइया मेरो आउन कहि गओ री ।

कउन रितु अम्मा मेरी औढ़ै सालुआरी ,
कउन रितु केला की बहार री। सावन……
कउन रितु अम्मा मेरी कउन रितु मइया मेरी ओढ़ै सालुआरी।
जाड़ेन ओढ़ौ तुम बेटी मोरी सालुआरी
गर्मिन लाड़ो मेरी केला की बहार री।
मावन ओढ़ौ बेटी मेरी चूनरी री। सावन……
कउन रितु खइयौ तुम अम्मा मेरी बाजरा री।
कउन रितु अम्मा मेरी गेहूँ की बहार री।
कउन रितु खइयौ अम्मा मेरी सेंवरी री। सावन……
जाड़ेन खइयौ मेरी बेटी बाजरा री
गरमिन लाड़ो मेरी गेहूँ की बहार री
साउन बेटी मेरी सेमिन की बहार री। सावन……
कउन रितु रहियैं अम्मा मेरी सासुरेरी
कउन रितु मैया मोरी ननसार री।
कउन रितु मइके की बहार री। सालन……
जाड़ेन रहियौ बेटी मेरी सासुरे री।
गरमिन लाड़ो मेरा' रहियौ ननसार री
साउन लाड़ो मेरी साउन बेटी मेरी मइके की बहार री
किनकौ मैं परसौं अरी मइया मेरी पूरियाँ जी
किनकौ मइया मेरी नो दस थार
किनकौ परोसों मइया सेंवरी री सावन……
(बबुली) ददुली कौ परसो बेटी मेरी पूरियाँ री
चचुली को बेटी मेरी नौ दस थार री
तिरना कौ परसो अरी लाड़ौ मेरी सेंवरी री। सावन……

४२

जो तुम माया मेरी धरम की हुइओ साउन बीरन पठइयौ।

बाप तुम्हारे बेटी देस के राजा ओऊर बसत परदेस।
जेठो बिरन बेटी धनियाँ को लोभी नित उठि जइयै ससुरारि।
लहुरो बिरन बेटी निपट अनारी नदि नारे देखि डिराय।
ऊँचे चढ़ि-चढ़ि बहिनी देखै आज बिरन मेरो आवै।
आइ गई न डुलिया आई गए कहँरवा आइ गए बिरन हमार।
बैठो न डुलिया बैठौ कहँरवा बैठो भैया मेरे तखत बिछाय।
कहि लेव माया जू की बात।
माया तौ बहिनी मेरी अन्न न पानी भौजी कही पैंलाग।
बैठौ न बहिनी मेरी मचिया जो डारी कहि लेव सासु जी की बात।
सासु तो बिरना मोरे अइसी निरदइनि सोउन कल ना देय।
रँधीं मछरियाँ सींके धरीं पै रोटी पै नून न देय।
माया अँगारू जनि कहियौ बिरना पेट मारि मरि जाँय।
भौजी अँगारू जनि कहिऔ बिरना ओऊ नइहर कहैं जाय।
बहिनी अँगारू जनि कहिऔ बिरना ओऊ ससुरे नहिं जायँ।
ऊँचे चढ़ि-चढ़ि माया हेरैं आज धिया मेरी आवै।
छूंछी है डोलिया छूंछे कहँरवा छूंछे हैं पूत हमार।
उतरौ न डुलिया उतरौ कहँरवा बैठौ न पूत तखत बिछाय।
कहि लेउ बेटी जू की बात।
बहिनी तौ माया मेरी ऐसी रोवै जैसे मघा के बूंद।
देह तो मैया ऐसी मैली जैसे दिवाल को लेस।
कपड़ा तौ मैया ऐसे मैले मनौ तेलिया को चीकट।
निकरे रे पूता निपट कपूता बहिनी रोवत कैसे छोंड़ी।
लाबौ न माया ढाल तरवरिया देस मारि धिया देयँ।

४३

ऊँचे से बरोठवा ससुर जू के तेहि चढ़ि हेरौं मैं बाट
मेरे परदेसिन के बीरना रे।

कहा चढ़ि आये दादुलि मोरे का चढ़ि आए काकुलि मोरे
का चढ़ि आए बिरना मोरे ।
ऊँटिला चढ़ि आए दादुलि मोरे घुड़िला चढ़ि काकुलि मोरे
चनन पलकिया बिरना मोरे आए
का लैके आए दादुलि मोरे का लै काकुलि हमारे
का लैके आऐ बीरन मोरे ।
कोंहरी लै आए काकुलि हमारे मटुका लै आए दादुलि मोरे
चटक चुनरिया बिरना लाए ।
कहना उतरे मोरे दादुलि कहना काकुलि हमार
कहना उतरे बीरन हमार ।
द्वारे में उतरे दादुलि मोरे बरोठवन उतरे काकुलि हमार
अँगना मैं उतरे बीरन मोरे ।
ऊँचे से बरोठवा ससुर जू के तेहि चढ़ि हेरौं मैं बाट
मेरे परदेसिन के बीरना रे ।

४४

कजली—

रिम झिमि परै फुहारि औ बुँदिया टपकि रहीं ।
झिल मिलि बहै बयार पमन झलि डोल रही ।
डोलै नरंगिया की डार कोयलिया कूकि रही ।
गरजै घटा घन घोर मुरइला कूकि रहे ।
बाबा गए परदेस बड़ो सुख दै के गए ।
अँगना चँदनवां के गात हिंडोलना दै के गए ।
सँइयाँ गए परदेस बड़ो दुःख दै के गए ।
छतिया बजर किवरिया दै के गए ।
जोहों बटोहिया तोरी बाट काहे घन नीर झरी ।

की तोरो नइहर दूर कि तोरी सास लड़ी ।
हमरे बलम परदेस बहै हम सोच करैं ।
ना मेरो नइहर दूर न मोरी सास लड़ी ।
हमरे बलम परदेस बहै हम सोच करैं ।
गरवा मै देंउ गलहार मोतिन की माल लड़ी ।
छोड़ौ परदेसिया की आस हमारे संग चलौ ।
अंगिया लगै गलहार मोतिन की माल लड़ी ।
हम तौ है सजन तुम्हार देखि धन मुरझि परी ।

४५

डुँड़वा पीपर मइहाँ गड़े हैं हिंड़ोलना हिंड़ोलना
अरे का सासू हमऊँ री जांय ।

जो बहुआ मोरी झुलुआ के सथिनी चकिया पीसे धरे जाव ।
चकिया जो पीसि उठाय धरि दीनी कही सासुल अब हम जायँ ।
जो तुम बहुआ मोरी झुलुआ की सथिनी गुबरा पाथे धरे जाव ।
अरे पनिया भरे धरे जाव ।
पनिया भरि के घनौची धरि दीनो कहौ सासुल अब हम जायँ
जो तुम बहुआ झुलुआ की सथिनी रसोई खेंचे धरे जाव ।
रसुई खाँचि जो खिरकी धरि दीन्हीं कहौ अब सासु हम जाँय ।
जो बहुअरि मोरी झुलुआ की सथिनी गहनों उतारे धरे जाव
गहनों उतारि डब्बा धरि दीनो कहौ सासु हम जायँ ।
एक झूँक झूलो दुसरो झूँक झूलो तिसरे दिउरा डारो मरि
बर तरे मारो पिपर तरे मारो ऊपर जमी हरी दूब
बरहीं बरस पिया बनिजा से लौटे बर तर लओ है बसेर
माया दौरी लैके भुजनको बहिनी लै ठंढो पानि
माया देखी बहिनियाँ देखी गोरी धना कहूँ न दिखायँ ।

तुमरी तौ धना पूता चकिया सधीली हुँअना लगाई देर ।
चकियन चकियन हम देखि आए हुआँ न कहूँ दिखायँ ।
तुमरी तौ गोरी धना मइके गई हैं बिरना को रचो है बिआह ।
सारे हम देखे सरहजैं देखी गोरी धना कहूं न दिखायँ ।
तुमरी तौ गोरी धना झुलुआ की सथिनी दिउरा ने डारो है मारि ।
माया जौ आई बहिनियां आई करौ न पूता जिउनार ।
काए कौ पूता मोरे अनमन धनमन रचियौं मैं दुसरो बिआह ।
चन्द सूरज अइसी धनियाँ जो छूटी छूटी रजन ससुरारि ।
लाबौ न माया मोरी जुगिया के कपड़ा हम जुगिया हुइ जायँ ।

४६

हरो हरो गोबर पियरी है माटी रनियाँ महल लिपाये जी ।
उड़ौ न कागा जाव दखिनवाँ बीर खबर लै आव जी ।
कागा बिचारे उड़न न पाये बीर ठाड़े दरबार जी ।
बीर आये कुछौ न लाये सासु ननद मुख मोरी जी ।
हांथन मेंहदिया पाँयन बिछिया कैसे मिलौं राजा बीर ।
धोय डारौं मेंहदी उतारि डारौं बिछिया लपटि मिलौं राजा बीर ।
ऊँचे चढ़ि-चढ़ि माया हेरैं मेरी धिया नेरे कि दूरि रे जी ।
छूँछी डोलिया छूँछे कहँरवा रूठे बहिन जी के बीर जी ।
आबौ जो पूता घुटवन बैठो बोलौ बहिन जी की बात जी ।
बहिनी को हाल न पूछौ माया, बहिनी को हाल सुने छतिया फटै जी ॥
बहिनी के कपड़ा ऐसे बने हैं जैसे चौका को पुतना जी ।
बहिनी के केस ऐसे बने जैसे कुकर की पूंछ जी ।
बहिनी के अंसुआ ऐसे गिरत हैं जैसे मघा के बूंद जी ।
ऐसे दुख पूता तुम्हरी बहिन को रोउत कैसे ढीली जी ।
करौ न माया मोरी गरुई गठरिया बहिनी चलन हम जायं जी ।
बीर आए सब कुछ लाए सासु ननद हँसि मुख बोली जी ।

ाथन मेंहदी पायन बिछिया कैसे मिलै राजा बीर जी ।
ोय डारौ मेंहदी काढ़ि डारौ बिछिया झपटि मिलौ राजा बीर जी ।
ाँधौ न बहू मोरी मोतीछर भातू और गेहुँन की रोटी जी ।
ारे बहनोई मिलि जेंउन बैठे सारे बिदा कौ कहा ती जी ।
जि गई डोलिया सजि गए कहँरवा सजी भैया जी की बहिनि जी ।
न्हीं नन्हीं बुंदियन मेघा बरसैं बहिनि कैसे घर जायँ जी ।
ोलिया भीजै कहँरवा भीजैं भीजत बहिन घर जाय जी ।
ंचे चढ़ि चढ़ माया जो हेरैं मोरी धिया नेरे कि दूरि जी ।
ाली लाली डुलिया उघार परे है हंसते पुता घर आए जी ।
या भेंटी बहिनियाँ भेंटी भेंटी संग सहेली जी ।

चक्की के गीत

४७

लो फिरै भमर बाग न पावै ।
ान रे बाप की बेटी ना कहावै को ढूंढ़ै बर को तिलक चढ़ावै ।
ान रे माया की धिया न कहावै को करै मोह को हिरदे लगावै ॥
ान रे बिरन की बहिनी ना कहावै को साजै डोलिया को देस दिखावै ।
ान रे भौजी के नँद न कहावै को छुऐ पांय जो झपटि वैहावै ॥
ान रे बलक की गोदी न कहावै को पियै दूध की दुन्दि मचावै ।
ान रे पुरुष की तिरिया न कहावै के पूँछै बात को पार लगावै ।
लो फिरै भमर बाग न पावै ।

४८

कठिन राम जी की प्रीति लगै न सोई जानत नाही ।
ाहे के माया मेरी जनम दओ है काहे को दओ बिदेस लगन सोई, लगन
ासन खिलन बेटी जनम दओ है सुख को दओ बिदेस लगन——
ख तौ माया मोरी माया सपने कौ नाहीं दुख ते डूबौ सरीर——

जइसी बन की लकड़ी घुनत है तैसे घुनत सरीर———
जइसे पिपर के पत्ता सुखत है तइसे सुखै सरीर———
कठिन राम जी की प्रीति—

४९

लछिमन जात्री महल लग जाए ।
इक बन नागि दुसर वन नागे तिज वन लगी पियास महल लग——
की तौ लछिमन जल भरि लावौ नाही तौ वनमें डारौ मारि । महल——
ना कहुँ नेरे ताल पुखारे ना कहुँ नेरे कुअना ।
बीस कोस लौ हंस फिरति है तऊ न मिलै भौजी हंस कौ पानी ।
तन मन मारि विरछ तर सोई ।
पीपर पत्र बरी को दोना लछिमन जल भरि लाए ।
दोना बनाय बिरछ माँ टांगो सीधी गैल गही मधुबन की ।
टूटो बूँद हिरदै मैं लागो सिया उठी हहराय
जो कहुँ लछिमन जाते बताय के देती असीस अमर हुइ जाते
लछिमन ... ...

५०

कि एजू पानी पियत राजा हिरना जो मारो हरिनी दए असराफ
कि एजू लावो जो माया मोरी जोगिया के कपड़ा हम जोगिया हुइ जायँ ।
कि एजू मास नौ कुच्छ्या मैं राखे जिभिया मैं धरौं अँगार ।
कि एजू हलवल माया देउ आग्या हमें देर हुइ जाय ।
कि एजू खुँटिया टंगे पचरंग कपड़े होंई बुलाबौ गुर ज्ञान ।
कि एजू अग्गिन जइयौ पूता पच्छिम जइयौ पूरब दिसा मति जाव ।
कि एजू पूरब दिसा में तुम्हरी बहिनी बहौ फटि जैहैं धरति समाय
कि एजू माँगत खात गए बहिन दुआरे लाबौ जोगी भिच्छा जायँ ।
कि एजू लाव न बांदी भिच्छा डारि आवो जोगी ठाढ़े दुआर ।
बांदी के हाथ न लीहैं जोगी हैं बिरना तुम्हार।

एजू थार भरे मोती ऊपर धरो नारियल लेव जोगी भिच्छा जाव ।
एजू पेट फारि बीरन भुस मरवैएँ बीरन जुगिया कैसे होय
एजू पानी पियत बहिनी हिरना मारो हरिनी दए असराफ
एजू सोने के दोना बहिनी महल भरे है करिऔ महलिआ में राज ।
एजू माँगत खात गए रानी के दुआरे लाबौ जोगी भिच्छा जायँ ।
एजू दौरौ न चेरी भिच्छा डारि आबौ जोगी ठाढ़े हैं दुआर ।
एजू चेरी के हाँथे न लीहौ भिच्छा जोगी है सामी तुम्हार ।
एजू मोती ऊपर धरे नारियल लेव जोगी भिच्छा जाव
एजू जोगिया जोगिया काहे को करत हौ जोगिया है सामी तुम्हार
एजू तब जोगिया तुम काहे न भए ते माया के बारे कुआँर ।
जोगिया तुम काहे को भए हौ हमरी कौन गति होय ।
जोगिया अब काहे को भये हौ हमहूं जोगिन हुइ जायं ।
एजू सोने के दोना रानी महल भरे है रखियौ पगड़िया की लाज ।
एजू पानी पियत रानी हिरना जो मारे हिरनी दए है असराफ ।

देवी के गीत

५१

पार ते आई देवी ललिता
चढ़ावैं मैया धजर नारियल को रे चढ़ावैं मैया दोनन मेवा ।
चढ़वामें धजर नारियल रनियाँ चढ़ामैं मैया दोनन मेवा ।
के काजे मैया धजर नारियल काहे के काजे मैया दोनन मेवा ।
के काजे धजर नारियल पूता के काजे मैया दोनन मेवा ।
गै मैया दओ भरि के दुधाड़ी पूत दओ भरि गोदी मेरी मैया ।
सुमिरि मैया तुम्हरो जस गाओ हमपैं होउ सहाय मेरी मैया ।
ार तेई आ देवी ललिता

५२

सीतला महँरानी की जइ जइ बोलौ ।
गइया को दूध मइया कइसे चढ़ामैं बछरा ने डारो है जुठारि की जै जै०
साठी के चाउर मइया कैसे चढ़ामैं चिरई ने डारे हैं जुठारि की जै जै०
गंगा को नीर मइया कैसे चढ़ामैं मछरी ने डारो है जुठारि की जै जै बोलो
बारी को फूल मइया कइसे चढ़ामैं भौरा ने लऔ है बसेर की जै जै०

५३

मेरी मैया बड़ी दिलजोर कदम ते उतरि परी ।
खाँड़ नहिं खाँय चिरौंजी नहिं खाँय पियैं कटोरन दूध कदम ते………
बरु नहिं झूलैं पीपर नहिं झूलैं झूलैं लौंग की डार कदम ते ………
खाट नहिं सोमैं सुवेती नहिं सोमैं सोमैं फूल की सेज कदम ते………

'जस'—

५४

रूठौ मइकू कौ लइऔ मनाय दुखित के देसवा होत अइऔ रे ।
लिलिया बछेरा तौ माता थकित परे टूटे परे हँथियार ।
कपड़े तौ माता मेरे माइले जंघियाँ परीं बलहीन ।
दुखित के देसवा कैसे जइयैं रे ।
लिलिया तौ बछेरा ललना अउरुइ मंगामैं सिकिल करौं हँथियार
कपड़े तौ लला साबुन बुरामौं जँघियाँ तेल फुलेल……
तुम तौ कहत ते ललना टूटी मड़इया छइऔ हमई करौं पतिफाल
टूटी मड़इया तौ हम ना छामैं ना हमई करैं पति पाल ।
तुम तौ कहत ते कि टूटी मड़इया मैंकू छामैं मिघना करै पतिपाल । रूठे

५५

भगत भओ रो अकेलो मइकू भगत भओ ।
बारह बरसैं तौ गउएँ चराईं दुधवा के करे फरहार । अकेलो

बारह बरसैं मइकू धुनियाँ रमाई लउंग के करे फरहार।
बारह बरसैं मइकू बन मैं रहे हैं बनफल करे फरहार।
बारह बरसैं मइकू गंगा रे हनाई जल के करे फरहार।.........

५६

विलमि रहो रे लौंग को लोभी विलमि रहो
कहना तो छोंड़ी मात पिता औ कहना छोड़ी बिजनार। लौग को
मथुरा सी नगरी छोड़ी मात पिता गोकुल छोंड़ी बिजनार।
पुन्नि धरम कौ छोंड़ी मात पिता औ पाप कटन बिजनार।

भजन

५७

जानैं तुम जैयौ कौने बाना प्रानी।
पाँच जने मिलि लै के चले हैं ऊपर चादर तानी।
बीनि लकरियाँ फूँकि दओ है बरन लगे जैसे होरी।
हाड़ जरैं जैसे चन्दन लकड़ी बार जरैं जैसे घास।
देह जरत है कंचन ऐसी आउत बास कुबास।
हनाय धोय पैकरमा करि लेव चलौ तिरियै समझैयें।
हनि हनि बातें कहि जो जेठ से जे बातें नहिं होनी।

५८

नगरी अजुध्या आज भई सूनी।
कोटे ऊपर कोट उठाय दए किला उठाए असमानी।
सीस महल से गोला छूटो छूटि गई बाकी नौ नौ नारी।
घर बाहर के सबै बुलाय लैव ऊपर बाप महतारी।
जेठो भइया हाल बुलाय देव लै आवै बैद दिखावै मेरी नारी।
घर बाहर के सबै आइ गए आये बाप महतारी।
जेठो भइया हाल आय गओ लै आओ बैद दिखाई मोरी नारी।

हुक्का वाले हुक्का पी गए बैद छोड़ि गए नारी ।
हसा मैं से प्रान निकरि गये सूखि गई फुलवारी ।
खाट पकरि वाकी माया रोवैं बाँह पकरि महतारी ।
हाथ पकरि वाकी तिरिया रोवैं जा बिधि गति मोरी राम ने बिगारी ।
चारि जने मिलि खाट उठाई ऊपर चादर तानी,
गग किनारे खाट उतारी फूंकि दओ जैसे होरी जराई ।
हाड़ जरैं जइसे चन्दन लकड़ी बार जरैं जइसे घास ।
जारि फूंकि पैकरमा कीन्ही औघट घाट हनाई ।
चलो राम तिरिया समझैए अब का रोवो तिरिया विचारी ।
अब का रोवो तिरिया बावरी जिन जोरी तिन तोरी ।

५९

मारन मिरग चले रघुराई लीन्हा धनिस चढ़ाई ।
भागो मिरग भरैं बौछारैं करनानिधि लीन्हो पछिआई———
छाँड़ौ बान जब करनानिधि ने लगो मिरग के जाई ।
खाय के पछाड़ गिरो है धरनी मे लछिमन लछिमन अति गोहराई—
कान अवाज परी सीता के लछिमन से बतलाई ।
इतनी सुनि लछिमन तब बोले मुनियौ जानकी माई ।
तुम्है अकेलो छोड़ि कैसे जामै हमै रोकि गये है रघुराई——
बाबू राम सरन हरि पद के सिया कहै झुंझलाई ।
बुरी चहत हौ तुम भइया को यासे तुम्है दया नहि आई——

६०

लछिमन सोच करत अधिकाई कहत जानकी माई—हरे
जो ना जायं करैं अब कैसो दोनौ बिध हानि सीस पै आई--लछिमन—
सोचि समझि के तब लछिमन ने रेखा खीचि बनाई ।
कढ़ियौ फादि माता जनि रेखा ऐसे सिया कौ रहे समुझाई——

चले लखन सिया सीम नाय के कर सर धनिस चढ़ाई ।
उत राउन लंका के राजा माधू को भेस बनाई——
बाबूराम कहै सरन हरिपद के चरन सीख लव लाय के ।
पहुँचो आय तीर कुटिया के अकिलो जानि जानकी माई——

६१

रोपनी सोहनी-गीत

कि एजी नगरी अजुध्या की सकरी है गलियाँ आउत दुइ असवार
कि एजी अगिले के घुड़िला लछिमन दिउरा भूरि हथिन राजाराम
कि एजी रपटि झपटि सीता चढ़ी अटारी देखन दुइ असवार ।
कि एजी रपटि झपटि सीता उतरीं अटारी माया मोरी पलंग बिछाव ।
कि एजी की बेटी तुम्हरो मूंड़ पिरानो की रे चढ़ी जूडी ताप
कि एजी न माया मेरो मूड पिरानों ना रे चढ़ी जूडी ताप
कि एजी नगरी अजुध्या की सकरी गलियाँ आवत दुइ असवार
कि एजी आगे के घुड़िला लछिमन दिउरा भूरी हथिन राजाराम ।
कि एजी लावैं जो माया मोरी ताँबे तम्हेंड़ी मोतियन भात रँधाव
कि एजी जेंइ जूठि जब लछिमन बोले भउजी विदा कब होय
कि एजी चुनरी रंगन रगरेज गई है चुरिया लै आवैं मनिहारि ।
कि एजी हंकरि बुलावैं गाँव की नाउन नगरी बुलौआ दै आवै
कि एजी चलौ न सखियाँ चलौ सहिलरी सीता बिदा हुइ जाय ।
कि एजी अब का रोबौ सीता बावरी इक दिन सब कोइ जाय ।
कि एजी गउअन के चरवाहे मोरे मैया माया से कहियौ सँदेस ।
कि एजी उठौ न माया मोरी हाँथ मुँह धोबौ यह दुनियाँ की रीत ।
कि एजी अपनी कौं पठै माया अउर की बुलाय लेव यह दुनियाँ की रीत ।
कि एजी नगरी अजोध्या की संकरी हैं गलियाँ आउत दुइ असवार ।

बारह्-मासा

६२

ऊधौ भोरै से मधुपुर जाव कन्हैया कौ ल्याव सजनी ।
जब लग ऊधौ मधुपुर जैहैं बीतत मास असाढ़
एक तौ मोरी बारी बयसिया दूजे बलम परदेस ।
तीजे मेघ झिमाझिम बरसैं साउन अधिक अंदेस ।
भादौं गगन भयानक सजनी बीतै नित अधियरिया राति ।
दामिन दमकै कौंधा लपकै सिजिया पै जियरा घबराय ।
क्वाँर मास मोहि अधिक लागि रहो पिया न आए मोर ।
जो मेरे घर होते कन्हैया जैसे रखती मैं हिरदय लगाय——
कातिक की पूरनमासी कौ सब सखि गंग हनान को जायँ ।
हाथ जोरि के बुड़की मारै जलम सुफल हुइ जाय ।
अगहन गोरी ठाढ़ी अंगनवाँ घर घर उपजे धान ।
चकई चकवा केहलि करत है जल सागर मझधार ।
पूसमास पुसबलियां फूली सुअना बाली काटैं ।
जो घर होते बारे कन्हैया सुअन को डरते मारि ।
महा मास मैं जाड़ो परत है हम पै रहो न जाय ।
फागुन मास में उड़त अबीरा सब सखि होरी खिलन कौ जायं ।
जो घर होते बारि कन्हैया डरती मैं अतर गुलाब ।
चैत मास में फूली चमेली भौंरा रहे लुभाय ।
आवौ न भौरा लोटौ पोटौ जियरा की तपन बुझाय ।
वैसाख मास मैं बंसवा कटौती बँसवा कटाय के बंगला छवौती ।
बंगला छवाय के खिरकी कटौती झुकअन आवै बियार ।
जेठ मास की खरी दुपहरी हमपै चलो न जाय ।
जाय कहो बारे बलमा ते बहियाँ पकरि लै जाय ।
बरही से जब तिरहीं लगी सखियन मिले कन्हैयालाल ।

६३

चैत मास चिन्ता मन बाढ़ी प्रान रहै चित कैसे ।
कैसे धीर धरै मोरी सजनी बिन हरिमोहन देखे ।
बैसाख मास रितु लागि री सजनी सब कोई मण्डिल छावै ।
हमरे तो क्रस्न बिदेस है छाये हमरे मंडिल को छावै ।

जेठमास रितु लागी री सजनी चौलित पमन झकोरै ।
ऐसो पमन चलैं नित बासर अंग अंग करि टोरै ।
असाढ़ मास रितु लागी री सजनी चौलित बादर घेरे ।
बिजुली चमकै कोई न सदरखै रिमिक झिमिक जल बरसैं ।

साउन मास रितु लागोरी सजनी सब सखी झूला झूलै ।
हमरे तो क्रस्न बिदेम मे छाये हम झुलुआ कैसे झूलैं ।
भादौं मास रितु लागी री सजनी चौलित अँधिरिया छाई ।
मोर की बानी पपिहरा बोलै दादुल बचन सुनाए ।

क्वाँर मास रितु लागी री सजनी सब कोई दान लुटावै ।
हमरे तो क्रस्न बिदेस में छाये हमरे को दान लुटावै ।
कातिक मास रितु लागी री सजनी सब कोई गंगा हनाय ।
हमरे तौ क्रस्न बिदेस हैं छाये हमरे को गंग हनाय ।

अगहन मास रितु लागी री सजनी सब सखि गौने जायँ ।
हमरे तो क्रस्न बिदेस में छाये हमरो गौन को लेय ।
पूस मास रितु लागी री सजनी जाड़ो अधिक सतावै ।
हमरे तौ क्रस्न बिदेस हैं छाये हमरो जाड़ो कैसे छूटै ।

महाँ मास रितु लागी री सजनी मालिन बौर लिआई ।
हमरे क्रस्न बिदेस हैं छाये हमरे बौर कौन लेय ।
फागुन मास रितु लागि री सजनी सब सखि होरी खेलैं ।
हमरे कृष्न तौ बिदेस में छाये हम होरी कैसे खेलैं ।

६४

स्याम सुन्दर ब्रजराज न आए बरसा रितु बीति गई
जेठ तपै दिन रात असढ़वा गरजि घुमड़ि बरसै ।
साउन गड़े हिंडोला स्याम कुबरी संग झूलि रहे ।
भादौं बरसै घमेल कुवाँर बन मोरिला कोहिक रहे ।
कातिक पाख उजियार रैन के तारे छिटुकि रहे ।
अगहन अग्र समान पूस में पतिव्रत रहने लगीं ।
महाँ परत तुसार स्याम कुबरी संग सोय रहे ।
फागुन उड़त गुलाल चैत बन टेसू फूलि रहे ।
सूर मास बैसाख मिलन की आसा लागि रही ।

६५

बिरहा—

स्याम नहिं आये आई स्याम बदरिया ।
छाई चरिउ छोर देखौ कारी अँधिरिआ ।।
चमकै रहि रहि बइरिनि बिजुरिआ ।
सन-सन सन-सन चलत बयरिआ ।
तड़पत इत ब्रसभान दुलरिआ ।
अँसुअन भींजत धानी चुनरिआ ।।

फुलेरा—

६६

ऊँचो चउतरा चौखुटो हां जहाँबेटी खेलन जायँ
हो राधा भामिन बनवारी की ।
खेलत खेलत भोर भओ है बाबुलि के दरबार
हो राधा भामिन बनवारी की ।
बाबुल काढ़ी साँटुली हो माई ने बोले हैं बोल ।
काहे कौ काढ़ी साँटुली हो काहे कौ बोले है बोल
हो राधा भामिन बनवारी की ।

आज बसेरो नीयरो कालि बसेरो है दूरि

हो राधा भामिन बनवारी की।

हम तौ तुम्हारी चीरई चुनत बिनत उड़ि जायं

हो राधा भामिन बनवारी की।

ठलेरा— ६७

डग डग डोना डाडारी डूडौरी देंयं।
खेलि लेव री खेलि लेव री माई बाबुल के राज।
फिरि ढुरि जइयौ सासुरे डूडौरी देंयं।
फिरि ढुरि जइऔ सासुरे सासु खिलन ना देय डूडौरी देंयं।
राति पिसावै पोसनो दिन गोबर की हेल डूडौरी देंयं।
गुबर की हिलिया ढुनगि परी डूडौरी देंयं।
दौरी छुॅटा की मार छुॅटा विचारे ना लगे डूडौरी देंयं।
दौरी बिलनन की मार बिलन बिचारे ना लगे डूडौरी देंयं।
दौरी पटा की मार पटा बिचारे ना लगे डूडौरी देंयं।
दौरी करए की मार करए विचारे ना लगे डूडौरी दें
दौरी परजाउन जाय परजइया बिचारे ना मिले डूडौरी दें।
नौ मन गेंहुॅआँ पिसाए डूडौरी देंयं।
ती को बनाओ इक लोल डूडौरी देंयं।
पनियाँ भरन कौ फूहरि निकरी बगल मैं दाबे लोल
लोल कुॅआ में गिरि परो डूडौरी देंयं।
सहिबा ने पुर मचिआओ निकरत आवै लोल
तौ फिरि पकवाओ लोल डूडौरी देंयं.
ससुर कौ बठेआ सुलगि गओ डूडौरी देंयं
सहिबा की उपरिया सुलगि गई पाकति आवै लोल
ससुर के कुप्पा ढुरकि गए तऊ ना चुपरो लोल।
सहिबा चुकरिआ ढुरकि गई चुपरत आवै लोल

कउरा कउरा बँटि गए डूडौरी देंयं,
फूहरि रहि गई खिसियाय डूडौरी देंयं।

फुलेरा— ६८

आज जुन्हाँ उजियारी रहिऔ सो बिरना चढ़ि व्याहन जइहैं।
सँपवा तुम बाँबी में रहिऔ ,, ,, ,,
बीछियाँ तुम डंकसमिटिऔ ,, ,, ,,
नदिया तरि सूखत जइऔं ,, ,, ,,
कँुअना तुम ओघत अइऔं ,, ,, ,,
गूखरू तुम रहा ममिटिऔ ,, ,, ,,
बीरना तुमरी कइसी दुलइआ
बहिनी री जइसी मोन चिरइया
बीरना तुमै पीसत कइसे।
बहिनी री जइसे चन्दन आँटा।
बीरना तुमैं पावन कइसे
बहिनी री जइसे पीपर पत्ता
बीरना तुमैं परसत कइसे
बहिनी री जइसे राजा के भोजन
आज जुन्हाँ अँधियारी रहिऔ देउरा चढ़ि व्याहन जाइ हैं
साँपवा तुम रहा मैं रहिऔं ,, ,, ,,
बीछिया तुम डंक पसरिऔ ,, ,, ,,
नादिया तुम बाढ़त अइऔ ,, ,,
गूखरू तुम रहा फइलिऔ ,, ,,
देउरा तुम्हरी कइसी दुलइया
भउजी री जइसे कोने मुसरिया
देउरा तुमैं पीसत कइसे
भउजी री लइसे घोड़ा का दाना

देउरा तुमैं पावत कइसे
भउजी री जइसे खरी धपरिया
देउरा तुमैं परसत कइसे
भउजी री जइसे भैंस का सानी

६९

झुँझिया—

हरो रुपट्टा लील को सुअना रँगो अरगनी टांगि ।
बाँधै तौ बाँधै रनियाँ के राम रतन सुअना
चढ़ि ससुररिया जाँय ।
उनके ससुर की लगर बिटेना सुअना पकरो रुपट्टा खींचि ।
छोंड़ौ तौ छोंड़ौ लगर बिटेना सुअना जो मागौ सो देवँ ।
माँगै तौ माँगै ताल कसिरुआ औ गुलरी को फूल ।
ताल कसिरुआ सरि गओ सुअना गुलर फुलै आधि रात ।

जाति गीत— (कहाँरों का)

गोरी धना सुअना पालो जी, गोरी धना ने ।
बड़ो जतन करि पिंजरा बनाओ ।
तामैं घने घने तार लगाए जी ।
तुचा के कागत पिंजरा मढ़ाय दओ ।
मेरो पंछी न दुखियाय जी ।
मेवा खवाबै दिन राति पढ़ाबै ताय ।
दिओ बाई सो चित्त लगाय जी ।
एक दिना सो गाफिल हुइ गई ।
तोता निकरि गओ करै हाय जी ।
खिरकी न खुली कोई तार न टूटो ।
जानै निकरि गओ कउन राह जी ।

बाग बगीचा बनखंड सब ढूँढ़े ।
कहूँ पंछी न मिलै राम जी ।
प्यारे पंछी को कहूँ पता न पाओ ।
गोरी बइठि रही झकमारि जी ।
याही विधि तेरे तन की दसा होय ।
लेउ न जीवन हरि गुन गाय जी ।

अहीरों के गीत

७१

नीदा भरी रे अंखिया जगन को नीदा भरी ।
हरे हरे गुबरन अगन लिपइऔ मेरी रनियाँ बम्हना निउति जियावौ ।
धामन दीजौ पठाय सहिबा लंगर खँगिया
दहिया देव पठाय जगत की जग्य रची ।
दहिया के नाते छिटक नाई दें तौ मेरो नाँव लंगर खँगिया ।
नटिनी के बीरा तुम धामन चले जाव लंगर खँगिया से कहियौ ।
कि जगता की जग्य रची दहिया देय पठाय
दहिया छिटक नहिं देय तौ मेरो नाँव लंगर खँगिया
की तौ लिलिया बछेरा मारौ कीतौ भूरी भइसिया मारै ।
नाई तौ जमिनी गोइ मारै ।
चाए सब कौ मारौ दहिया के नाते छिटक नहिं देंय ।
कलुआ बीर महम्दा बीर सुल्तान बीर मुल्तान बीर
चलाना बीर पाँचौ बीर चलि धामन चलि जायँ
लगंर खंगिया के करैं डाढ़ मैं पीर ।
बहिंगिनि दहिया लओ भराय चली जगता से जाय लगर खँगिया
जगता नेक हरौ डाढ़ की पीर बहिंगिनि दहिया लेव उठाय ।
जातौ ससुरी अब दहिया छिटक नहिं लेयँ
नटिनी के बीरा हरौ डाढ़ की पीरा ।

७२

काहे बसाई नगर भेड़ावली काहे सिरसा बधाये ऊँचे थान।
काहे लगाई बगिया चन्दन की काहे जगता पाले जंगी मोर
सबद सुहौने दादुल मोरन के।
रहिबे कौ बसाई नगर भेड़ावली सिरसा बधाये ऊँचे थान।
घिसिवे कौ लगाई बगिचया चन्दन की सबद सुहौने दादुल मोरन के।
कौने बनाई नगर भेड़ावली कौने बँधाये ऊँचे थान।
कौने लगाई बगिया चन्दन की कउने पाले जंगी मोर
सबद सुहौने दादुल मोरन के।
मइकू लगाई बगिया चन्नन की बनसा पाले जंगी मोर
सबद सुहौने दादुल मोरन के।

संवादात्मक गोत— ७३

किसान तथा सिपाही

गुरु अपने कौ सुमिरि के धरै कवित पै ध्यान
जब उठि बोलि सिपाही तब का कहै किसान—
देस बिदेसै हम ना जांय
अपने घर उपजो जब धान
सब कुरमा मिलि बैठि के खाँय
साँझ सकारे सीचैं चेना
ऊपर नार डुलाबै बेना
इत्ती बात किसान ने कही
तब सिपाही पै सही न गाई
खाँय कपूर लौग को जोड़ा
पहिरै सर्ज गजीना चीरा
घी खाई जोरै नहि थाथी
तुम्हरे खेत की टोर ऊँख

बहै धराब में तुम्हरे मूंड़
धक्कन मारि के आँगे लै चलैं
इत्ती बात सिपाही ने कही तब किसान प सही न गई
जग्गा जोति के पइसा दीन
तब ताजी तुरकी तुम लीन
आँटा दारि बिसाहौ हाट
कबऊँ न सोबौ परि के खाट
लरिका बारे देखै सपना
की घर रहे कि लसिगर अपना
मेहर अन्त तुम अन्तै रहौ
रोय धोय दोनौं परि रहौ
इत्ती बात किसान ने कही तब सिपाही पैं सही न गई
भादौं मास बहै बहु सर्दा
आधी रात चराबौ बर्धा
हुकुम होय तौ लेव तुरंग
पलिगा से जनि उतरौ कत
दूध दही की यादि न जानौं
हाटक बाटक ना पहिचानौं
साग खाव बिन डारो नून
माखन बेंचि मही पी रहौ
तुम से सिर खनवावै कौन
इत्ती बात सिपाही कही तब किसान पै सही न गई ।
कुँआर मास रैन अँधियारी
जब मुकीम बोली असवारी
खैंचत जीन जेरबॅद टूट चिरवाँदार पछारू छूट
आगे नद्दी पाछे नारो
भीजि गओ तम्बा तब सारो

कोहकैं दादुल कोंहकैं मोर
कहौ लसिगर अब कौने ओर
भोर होत खन पहुँचे बन्दा
पाँच रुपइया परि गये चन्दा
जब भठियारी माँगो भारो पहिले गहने धरो कटारो
छुरी बेंचि के लाये चून
तब घर सुमिरो भले किसान

प्रबन्ध-गीत

घन्नइया

७४

ये ही नगर की भुंइयां भमानी तुम्हरे लेमैं हम नाँव
पहिले हम सुमिरैं रामचन्द को जिन्नैं पिंडी दई है बनाय
दूजे हम सुमिरैं माता पिता को कुच्छा लये नौ मास
धरम की मइया तुम हमारी।
तिसरे हम सुमिरैं धरनि धरा को जिन्ने रोंपे दोनौं पाँय।
गुरु कौ हम गामैं गुरू मनामैं जिन्ने विद्या दई अधिकाय।
गुरु कौ हम गामैं गुरू मनामैं नित उठि गंगा करैं असनान।
सब कौ हम गामैं सबकौ मनामैं सब के हम जानैं न नाँव
जो कहूँ अच्छर भूलैं सरसुती कंठ बिराजो न आय।
हियँन की बातें हियँने छोड़ि देव आगे के सुनौ हवाल
इत बहै गंगा उत बहै जमुना बसा बसेली बसे जाय
उइमैं बसैं राजा गजोधर सुनि लेव भइया मोरी बात
रानी के गरभ रहो तब भइया नमएँ महीना कन्या लये औतार
सुनि लेव सुनि लेव अब तुम भइया कहिएँ रंग महलिया आय
ता मुख बोली बिटिया सुनि लेव जननी तुम मोरी बात
रूपे की छुरवा आजुइ न लीजौ सोने को खपर धरवाय
नरवा छिनाबौ अपने हाँथ।

जो तुम हम कौ धनुकुन छुअइऔ मोरे हंसा उड़ि जाँय
तब मुख बोली रनियां तौ बोली सुन लेव बंदिया मोरी बात
राजा से कहिऔ रंग-महल मैं कन्या लयें है औतार
लैयन पैअन बंदिया दौरी ठाड़ी खम्बा की आड़
हाँथ जोरि के बंदिया बोली राजा सुनि लेव बात हमारि।
सरमुख बंदिया बोलन लागी कन्या लये है अउतार
लैयन पैअन बंदिया लौटी पहुंची रंग महलिया आय
उलटे नगाड़ा सीधे कर लये माया दई है लुटाय।
हियँन की बातें हिअँन छोड़ौ रगमहलिया कहियै आय
सुनि लेव सुनि लेव बंदिया मोरी धनुकुनि आवौ न बुलाय
लैयन पैयन बंदिया दौरी पहुंची धनकुन घर जाय
रंग महल में कन्या लये हैं अउतार।
रंग महल में चलिऔ न धनकुनि कन्या लये हैं अउतार
आँगे आँगे धनकुन चलि भई रगमहलिया पहुँची आय
सोने के खपरा रानी दइ दए सोने टका दये आय
पण्डित औ बराम्हन राजा अब बुलामै सुनि लेव न मेरे ज्वाब
सच्ची साइत देव बिचारि।
तुम मुख बोले पण्डित बराम्हन
अच्छी साइत अब बिटिआ अब तुम्हारी लये है अउतार
नाँव अब पदमिनी ब्रम्हाँ राखे सुनि लेव राजा मेरे ज्वाब
कैसे बोलै बिटिया लड़ैती।
सुनि सुनि लेव जलनी बर की खुजवा तुम लगावौ।
मन मैं न सोचै रनियाँ विचारी कैसी रची है भगवान
सुपवा परे हैं बर मांगै।
काए अब गुसइयाँ ऊपर वाले कैसी रची है भगवान
ता मुख बोलै रनियां विचारी सुनि लेव न बंदिया मोरी बात
नेक जइऔ कचहरी।

कहिऔ न कहिऔ बिटिया बोले ऐसे बोल
ता मुख बोले राजा गजोधर सुनिलेव बंदिया मेरो ज्वाब
कैसी आई तुम कचहरी।
तब मुख बोले बँदिया बिचारी सुनि लेव न राजा मोरो ज्वाब
सिरकिन सुपवा बिटिया पौढ़ी बिटिया बर माँगै
कैसे बर माँगै आज
मन में न सोचैं राजा इउ बिचारो मन में बहुत घबराय
सिरकी सुपवा बर मांगै— — —
नउआ औ बराम्हन बुलामैं कैसे बुलामैं हम आज
ता मुख बोलै बंदिया बिचारो सुनि लेव न नउआ मोरो ज्वाब
हुआँ से चलि भओ नउआ बिचारो रंगमहल अब पहुँचो आय
तब मुख बोलै बिटिया लड़ैती सुनि लेव न नउआ मेरो ज्वाब
पूरब ढुँड़िऔ पच्छिम ढुँड़िऔ दखिन न ढुंड़िऔ जाय
चलि भये नउआ औ बराम्हन आज
रात दिना को दउरा करिके रतियन करैं मुकाम
चार दिना चलि पहुंचे बसा औ बसेली जाय
पहुंचे बसा औ बसेली।

७५

ऊभदेव का गौना

जमुना नदी तरे बहै ऊपर गोकुल गाँव।
धन्न अहीर के भाग को कृस्न लये अउतार।
ऊंची बसैं गढ़ जामिनी नीचैं बसैं कलवार।
औंजरि बसैं हरी के जाचक बजैं डहारे बंस।
ननद भौज दोनों अंटा चढ़ि गई खेलैं पंसासारि।
हारि जीत मानै नहीं भउजी दए जुआब।
अति कीनी जीवा लाड़िली तेरो बारे रचौ बिहाव।

बारा बरसै बीति गई तेरे गउने की सुधि नाहिं।
माता बउरी मन मरै मझवा पै बिस खाय।
बोलत बोले भउजिला होत करेजेन घाय।
अरे रे ब्राम्हन मेरे नगर के जहँ पठमों तहाँ जाव।
अरे रे ब्रह्मन पिता के नगर के जामिनो मैं जाव।
कहियौ जाय मेरे जेठ ददा पै गउनो करि लइ जायँ
कै दादा कुलहीन भये कै घटो खजानन दाम
भाजि परै केउ गैर के मारै पगिया का मान
ओंठ तमोली रचि गई जीवा की भौंहै करीं कमान
भौं बदरा उमड़े कुअरि के नैनन गोरा धार
दाँत किवारे केस घना मुख बेनिन लोटैं नाग
मोरा चाहैं बन घनो बंदर सलगी डार
गोरिल चाहे पिय रसिया औ सिर लम्बे केस
काढ़ि कटारी भुँइ हनी बारू के बनाये महादेव
राजै ब्राम्हन कपट करै ताय गगा भगवती खाय
ऊभदेव घोड़ी चांउरी मोरे खलँगा से देव निकारि
खंलगा मे देव निकारि पाँड़े पंदा गाँव इनाम
आज के अठएँ तुम कौ राजा ऊभनि मिलैयँ आय
दाम धनी लौ परखियै घोड़ी परखियै चाल
घर की तिरिया तबहीं परखि निधने में बेड़ा लगावै पार
मुंह पाटे पातरे सरीरा घोड़ी की जात समुन्दर तीर।
पत्त खड़क्कन जल पियै रन देखे अकुलाय
असवारी घारी लगै पांड़े कौ कैसे दीहैं जान
हम तुम पूछैं चौंपिया कउन जामिनी गाँव।
आठ बरी नौ पीपरा जहै जामिनी गाँव
जहै हरी को धन चरै जहै भली चउपार
ऊँचें अण्टा छवाये हरो ने धुरै परेवा हँस।

हरी तौ मिलियँ हाट में धरवामैं तेगन पै बाढ़ ।
हरी तौ मिलियँ सहज कलवार घर मध पियत जो भइअन बीच ।
हरी तौ मिलियँ चौपार मैं लगी कचहरी दरबार ।
हरी तौ मिलियँ रमई लुहार घर ऐंचाउत मुलतानी कमान ।
बंगला सोहै बारीक सेहू कै सोहै कुतवाल ।
बंगला सोहै दिल्ली के बास्साह कौ कै जल्ला पम्मार
अहीर बंस जल्ला न सोहै जार ममासी को राज ।
काहे न बोरी बोरना लै बोरी परदेस ।
लूली खेलैं हैहरा आज न बूड़ी काल ।
जिनकी तिरिया तरसै नइहरा जीयन कौ धिरकाल ।
बइठे दादा मध पियैं खरिक दुहन कौ जांय ।
जौंरे धरी दादा मध की करइया भाँमर देय ।
नगर धोबई से आए पांड़े टीकम गउने की लगन लिखाय ।
तेंदू सहर के माल दीजौ देव मुलतानी कमान ।
बन्दूक जो देव लहाउर बाली बाइस गोली खाय ।
अपने सीस की कलंगी दीजौ पिता को हूल कटार ।
बर्धमान को तेगा दीजौ औ गैंड़ा की ढाल ।
भाला बरछी कड़ाबेल और गाँजरी से साँग ।
भाला दीजौ नागदउन को उड़ि उड़ि जूझै ज्वान ।
सरी सीप से जामा दीजौ सिर बजवारे की पाग ।
टोप झलरिया देव माथे पै गोली लगे चीप हुइ जाय ।
लोहलंगरी बखतर दीजौ सेर बिलौंचा खाय ।
बखतर दीजौ मछरी बन को तिहरे जड़े कटार ।
घोड़ी दीजौ चँउरी सजि गौने कौ जायं ।
बाँटि देव दादा बाँटि देव बाँटि जामिनी गाँव ।

परिशिष्ट (ख)

सहायक-ग्रन्थ-सूची

हिन्दी

ग्रंथ		सम्पादक
१—कविता-कौमुदी, भाग ५ (ग्राम-गीत)	—	पं० रामनरेश त्रिपाठी
२—हमारा ग्राम-साहित्य	...	पं० रामनरेश त्रिपाठी
३—सोहर	...	पं० रामनरेश त्रिपाठी
४—ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन	...	डा० सत्येन्द्र
५—ब्रज लोक-साहित्य का विवरण	...	डा० सत्येन्द्र
६—ब्रज लोक-संस्कृति	...	डा० सत्येन्द्र
७—हिन्दी लोक-गीत	...	रामकिशोरी श्रीवास्तव
८—भोजपुरी ग्राम-साहित्य का अध्ययन (अप्रकाशित)		डा० कृष्णदेव उपाध्याय
९—भोजपुरी लोक गीत–भाग १-२		डा० कृष्णदेव उपाध्याय
१०—भोजपुरी लोक-गीतों में करुण रस	...	दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह
११—मैथिली लोक-गीत	...	राम इकबालसिंह 'राकेश'
१२—छत्तीस गढ़ी लोक-गीत	...	श्यामाचरण दुबे
१३—धरती गाती है	...	देवेन्द्र सत्यार्थी
१४—बेला फूले आधी रात	...	देवेन्द्र सत्यार्थी
१५—धीरे बहो गंगा	...	देवेन्द्र सत्यार्थी
१६—चट्टानों से पूँछलो	...	देवेन्द्र सत्यार्थी

१७—बाजत आवे ढोल ... देवेन्द्र सत्यार्थी
१८—गांव की कहानियाँ ... रमेश वर्मा
१९—पृथिवी-पुत्र ... डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
२०—इसुरी के फाग ... प्रकाशक लोक-वार्ता परिषद्, टीकमगढ़
२१—बुन्देल खण्ड के लोक-गीत ... उमाशंकर सिंह
२२—मालवी लोक-गीत ... श्याम परमार
२३—विंध्य प्रदेश के लोक-गीत ... श्री चन्द्र जैन
२४—हमारे लोक-गीत ... पृथ्वी नाथ चतुर्वेदी
२५—सुहाग-गीत ... विद्यावती कोकिल
२६—कुरु प्रदेश के लोक-गीत (अप्रकाशित) गणेश दत्त गौड़
२७—गढ़वाली लोक-गीत (अप्रकाशित) जनार्दन प्रसाद काला
२८—भोजपुरी ग्राम्य-गीत आर्चर और संकटा प्रसाद
२९—बुंदेल खण्ड की कहानियाँ ... शिव सहाय चतुर्वेदी

बंगला—

१—पूर्व वंग गीतिका ... डा० दिनेश चन्द्र सेन
२—मैमन सिंह गीतिका ... डा० दिनेश चन्द्र सेन
३—हारामणि ... मुहम्मद मंसूरउद्दीन

गुजराती—

१—लोक-साहित्य ... झबेरचन्द मेघाणी
२—धरती नुं धावण ... „
३—रढ़ियाली रात (४ भाग) ... „
४—ऋतुगीतो ... „
५—लोक साहित्य नुं समालोचन ... „
६—सौराष्ट्र नां खंडे रोमा ... नागर दास मोहनलाल
७—नागर स्त्रिओं माँ गवान्तां गीत ... नर्मदा शंकर लाल शंकर

८—जीवन साहित्य ··· काका कालेलकर
९—लोक-जीवन ··· काका कालेलकर

अंग्रेजी सम्पादक

1. Folklore of Early Relics of Village Life — G. L. Gome
2. Folklore Studies : Ancient and Modern — Halliday
3. Folklore of Bengal — Mookerjee
4. Folklore Notes — Enthoven
5. Folklore of Capitalism — Arnold.
6. Selected Papers on Folklore — Bodker
7. Standard Dictionary of Folklore — Funk and Wagnals
8. Folk ways — Summer
9. Psychology of Folklore — Merett
10. Folk-Songs of Maikal Hills — V. Elwin
11. Folk-Songs of India — Mookerjee
12. Introduction to Folklore — M. R. Cox
13. Folk Literature of Bengal — D. C. Sen.
14. Folklore of South India — Natesh Sastri
15. Popular Poetry of Baloches — Dames
16. English Folk-Song — Sharp
17. Introduction to the Popular Religion and Folklore of Northern India — Crooke
18. Myths and Legends of Ancient Egypt — Spence
19. Myths and Legends of Middle Ages — Guerber
20. Myths of Middle India — V. Elwin

21. Myths of the Norsemen — Guerber
22. Hindu Tales — Meyer
23. Hatim's Tales — Stein
24. Folk Music and Poetry of Spain and Portugal — Schindler
25. Proverbs and Folklore — Ganga Datt
26. Jataka Tales — Francis and Thomas
27. Santal Folk-Tales — Bodding
28. Field Songs of Chhatisgarh — S. C. Dube
29. Snow Balls of Garhwal — N. S. Bhandari
30. Hindi Folk-Songs — A. G. Shirreff
31. The Gondwans and the Gonds — Dr. Indrajit Singh
32. The Blue Grove — M. G. Archer
33. Folk Tales from Mahakaushal — V. Elwin
34. Eastern Bengal Ballads — Dr. D. C. Sen
35. Folk Art of Bengal — G. S. Datta
36. Ballads of All Nations — G. Borrow.
37. The English Ballad — R. Graves
38. Ethnology of Folklore — G. L. Gome
39. Folklore in Early British History — G. L. Gome
40. The Begining of Poetry — F. B. Gummere